शिक्षाशास्त्र के नए क्षितिज

गरीब बच्चों की शिक्षा

ब्रीट्रीस एवॉलास (संपादक)

अनुवादक
नरेश नदीम

गरीब बच्चों की शिक्षा

संपादक

बीट्रीस एवॉलास

अनुवादक

नरेश नदीम

ग्रंथ शिल्पी

नई दिल्ली 110002

ग्रंथ शिल्पी

प्रथम हिंदी संस्करण : 1997

ISBN 81-86684-12-3

श्यामबिहारी राय द्वारा ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002 के लिए प्रकाशित तथा डी.पी. ग्राफिक्स, उत्तम नगर, नई दिल्ली 110059 द्वारा लेजर सेट होकर त्रिवेणी ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 में मुद्रित.

अनुक्रम

प्रस्तावना

हमारे देश में शिक्षाशास्त्र की पढ़ाई का आधार अधिकांशतः वे विचार और ग्रंथ रहे हैं जिनका संदर्भ-जगत पश्चिम के धनी देशों में है। पाओलो फ्रेरे को छोड़कर एक भी ऐसा चिंतक भारत में नहीं जाना जाता जिसका संबंध तीसरी दुनिया के किसी समाज से हो। शिक्षा-व्यवस्था और स्कूल के यथार्थ की दृष्टि से देखें तो अपने जैसे तीसरी दुनिया के समाज हमारे लिए पूरी तरह अपरिचित हैं। बीट्रीस एवॉलास की यह पुस्तक हमें इस बात की याद दिलाती है कि अपने जैसे समाजों को समझना कितना उपयोगी हो सकता है। इस पुस्तक में लातीनी अमरीका के चार देशों में किए गए अध्ययन सम्मिलित हैं। इन अध्ययनों का फोकस ग्रामीण और शहरी दोनों किस्म के परिवेशों में रहने वाले गरीब बच्चों की प्राथमिक शिक्षा पर है। लेकिन ये अध्ययन स्कूल की परिस्थितियों या बच्चों द्वारा स्कूल छोड़े जाने के आंकड़ों के उस तरह के संग्रह नहीं हैं जिन्हें देखते-देखते हमारी आंखें थक चुकी हैं। एवॉलास बच्चों के अनुभव का जायजा लेती हैं और इस काम के लिए बच्चों और अध्यापक के बीच घटने वाली संवादी घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन करती हैं।

इन घटनाओं का ब्योरा पढ़कर हम चौंकते हैं तो इसलिए क्योंकि कक्षा की चारदीवारी के भीतर का संसार हमने अपनी वयस्क आंखों के लिए खोला नहीं है। बच्चों की कक्षा को अध्यापक के लिए आरक्षित छोड़कर हम उसके भीतर घटने वाले दैनंदिन घटनाचक्र को एक रहस्य बना देते हैं। संसद भवन के भीतर घटने वाला संवाद-चक्र तो हम तक—जन-जन तक पहुंच जाता है, पर स्कूल की कक्षा के भीतर की खबरें वहीं दब जाती हैं—माता-पिता, अधिकारी, नेता या नीतिकारों तक नहीं पहुंच पाती। शिक्षा के समाजशास्त्रीय शोध ने इधर के दशकों में स्कूल की कक्षा का संसार जिन अध्ययनों के मार्फत खोला और पाठकों को दिखाया है, उनमें बिट्रीस एवॉलास की इस पुस्तक का एक महत्वपूर्ण स्थान है। गरीब बच्चों के लिए आम शिक्षण किस तरह दैनिक निराशा और अपमान की घिसट सिद्ध होता है, यह दारुण सच इस पुस्तक के अनेक प्रसंगों से कौंधता है। एवॉलास का विवेचन बताता है कि इस सचाई की रचना किसी षड्यंत्र के तहत नहीं की जाती। समाज की व्यापक बुनावट, अध्यापक की पृष्ठभूमि और उसके प्रशिक्षण में निहित समझ के साथ-साथ शिक्षण की दैनिक छवि अपने आप उस सूक्ष्म बर्बरता को जन्म देती है जिसे गरीब और अशिक्षित परिवारों से आने वाले लड़के-लड़कियां सहते हैं।

यह पुस्तक हमें उन बहु-प्रचारित कारणों पर पुनर्विचार करने के लिए विवश करती है जो गरीब बच्चों द्वारा स्कूल छोड़े जाने के भयावह राष्ट्रीय आंकड़ों के संदर्भ में सरकारी

रपटों और शोधपर्चों में बताए जाते रहे हैं। निश्चय ही गरीबी, बाल-मजदूरी, माता-पिता की लाचारी और लड़कियों को लेकर फैले पूर्वग्रह हमारे समाज में उत्पीड़ित वर्गों में शिक्षा के प्रसार को प्रभावित करने वाले तत्वों में शामिल हैं, किंतु स्कूल के वातावरण, पाठ्यक्रम और अध्यापन में रचे-पचे हतोत्साहक भी बेहद महत्वपूर्ण हैं। सूक्ष्म हाने के कारण ये हतोत्साहक सामान्य शोध-विधियों की पकड़ में नहीं आते। एवॉलास द्वारा इस्तेमाल की गई विधि अपने-आप में इस पुस्तक का एक प्रभावशाली पहलू है जो हमारे शोधछात्रों को आम तौर पर पढ़ाई जाने वाली विधियों के बारे में सोचने की जरूरत महसूस कराता है।

कृष्ण कुमार

केंद्रीय शिक्षा संस्थान
दिल्ली विश्वविद्यालय
20 अक्तूबर, 1996

आमुख

स्वरूप की दृष्टि से विकासशील दुनिया के काफी बड़े हिस्से का शैक्षिक अनुसंधान अधिकतर अनुभवाश्रित और परिमाणात्मक है। मानक परीक्षणों और प्रश्नावलियों का विकास, विद्यालयों और व्यक्तियों के बड़े-बड़े प्रतिदर्शों के आंकड़ों का उत्पादन तथा अनेक प्रकार की सांख्यिकीय विधियों से इन आंकड़ों का विश्लेषण इस प्रकार के अनुसंधान की विशेषताएं हैं। अनुसंधान के इस दृष्टिकोण के पीछे अच्छे-खासे कारण भी हैं। नीति-निर्धारक यह जानना चाहते हैं कि पहले के किसी काल की तुलना में या दूसरे राष्ट्रों की अपेक्षा उनकी शिक्षाप्रणाली किस प्रकार काम कर रही है, या यह कि कोई सुधार या प्रवर्तन विशेष सुफल हो रहा है या नहीं। मंत्रालयों या विश्वविद्यालयों के जिन शोधकर्ताओं को ये सूचनाएं जमा करने का काम सौंपा जाता है, और प्रायः कम समय देकर सौंपा जाता है, वे अपने खुद के (अक्सर उत्तर अमरीकी) प्रशिक्षण के चलते अनुभवाश्रित, परिमाणात्मक अनुसंधान से सुपरिचित और उसे लेकर सहज होते हैं, और यह अनुसंधान दक्षतासंपन्न भी होता है। इसके कारण विभिन्न कुशलताओं और क्षमताओं वाले अनेक व्यक्तियों के बीच श्रम-विभाजन भी संभव होता है। इनके चलते, विशेषकर विकासशील देशों के शैक्षिक अनुसंधान पर आज भी शोध की वे परंपराएं और समष्टियां हावी हैं जो परिमाणात्मक, अनुभवाश्रित और सांख्यिकीय विधियों पर जोर देती हैं।

ऐसी विधियों की आवश्यकता और महत्ता को स्वीकार करते हुए भी विकासशील दुनिया के अनेक भागों में शोधकर्ता इनसे अधिक गुणात्मक, नृजातिशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय स्वरूप वाले अन्य दृष्टिकोणों का उपयोग और विकास कर रहे हैं। यह अनुसंधान बिलकुल भिन्न परंपराओं, समष्टियों और ज्ञान की परिभाषाओं पर आधारित है और इसका चरित्र बिलकुल भिन्न है यानी यह छोटे पैमाने का मगर व्यापक संदर्भ वाला है, अंतरंग और गहन विधि वाला तथा अधिक वर्णनमूलक परिणाम वाला है। शैक्षिक विकास संबंधी साहित्य में इसे बहुत कम प्रतिनिधित्व दिया गया है लेकिन इसी प्रकार का अनुसंधान प्रस्तुत पुस्तक का विषय है।

इस पुस्तक में वर्णित अनुसंधान के तंत्र का विकास अनेक कारणों से हुआ। पहला कारण तो शैक्षिक असफलता की समस्या थी जिसके लिए आम तौर पर स्वयं छात्रों, उनके परिवारों तथा उनके जीवन की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को दोषी ठहराया जाता है। मगर संभवतः अध्यापकों के व्यवहार, अध्यापन की प्रक्रिया और कक्षा के परिवेश से भी

इसका संबंध है।

दूसरा कारण, ऐसे शोधकर्ता भी हैं जो इस समस्या में तथा इसके विश्लेषण के लिए गुणात्मक और नृजातिशास्त्रीय अनुसंधान-पद्धतियों के व्यवहार में रुचि रखते थे। बेल्स स्थित कार्डिफ विश्वविद्यालय में कार्यरत चिलियाई शोधकर्त्री बीट्रीस एवॉलास का विश्वास था कि छात्रों की असफलता की प्रक्रिया में विद्यालयों और अध्यापकों की कहीं अधिक सक्रिय भूमिका होती है। उनका यह भी मानना था कि यह प्रक्रिया अनेक लातीनी अमरीकी देशों में नृजातिशास्त्रीय अनुसंधान का विषय हो सकती है। वेनेजुएला, कोलंबिया, बोलिविया और चिली के अनेक शोधकर्ताओं और शोधकेंद्रों ने इस विश्वास की ताईद की। इस महाद्वीप में अन्यत्र संबंधित क्षेत्रों में कार्यरत शोधकर्ताओं से मिलकर इन्होंने ही अंततः गुणात्मक शोध का एक ढांचा तैयार किया।

अंतिम बात; शोधकार्य के लिए धन देने वाले संगठन, अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र ने इस कार्य के लिए धन देने की इच्छा जताई और दिया। इस धन का उपयोग करके गुणात्मक अनुसंधान के विभिन्न चरणों से संबंधित सैद्धांतिक ढांचों और व्यावहारिक विधियों पर प्रशिक्षण-कार्यक्रमों की एक श्रृंखला चलाई गई। ये कार्यक्रम आस्टिन स्थित टेक्सास विश्वविद्यालय तथा मेक्सिको सिटी स्थित राष्ट्रीय राजनीतिशास्त्र संस्थान में चलाए गए। परियोजना को चलाने वाले दलों के बीच शोधकर्ताओं की अदलाबदली, परियोजना के संयोजकों की वार्षिक बैठकों तथा स्वयं शोध परियोजना की लागत के लिए भी इस धन का उपयोग किया गया।

अनुसंधान का यह विस्तारित ढांचा अब ऐसी प्रशिक्षण विधियों के विकास और प्रायोगिक परीक्षण में लगा हुआ है जिनका मकसद अध्यापकों का मार्गदर्शन करके उन्हें और भी गहराई से यह समझाना है कि शैक्षिक असफलता के निर्धारण में वे कैसी भूमिका निभाते हैं और उसे रोकने के लिए कैसी भूमिका निभा सकते हैं। ये विधियां प्रस्तुत पुस्तक में विद्यालयों के वर्णन और विश्लेषण पर आधारित हैं। आशा है कि भावी प्रकाशन इस अध्ययन के परवर्ती परिणामों की विवेचना करेंगे।

शेल्डन शेफर
सहनिदेशक, समाजविज्ञान संभाग,
अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र

आभार-ज्ञापन

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित शोध-परियोजना का संचालन और समापन अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र से उदारतापूर्वक प्राप्त वित्तीय सहायता के कारण संभव हुआ। विशेष रूप से मैं केंद्र के शैक्षिक कार्यक्रम के भूतपूर्व सहनिदेशक केनेथ किंग को धन्यवाद देना चाहती हूं जिन्होंने आरंभ में परियोजना को प्रोत्साहित किया, और मौजूदा सहनिदेशक शेल्डन शेफर को भी जिन्होंने अध्ययन के हर चरण में निरंतर सहायता की और अपने प्रचुर ज्ञान से हमें राह दिखाई।

आस्टिन (टेक्सास) और मेक्सिको सिटी स्थित वे शोधकर्ता विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अध्ययन के लिए शोध संयोजकों को प्रशिक्षित किया। ये हैं : सूज़न हेक, स्टेव जैक्सन, वाल्ट स्मिथ, के. सदरलैं, एल्सी राकवेल और जस्टा एस्पेलेटा।

प्रत्येक देश के शोधदलों के बिना यह पुस्तक और इसमें वर्णित अध्ययन मात्र विचार बनकर रह गए होते। जिन संदर्भों में न तो परंपरा और न ही सामाजिक-राजनीतिक स्थितियां प्रोत्साहन के स्रोत हों उनमें भी नृजातिशास्त्रीय अनुसंधान से संबंधित हर तरह की व्यावहारिक कठिनाइयों को पार करने के लिए ये दल धन्यवाद के पात्र हैं। जिन अध्यापकों, छात्रों, अभिभावकों और समुदायों के सदस्यों ने अपने आचार-व्यवहार के प्रेक्षण और अपने निजी जीवन में हस्तक्षेप की अनुमति दी वे भी धन्यवाद के अधिकारी हैं।

इस पुस्तक को तैयार करने के सिलसिले में मैं अपने सहयोगियों, शैली संबंधी महत्वपूर्ण सुझाव देने वाले ग्राहम हावेल्स तथा कुछ स्थलों पर शैली में परिवर्तन और परिष्कार की आवश्यकता की ओर मेरा ध्यान खींचने वाले रेमंड ल्यांस की मैं ऋणी हूं। उपरोक्त केंद्र ने पांडुलिपि पर विचार के लिए जिन गुप्तनाम पाठकों का चयन किया वे भी आभार के पात्र हैं कि उन्होंने इसमें सुधार के लिए बहुत उपयोगी सुझाव सामने रखे।

हेलन जेम्स ने कम से कम दो पांडुलिपियों के कुछ हिस्सों को टाइप किया और शान हेवर्ड ने अनुक्रमणिका की तैयारी में बहुत अधिक समय लगाया। उनकी सहायता के लिए अनेक बार धन्यवाद।

बीट्रीस एवॉलास

मंद-मंद बचपन से यूं ही
जैसे लंबी घास से
उगता है स्थायी केसर
मानव का जो सत्व है

पाब्लो नेरुदा

जो समय बच्चों से बातें करके उनके प्रमुख शब्दों का पता लगाने में व्यय होता है, वह जितना ही अधिक हो, कम है। यही तो वह चाबी है जो उसे खोलती है। इसलिए कि कुछ पढ़ने का राज उन्हीं में निहित होता है; और यह एहसास भी निहित होता है कि शब्दों के बेहद गंभीर अर्थ हो सकते हैं। बच्चे के लिए जिन शब्दों का कोई भावात्मक महत्व नहीं होता, जिनका कोई सहज अर्थ नहीं होता वे गोया उनके ऊपर लादे गए होते हैं, उनको बिलकुल अशिक्षित छोड़ने की अपेक्षा, उनके लिए अधिक हानिकारक होते हैं। वे बच्चे को यह जता सकते हैं कि शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता और यह कि पढ़ाई का कोई फायदा नहीं है।

सिल्विया एश्टन-वॉरनर (अध्यापक)

1. भूमिका

लातीनी अमरीका के कुछ विद्यालयों में अध्यापन और अध्यापक संबंधी यह समझ इसलिए बनी है कि कक्षा और विद्यालय में जो कुछ होता है उसका अध्ययन करके शिक्षा में सुधार किया जाए। यह उस प्रयास का सूचक है जिसका मकसद यह पता लगाना है कि कुछ विशेष शैक्षिक नीतियों और व्यवहार-पद्धतियों का क्या नतीजा निकल रहा है तथा ज्यादा ठीक ढंग से बच्चों की जरूरतें पूरी करने के लिए हम क्या कर सकते हैं। यह पुस्तक मौजूदा प्रयासों और संसाधनों को और भी प्रासंगिक बनाने की कोशिश का एक उदाहरण है। वह भी ऐसे समय में जब दो दशक पहले के मुकाबले धन अधिक दुर्लभ है तथा लातीनी अमरीका के देशों के सामने मौजूद बुनियादी आर्थिक-सामाजिक कठिनाइयों के हल करने के विचार और प्रस्ताव पहले के मुकाबले कम सकारात्मक हैं।

हमने अपना अध्यापक जीवन दक्षिण अमरीका में साठ के बाद के दशक के आरंभिक दिनों में शुरू किया था। तब हमारा माहौल परिवर्तन का उत्तेजनापूर्ण काल लगता था। राष्ट्रपति कैनेडी ने लातीनी अमरीका के लिए 'एलायंस फार प्रोग्रेस' (प्रगति के लिए गठबंधन) नाम से पहल की थी। उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका की द्विपक्षीय सहायता को ऐसे सुधार-कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से जोड़ा था जो संबंधित देशों की आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक व्यवस्थाओं को प्रभावित करते थे। फिर अपनी बारी में यह भी लग रहा था कि लातीनी अमरीका की राजनीतिक आस्थाएं इस प्रकार के सामाजिक जनवाद की ओर उन्मुख हैं जो आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रमों को मजबूत बनाए और इस तरह व्यापक निर्धन जनता की जरूरतों पर अधिक ध्यान दे। भावी मार्ग का निरूपण करने के लिए 'आधुनिकीकरण' और 'लोकतंत्रीकरण' जैसी धारणाओं का प्रयोग हो रहा था। दूसरी तरफ राजनीतिज्ञ 'स्वतंत्रतापूर्वक' क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की बातें कर रहे थे और मानवतावादी लोग शिक्षा की 'चेतनावर्धक' शक्ति के अलावा निर्धन जनता के लाभार्थ उसमें एक संभावित मुक्तिदायी शक्ति के दर्शन भी कर रहे थे।[1]

तब काफी सोच समझ कर व्यावहारिक बुद्धि से यह बात कही जा रही थी कि सामाजिक कार्यक्रमों में निवेश समग्र विकास की दृष्टि से उपयोगी होता है। इसलिए शैक्षिक अवसरों की समानता को बढ़ावा देकर हम राजनीतिक-सामाजिक स्थायित्व और आर्थिक प्रगति, दोनों को सुनिश्चित कर सकते हैं। ऐसे माहौल को हम लगभग उल्लासपूर्ण कह सकते हैं। हम समझते थे कि इसमें विद्यमान शैक्षिक प्रावधानों की आलोचनात्मक छानबीन करना और व्यवस्था के कमोबेश मूलगामी सुधारों की हिमायत करना अनिवार्य है। शिक्षाव्यवस्था के

आधुनिकीकरण के प्रयासों की महत्ता और क्षमता में यह विश्वास उस पूरे दशक में हमारे बहुत सारे कार्यों में देखा जा सकता था। संरचनात्मक प्रकार्यवादी (स्ट्रक्चरल फंशनलिस्ट) और मार्क्सवादी, दोनों ही सिद्धांत हमारे इस विश्वास की पुष्टि करते थे। शैक्षिक विकास सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक विकास में सहायक तत्व है, ऐसी लोकप्रिय धारणाओं के पीछे संरचनात्मक प्रकार्यवाद ही काम कर रहा था। वैसे अभाव की विद्यमान पृष्ठभूमि से पैदा होने वाली बाधाओं पर भी ध्यान दिया जाता था। इसके विपरीत मार्क्सवाद के जो विभिन्न संप्रदाय उस काल के सामाजिक और राजनीतिक चिंतन को प्रभावित कर रहे थे, वे मौजूदा पूंजीवादी ढांचों के अंदर और औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं पर आर्थिक निर्भरता की दशा में सामाजिक-आर्थिक विकास की संभावना को लेकर शंका कर रहे थे। फिर भी, संरचनात्मक प्रकार्यवादी और मार्क्सवादी, दोनों ही धाराएं स्वीकार करती थीं कि तब तक कोई परिवर्तन संभव नहीं है जब तक जनता और खासकर वह जनता जिसे उस परिवर्तन की सबसे अधिक आवश्यकता है, वांछित परिवर्तनों की प्रकृति को न समझे या दूसरे शब्दों में अभाव को जारी रखने वाले कारणों के प्रति 'सचेत' न हो। इस तरह हम यह महसूस कर रहे थे कि राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन को सहारा देने के लिए हमें 'प्रौढ़ शिक्षा' के विशाल कार्यक्रमों की जरूरत होगी; इन्हें हम 'चेतनावर्धक' मानते थे। विशेष रूप से हमें गरीब बच्चों के लिए ऐसे अवसर बढ़ाने होंगे जिनसे वे शिक्षा के ऐसे साधन प्राप्त कर सकें जो आगे चलकर सार्वजनिक मामलों में उनकी भागीदारी को और बढ़ाएं।

अगले दशक में ये सुधार असफल साबित हुए जैसे पेरू में। इसके अलावा अर्जेंतीना, चिली और उरुग्वे में सैनिक विद्रोह हुए। इस बिंदु पर पहुंच कर यह एहसास हुआ कि कहीं कोई भारी गलती हुई है। सामाजिक सुधारों की शक्ति में आशावादी और भोली-भाली आस्था की जगह बाहरी दबावों के प्रभाव तथा हमारे इन समाजों के प्रतिक्रियावादी वर्गों की शक्ति संबंधी गंभीर और थोड़ा-बहुत निराशावादी मूल्यांकनों ने ले ली। फलस्वरूप हम भी यह समझने लगे कि बाहरी तत्वों के प्रभाव के कारण ही शिक्षा एक नए प्रकार की जनता को रचने में असफल रही है। इन सबके बावजूद हमने यह परखने-जांचने की कोशिश नहीं की कि क्या शिक्षा जैसे सामाजिक सुधार काफी हद तक अपरिवर्तित रहने वाले परंपरागत शैक्षिक आचारों पर नए ढांचों के आरोपण से ज्यादा कोई चीज हैं भी, और अगर हैं तो किस सीमा तक। व्यवस्था की असफलता के लिए विद्यालय से बाहर के तत्वों को जिम्मेदार ठहराना और विद्यालय-शिक्षा की अप्रभाविता के लिए संरचनात्मक प्रकार्यवादी या मार्क्सवादी, किसी भी प्रकार की नियतिवादी व्याख्या पेश करना एक तरह से अधिक आसान था। असफलता के आंकड़े तब हमारे सर पर गाज बनकर गिरे जब मिसाल के लिए हमने यह पाया कि चिली में प्राथमिक चरण की पहली कक्षा में 18.3 प्रतिशत बच्चे अनुत्तीर्ण रहे जो शिक्षा को बीच में छोड़ने का ही एक रास्ता है। इसी तरह पूरे लातीनी अमरीका में शिक्षा को बीच में छोड़ने और अनुत्तीर्ण होने की चिंताजनक दरें सामने आईं। इस मामले में सत्तर के बाद के दशक में लगभग वही हालत रही जो साठ के बाद के दशक में थी। इसके लिए

(तालीका 1 और 2 देखें)

शैक्षिक उपलब्धता को प्रभावित करने वाली आर्थिक और सामाजिक बाध्यताओं को रेखांकित करने वाले सिद्धांतों की वैधता से हम इनकार नहीं करते। इनमें चयनमूलक शिक्षाप्रणालियों को जारी रखने के सिलसिले में मौजूदा शक्तिशाली समूहों के दबाव भी शामिल हैं। इसी तरह हम ऐसे संबंधों के बारे में किए गए परिमाणात्मक सर्वेक्षणों से प्राप्त साक्ष्यों

तालिका 1 : प्राथमिक शिक्षा में अनुत्तीर्ण छात्रों के प्रतिशत

	चिली*	कोलंबिया	वेनेजुएला**
1965	-	19.0	15.5
1966	-	18.6	11.9
1967	13.5	18.7	11.6
1968	11.6	17.7	11.5
1969	11.1	17.1	11.7
1970	10.4	16.6	2.2
1971	7.8	16.1	2.5
1972	8.0	16.6	2.5
1973	11.1	15.4	2.7
1974	12.0	15.4	2.9
1975	12.5	-	2.7
1976	12.3	-	2.5
1977	12.6	-	7.6
1978	-	-	-

* 1964 में पहली चार कक्षाओं में स्वतः प्रोन्नति का नियम लागू किया गया मगर 1974 में इसे बंद कर दिया गया.

** 1970 में पहली चार कक्षाओं में स्वतः प्रोन्नति का नियम लागू किया गया मगर 1977 में बंद कर दिया गया.

से भी इनकार नहीं करते।[2] फिर भी हम समझते थे कि शिक्षाप्रणाली के आंतरिक कार्यकलाप संबंधी कहीं बहुत अधिक सूचनाएं दरकार थीं क्योंकि तभी निरंतर असफलता के कारणों की कुछ अधिक सटीक व्याख्या कोई कर सकता था। चिली के दृष्टांत में जाहिर था कि 1974 और 1977 के बीच अनुत्तीर्ण छात्रों की संख्या में वृद्धि पर सैनिक सरकार की आर्थिक नीतियों के प्रभाव स्पष्ट थे। मगर इन संस्थाओं की तो पूरे लातीनी अमरीका में चिंताजनक

तालिका 2 : 1965/66, 1970/71 और 1976/77 में बनने वाले गुच्छकों के बारे में प्राथमिक शिक्षा जारी रखने वालों (छात्र-छात्राओं) के अनुमान

देश	गुच्छक का आरंभ-काल	निम्न कक्षा तक पहुंचने वालों का भाग							
		1	2	3	4	5	6	7	8
चिली	1966	1000	853	806	756	705	660	596	521
	1970	1000	901	1853	817	762	696	620	547
	1976*	1000	918	877	838	886	729	667	587
कोलंबिया	1965	1000	692	519	427	370	-	-	-
	1770	1000	695	551	413	375	-	-	-
	1973	1000	683	559	408	371	-	-	-
वेनेजुएला	1965	1000	648	791	696	622	567	-	-
	1970	1000	902	851	719	655	616	-	-
	1976*	1000	917	869	800	637	776	-	-

स्रोत : यूनेस्को (1980 अ)

* केवल अनुमानित अनुपात

स्थिति थी हालांकि शायद कोलंबिया में इन्होंने भयानक रूप ग्रहण कर लिया था जहां पहली कक्षा में प्रवेश लेने वाले बच्चों में सिर्फ 40 प्रतिशत ही प्राथमिक शिक्षा पूरी कर रहे थे (तालिका 4 देखें; शीफेलबाइन, 1980)। लातीनी अमरीका में शिक्षात्याग (ड्राप-आउट) और अनुत्तीर्णता की दरों के कुछ ज्यादा पारखी अध्येताओं में एक अध्येता गे रहे हैं। इस बारे में उन्होंने संकेत दिए हैं कि विद्यालयों की असफलता में बाहरी कारणों के अलावा किसी चीज का भी हाथ हो सकता है :

> अनुत्तीर्णता इस बात का संकेत है कि व्यवस्था ठीक से काम नहीं कर रही है। बहुत से बच्चे अनेक वर्षों तक विद्यालय जाते हैं और शिक्षा के त्याग से पहले सिर्फ दो-एक कक्षाएं पार कर पाते हैं। कोई यह बात कह सकता है कि यह असफलता पूरी तरह बाहरी कारणों का परिणाम है क्योंकि इससे मुख्यतः निचले वर्गों के बच्चे ही प्रभावित होते हैं। फिर भी लगता है पर्याप्त सूचनाएं ये संकेत दे रही हैं कि तमाम सामाजिक स्तरों के और सांस्कृतिक परिस्थितियों में रहने वाले बच्चे कुछ ज्यादा तो कुछ कम सीमा तक प्रभावित हो रहे हैं और यह कि समुचित उपायों से हम उनके कार्य निष्पादन में सुधार ला सकते और अनुत्तीर्णता को समाप्त कर सकते हैं।

जब हमने विद्यालयों की असफलता की संभावित व्याख्या के लिए विद्यालय-शिक्षा और

अध्यापकों के प्रभावों पर लातीनी अमरीका में हुए अनुसंधानों की पड़ताल की (एवालॉस और हद्दाद 1979) तो पाया कि अध्यापन-अधिगम (टीचिंग-लर्निंग) प्रक्रिया की विशेषताओं तथा निर्धन परिवारों के बच्चों की सफलता-असफलता में उसके संभावित योगदान को समझने का जहां तक सवाल है, परखने की कोई खास सामग्री है भी नहीं। इस तरह लातीनी अमरीका में विद्यालयों की असफलता की नियतिवादी व्याख्याओं और विद्यालयी प्रक्रियाओं के प्रभाव संबंधी मौजूदा अध्ययनों के प्रति पैदा होने वाले असंतोष ने ही हमें प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्रेरित किया।

विद्यालय और सामुदायिक परियोजना

इस परियोजना का आरंभ 1980 के आरंभिक वर्षों में बगोता (कोलंबिया) में आयोजित एक गोष्ठी से हुआ था। इसे कनाडा के अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र ने आयोजित किया था। इस परियोजना के कारण अंततः इस अध्ययन में भाग लेने वाले चार देशों के अनुसंधानकर्ता एक मंच पर जमा हुए। ये देश थे : बोलीविया, चिली, कोलंबिया और वेनेजुएला। इन देशों के प्रतिनिधियों को इसलिए बुलाया गया था कि विद्यालयों की असफलता के ऐसे अध्ययन की संभावना पैदा हो गई थी जो अधिक जोखिम भरे काल पर अर्थात प्राथमिक शिक्षा के पहले चार वर्षों पर केंद्रित थीं। सामाजिक-आर्थिक स्तर पर तो इन देशों के संदर्भ मिलते-जुलते थे मगर दूसरे मामलों में भिन्न थे।

इसके बाद हुई बहसों में हमने यह तय पाया कि निम्नलिखित प्रश्नों की विवेचना करते हुए एक अध्ययन किया जाए। कक्षा के जीवन की कौन सी घटनाएं छात्रों के अधिगम तथा उनकी सफलता या असफलता को प्रभावित करती हैं ? प्रत्येक शिक्षाप्रणाली की विशेषताओं के कौन से सूचक (अध्यापकों की योग्यताएं, सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था, अध्यापक-छात्र अनुपात, आधुनिकीकरण के प्रयास, संसाधनों तथा अध्यापन में सहायक सामग्रियों की उपलब्धता, शैक्षिक नीतियां, प्रशासन की प्रणालियां) विद्यालय और कक्षा के जीवन में व्यक्त होते हैं ? किसी विद्यालय विशेष के अधिकांश बच्चे जिस समुदाय के हैं, उसकी विशेषताएं क्या हैं ? उस समुदाय के विकास का स्तर और उसमें रोजगार के हालात क्या हैं ? शिक्षा के बारे में तथा नीतिनिर्माताओं और अध्यापकों द्वारा समर्थित आधुनिकीकरण के सिद्धांत के बारे में अभिभावकों तथा समुदाय के अन्य सदस्यों के विश्वास और जीवनमूल्य क्या हैं ? घर में कौन सी भाषा ज्यादातर बोली जाती है ? शिक्षा की प्रक्रिया से समुदाय की इन सभी विशेषताओं का संबंध क्या है ? अध्यापक कौन से हैं तथा अभिभावकों और अन्य समुदायों के सदस्यों से उनके क्या संबंध हैं ? बच्चों की शिक्षा तथा सामुदायिक जीवन में अध्यापकों की भागीदारी को लेकर अध्यापकों से समुदाय क्या-क्या आशाएं रखता है ? अपनी बारी में अध्यापक शैक्षिक गतिविधियों के बारे में अभिभावकों और दूसरे लोगों की भूमिका को लेकर क्या सोचते हैं ? ये संबंध विद्यालय में घटित हो रही बातों

को कैसे प्रभावित करते हैं ?

लातीनी अमरीकी समाजों में अल्पविकास के कारणों तथा संसाधनों के असमान वितरण पर हमारे विचार कमोबेश मिलते-जुलते थे। बगोता की गोष्ठी में जमा अनुसंधानकर्ताओं को बांधने वाला साझा सूत्र यही तथ्य था। हम अल्पविकसित आर्थिक प्रणालियों पर पूंजीवादी व्यवस्था के नियंत्रण के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, दोनों रूपों के आलोचक थे। और हम महसूस करते थे कि इस नियंत्रण ने सांस्कृतिक और शैक्षिक विकास की संभावनाओं को प्रभावित किया है। लेकिन शैक्षिक अवसर संबंधी अनेक सैद्धांतिक और अनुभवाश्रित अध्ययनों के पीछे मौजूद नियतिवादी मान्यताओं से हम तंग थे। इसकी वजह यह थी कि इनके चलते व्यवहार में शिक्षा प्रक्रिया की ही उपेक्षा होती थी। और जैसा हमने कहा है कि इसके अलावा उस समय तक हम यह विश्वास करते थे कि लातीनी अमरीका की शैक्षिक समस्याओं के अध्ययन के लिए प्रयुक्त प्रमुखतम अनुसंधान-पद्धति (मामूली प्रकार के सर्वेक्षण और सहसंबंध) अध्ययन प्रक्रिया के समाधान में समर्थ नहीं थी। हमने जिस चीज को अनुसंधान का गुणात्मक दृष्टिकोण कहा है, उसके प्रति हमारी लगभग सहज प्रतिबद्धता का कारण यही था।

ऊपर की बातों को देखते हुए हमने एक ऐसे अध्ययन की आवश्यकता समझी जो विशेष स्थितियों पर केंद्रित भले ही हो, उन ढांचागत पहलुओं को नजरअंदाज न करे जो हमारी राय में कक्षा जैसी सामाजिक इकाइयों में घटित हो रही प्रक्रियाओं से अंतःक्रिया या उन्हें प्रभावित्त करते हैं। इसलिए अनुसंधान का उपयुक्त दृष्टिकोण वही है जो उस मानवशास्त्री के दृष्टिकोण से मेल खाए जो किसी संस्कृति का अंग बनकर उसे समझने का प्रयास करता है, मगर साथ ही यह योग्यता भी रखता है कि पीछे हटकर वह संस्कृति जिस व्यापकतर सामाजिक जगत का अंग है, उसकी रोशनी में ही उसकी प्रक्रियाओं की व्याख्या कर सके।

वैसे तो लातीनी अमरीका में ऐसे शैक्षिक अध्ययन बहुत कम थे जो विद्यालय की असफलता के 'आंतरिक' कहलाने वाले कारणों की विवेचना करते हों। मगर दूसरी जगहों पर इस विषय पर ढेरों अध्ययन हुए हैं जिनमें अपरिमाणात्मक समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय पद्धतियों का प्रयोग करते हुए शैक्षिक प्रक्रियाओं के *'गहन केस अध्ययन'* शामिल हैं। उत्तर अमरीकी शैक्षिक और बर्तानवी समाजशास्त्रीय, दोनों प्रकार के शोध संबंधी वातावरण में सहभागी प्रेक्षण, शैक्षिक स्थितियों में संलग्न व्यक्तियों से असंरचनाबद्ध या अर्धसंरचनाबद्ध साक्षात्कार तथा विद्यालय के दस्तावेजों या बच्चों की कृतियों जैसे दस्तावेजों के विश्लेषण ने उन स्थितियों के बारे में सूचना के विशाल स्रोतों का काम किया है जिनमें कुछ विशेष सामाजिक समूहों (अश्वेतों, मजदूर वर्ग या अन्य समूहों) के बच्चे को सामाजिक रूप से असफल की श्रेणी में रखा जा सकता है। उत्तर अमरीका के उल्लेखनीय अध्ययनों में रिस्ट (1970, 1973) के अध्ययन भी शामिल हैं। सहभागितायुक्त प्रेक्षण की पद्धति अपनाकर उन्होंने पता लगाया कि प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों की असफलता की जड़ किंडर गार्टेन के समय की शिक्षा में निहित हैं जहां पर अध्यापक आरंभ में ही उनके असफल रहने की आशाएं

बांध लेते हैं। ऐसी असफलताओं को वे तरह-तरह से व्यक्त करते हैं : बैठने की भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएं, अध्यापन के समय में अंतर, प्रशंसा और नियंत्रण की विधियां, तथा कक्षा में स्वायत्तता की सीमा के रूप में। फिर रिस्ट ने पाया कि दूसरे वर्ष तक आते-आते किंडर गार्टेन में बच्चों पर चिपके हुए लेबिल उनकी क्षमताओं के वर्णन और व्याख्या के सुस्वीकृत और सार्वजनिक ढर्रे बन जाते हैं। रिस्ट से पहले और बाद में हुए अनेक अध्ययन भी प्रत्याशाओं, लेबिल और असफलता के संबंध को उजागर कर चुके हैं। खासकर अमरीका के चार विद्यालयों के बारे में लीकॉक (1969) की आरंभिक रचना प्रस्तुत पुस्तक से बहुत मिलते-जुलते सरोकार से उपजी थी। (ये विद्यालय अपने छात्रसमूहों की नस्ली और सामाजिक-आर्थिक संरचना की दृष्टि से भिन्न-भिन्न थे।) लीकॉक (1971 : 172) की आरंभिक मान्यता थी कि कक्षाएं एकरस नहीं होतीं और सभी बच्चों को एक ही सांचे में नहीं ढालतीं। मेरी इच्छा उस उपाय का अध्ययन करने की थी जिसके द्वारा इस या किसी और सामाजिक स्थिति में बच्चों के लिए अनेक प्रकार की वैकल्पिक भूमिकाएं निर्धारित होती हैं। मसलन 'तेज' और 'धीमे' बच्चे, आज्ञापालक और उद्दंड बच्चे, आत्मकेंद्रित बच्चे आदि को एक अध्यापक स्वीकार करता है और उनकी आशा रखता है जो विद्यालय-सत्र के आरंभिक दिनों में ही ऐसी ही कसौटियों पर किसी कक्षा का मूल्यांकन करता है।

वह कुछ बच्चों के बारे में पहले के अध्यापकों से पहले ही बातचीत कर चुका होता है और उन बच्चों को प्रतिभाशाली, सुस्त, मददगार या नटखट बच्चों वाली शोहरत मिल चुकी होती है। कक्षा के कारक बदलते रहते हैं और इस तरह एक समूह में 'बुरा' समझा जाने वाला बच्चा किसी और समूह में मानक प्रत्याशा के निकट हो सकता है; एक काफी अधिक उद्दंड बच्चा एक 'सचमुच बुरे' लड़के या लड़की की भूमिका अदा करता है।

अध्यापकों और बच्चों से साक्षात्कार करके तथा कक्षा में उनका प्रेक्षण करके लीकॉक (1971 : 176) ने जो कुछ पाया वह यह था, हो सकता है कि समृद्ध मध्यवर्गीय और निर्धन अश्वेत क्षेत्रों के अध्यापक एक समान निर्धन हों, मगर समृद्ध विद्यालयों के बच्चे 'खराब अध्यापन के बावजूद' कुछ सीखते हैं जबकि दूसरे विद्यालयों में 'खराब अध्यापन के कारण' बच्चे कुछ सीख नहीं पाते। उनके अध्ययन का केंद्रीय निष्कर्ष यह था कि बच्चों की सामाजिक-वर्गीय पृष्ठभूमि तथा नस्ल के आधार पर अध्यापकों की प्रत्याशाएं नाजुक अहमियत जरूर रखती हैं मगर विद्यालय-जीवन श्वेत मध्यवर्गीय बच्चे से अधिक अधिगम की प्रत्याशा लगाकर बच्चों की सामाजिक स्थितियों को सक्रिय रूप से पुष्ट बनाता है। उन्होंने इस सिद्धांत के खिलाफ निर्णायक तर्क दिए कि निर्धन बच्चे उच्च वर्ग के जीवनमूल्यों में दीक्षित किए जाने के कारण असफल रहते हैं। अपनी सामग्री के बल पर उन्होंने (लीकॉक 1971) 'महसूस किया कि यह मान्यता किस हद तक अतिसरल है कि 'मध्यवर्गीय जीवनमूल्यों' से आसानी से एकाकार हो जाने वाले मध्यवर्गीय बच्चों की तुलना में विद्यालय में इनसे एकाकार होने की समस्या निम्नवर्गीय बच्चों की प्रमुख कठिनाई है।'

इंग्लैंड में माध्यमिक शिक्षाप्रणाली में मजदूर वर्ग के बच्चों की असफलता संबंधी ऐसे

ही सरोकार के कारण ऐसे अनेक विद्यालय-अध्ययन सामने आए हैं जो तीन प्रकार के विद्यालय-संगठनों में शैक्षिक और प्रतिशैक्षिक संस्कृतियों को जन्म देनेवाली प्रक्रियाओं की छानबीन करते हैं। संगठन के ये प्रकार हैं : चयनमूलक ग्रामर विद्यालय, माध्यमिक आधुनिक विद्यालय, जिसमें ग्रामर विद्यालयों से बाहर के बच्चे आते हैं, और व्यापक विद्यालय (हारग्रीव्ज 1967; लैसी 1970; बाल 1981 देखें.)। ये अध्ययन विद्यालय की संरचना तथा योग्यता पर आधारित विभेदीकरण के संबंध की तथा कम योग्य समझे जानेवाले निम्नवर्गीय बच्चों में विद्यालय विरोधी संस्कृति के उदय की छानबीन करते हैं। ऐसा पाया गया है कि विद्यालय विरोधी संस्कृति को जन्म देनेवाली प्रक्रियाएं जटिल हैं और इनमें विद्यालय से जुड़े कारकों की भागीदारी होती है। जैसे अध्यापकों के दृष्टिकोण और व्यवहार, 'अभागे' बच्चों के सापेक्ष दूसरे छात्रों की प्रतिक्रियाएं, तथा विद्यालय और छात्र विशेष के प्रति अभिभावकों के दृष्टिकोण और उनके संबंध।

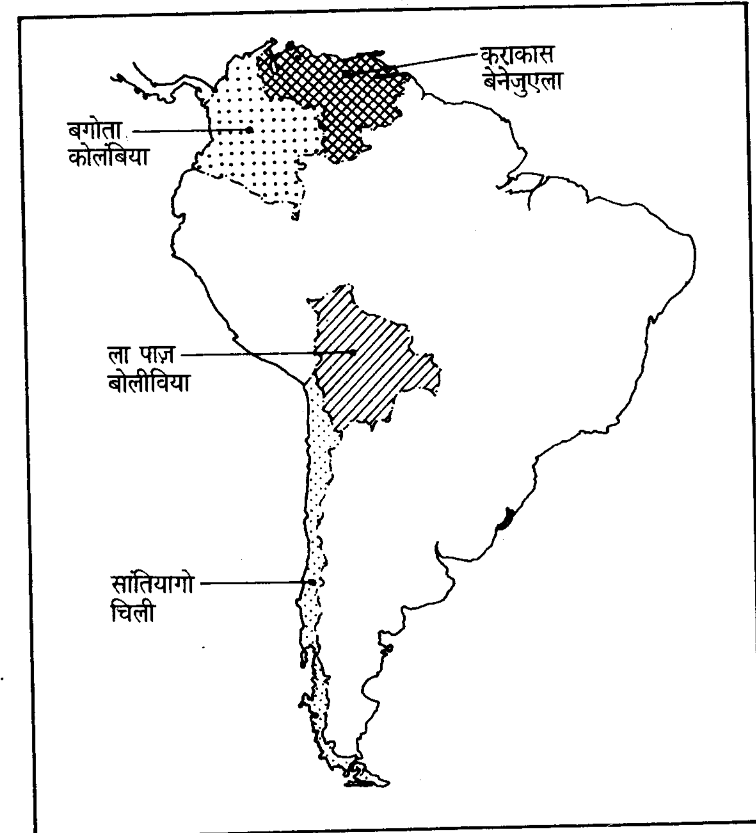
इंग्लैंड में 'प्रगतिशील' शिक्षा-दर्शन के आधार पर संचालित एक प्राथमिक विद्यालय का उल्लेखनीय अध्ययन शार्प और ग्रीन (1975) ने किया है। उन्होंने अध्यापकों के रुझानों और आरंभिक वर्गीकरण की प्रक्रियाओं की छानबीन करके सामान्य, आदर्श या समस्याग्रस्त समझे जानेवाले बच्चों की पृष्ठभूमि और संभावनाओं पर विचार किया है। उन्होंने अध्यापकों के आधिकारिक दर्शन तथा क्रियात्मक या व्यावहारिक दर्शन के अंतर्विरोध पर तथा असामान्य बच्चों के बारे में अपनी व्याख्या को जड़ीभूत बनाने की प्रवृत्ति पर भी ध्यान दिया। शार्प और ग्रीन (1975 : 221) का सुझाव था कि न सिर्फ 'छात्रों में एक विकासमान स्तरण पाया जाता है बल्कि शिक्षा के अंतर्तत्व का भी चयनवृत्ति के साथ आयोजन और सामाजिक रूप से संप्रेषण किया जाता है।' जैसा कि लेखकगण का मत था, इस निष्कर्ष का महत्व यह है कि शरू-शुरू में ही सफल या असफल समझ लिए गए बच्चों का व्यावसायिक ढांचे में भावी प्रवेश पहले से ही नाजुक हद तक निर्धारित हो चुका होता है।

देशवार संदर्भ

दक्षिण अमरीका के वे चार देश (चित्र 1) एक-दूसरे से अनेक अर्थों में भिन्न हैं जो इस अनुसंधान का परिवेश बनाते हैं। लेकिन हम यहां उनके कुछेक जनांकीय सूचकों तथा उनके सांस्कृतिक-शैक्षिक विकास की कुछ विशेषताओं पर ही ध्यान केंद्रित करेंगे (तालिका 3 देखें)। यहां हम उस कारक के हवाले भी देंगे जो यहां वर्णित अनुसंधान के संचालन को निर्धारित करने वाला अहम कारक नजर आता है। यह कारक है : उनका 'राजनीतिक आवेश।'

बोलीविया और चिली पड़ोसी देश हैं। अभी भी बोलीविया को चिली से शिकायतें हैं जिनका उद्गम 19वीं सदी के उन युद्धों में है जिनके द्वारा चिली ने बोलीविया को समुद्र के संपर्क से वंचित कर दिया था। बोलीविया की जनसंख्या का एक बड़ा भाग क्वेशुआ और अयमारा इंडियन मूल का है जिसके वंशज चिली के उत्तरी भागों में रहते हैं। दोनों

देशों की जनसंख्याओं की संगीत और हस्तकला संबंधी साझी विशेषताओं का कारण यही है। बोलीविया (10,98,581 वर्ग किमी) चिली (7,56,946 वर्ग किमी) से बड़ा देश है। लेकिन 1970 में बोलीविया की जनसंख्या 50 लाख थी जबकि चिली की 11.1 करोड़ थी। बोलीविया में इंडियन मूल की जनता स्पेनी मूलवालों से बहुत ज्यादा है और व्यवहार में आधे से भी कम जनता स्पेनी बोलती है। दूसरी ओर चिली नृजातीय, भाषाई और सांस्कृतिक दृष्टि से कहीं बहुत ज्यादा एकरस है। इसका आंशिक कारण यह है कि उपनिवेशीकरण के दौर में स्पेनी लोग इंडियन जनता से घुलमिल गए। मगर इंडियन जनता और स्पेनी हमलावरों के बीच तीन सदियों तक चले युद्ध में इंडियन लोगों का सफाया भी इसका एक कारण है। इसके अलावा बाद में आनेवाले मुख्यतः जर्मन, यूगोस्लाव और इतालवी आव्रजकों ने भी देश को बोलीविया से अधिक मुखर यूरोपीय जीवनदृष्टि प्रदान करने में योगदान दिया। आर्थिक दृष्टि से दोनों ही देश अपने खनिज उत्पादों (बोलीविया में टिन और चिली में तांबे) के निर्यात पर काफी बड़ी हद तक निर्भर हैं यद्यपि यह बात भी सच है कि कृषि-उत्पादन



चित्र 1: विवेचित चार दक्षिणी अमरीकी देश और उनकी राजधानियां

चिली के निर्यात का प्रमुख घटक है।

दोनों देशों की राजधानियों पर ध्यान देकर हम जान सकते हैं कि उनके विकास के स्तर और आबादी के घटकों में किस कदर भिन्नताएं हैं। सांतियागो (चिली) लगभग 40 लाख आबादीवाला एक आधुनिक नगर है। दर्शक की नजरों के सामने गगनचुंबी इमारतों की एक प्रभावशाली शृंखला पृष्ठभूमि में मौजूद एंदीज पर्वतमाला की राजसी शोभा से बाजी लगाए हुए है; यह पर्वतमाला नगर के पूर्वी भाग को घेरे हुए है। यहां भी अमीरों के रोचक वास्तुकलावाले भवनों के इर्द-गिर्द खूबसूरत बाग लहलहाते हैं। नगर के दक्षिणी, उत्तरी और पश्चिमी भागों की सीमा तक दर्शक को निकृष्ट कोटि के मकानों की कहीं बहुत ज्यादा लंबी कतारों और भारी इनसानी जमावड़ों के रूप में दो विरोधी छोरों का प्रभाव दिखाई देता है। बोलीविया की राजधानी ला पाज एक पठारी नगर है जिसके इर्द-गिर्द मंत्रमुग्ध करनेवाले पहाड़ों के दृश्य हैं। नगर की सीमा के अंदर दर्शक इन पर 3000 से 4000 मीटर तक चढ़ सकता है और फलस्वरूप तापमान, हरियाली और सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों में अंतर का अनुभव कर सकता है। यह नगर अजनबियों को सांतियागो से बहुत अधिक भिन्न दिखाई पड़ता है। ला पाज में ऊंचाइयों पर आबाद झुग्गियोंवाले इलाके सांतियागो के इसी प्रकार के इलाकों से भी बहुत अधिक बदहाल नजर आते हैं। ला पाज के निम्न-मध्यवर्गीय लोग सांतियागो के मध्यवर्गीय क्षेत्रों की तुलना में अपेक्षाकृत निर्धन जनता से अधिक मेल खाते हैं। नगर के केंद्र में भ्रमण करते हुए भी दर्शक ला पाज की विविधता का अनुभव करता है तथा स्पेनी और मेस्तिजो लोगों को इंडियन स्त्री-पुरुषों के लगभग बराबर तादाद में देखता है। ये इंडियन स्त्री-पुरुष अपने रंग-बिरंगी पोलेरा (भरपूर घेरे की स्कर्ट) पहने हुए छोटी-छोटी चीजें और परंपरागत हस्तकला की वस्तुएं बेचते दिखाई देते हैं या पुरुष हकीमों से बात कर रहे होते हैं जो अपना धंधा नगर के प्रमुख गिरजाघरों में से किसी एक के बाहर चलाते हैं।

बोलीविया की जनता की प्रतिव्यक्ति औसत आय (570 अमरीकी डालर) इस क्षेत्र की सबसे कम आयों में है जबकि चिलीवासियों की आधिकारिक प्रतिव्यक्ति आय 2210 अमरीकी डालर है। लेकिन औसत पर जोर देनेवाली आधिकारिक सूचनाएं समृद्ध वर्गों और वास्तविक निर्धन जनता के बीच मौजूद अंतर को छिपाती हैं। मसलन प्रस्तुत अनुसंधान के अंतिम दिनों (1982) में बोलीविया में भारी मूल्यवृद्धि हुई। फलस्वरूप मुद्रास्फीति की दर बढ़कर 1981 में 25 प्रतिशत और 1982 में 300 प्रतिशत हो गई और जनता को ब्रेड के लिए 48 और दूध के लिए 610 प्रतिशत अधिक दाम देने पड़ने लगे। उस वक्त खदान मजदूरों के वेतन में सबसे अधिक बढ़ोत्तरी की गई, मगर यह भी मात्र 84 प्रतिशत (ला.अ. आ.आ. 1984) थी।

1982 में चिली में भी बहुत नाटकीय स्थिति थी। वृहत्तर सांतियागो में बेरोजगारी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई जहां चिली की एक-तिहाई से अधिक कामकाजी जनता और आधे से अधिक नगरीय श्रमशक्ति रहती है। सितंबर 1982 तक वृहत्तर सांतियागो के हर चार में

तालिका 3 : बोलीविया, चिली, कोलंबिया, वेनेजुएला, ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका के जनांकीय सूचक

देश	स घ उ (प्रति व्यक्ति आय अमरीकी डालर), 1982	जन्म के समय प्रत्याशित आयु (वर्षों में), 1982	नगरीकरण[अ] 1982	साक्षरता के स्तर[ब] %		6-17 आयुवर्ग में विद्यालयों में नामांकन के अनुपात, 1981		शिक्षाव्यय, स घ उ के प्रतिशत रूप में, 1981
				पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	
बोलीविया	570	51	45	24.2	48.6	77	64	3.1
चिली	2210	70	82	11.1	12.8	94[स]	96[स]	5.8[स]
कोलंबिया	1460	84	65	13.6	16.6	83	87	2.6
वेनेजुएला	4140	68	64	20.3	26.6	75	73	5.8
ग्रेट ब्रिटेन	9660	74	91	-	-	90	92	5.7[द]
अमरीका	13160	75	78	-	-	99[द]	99[द]	6.8

स्रोत : यूनेस्को (1980 ब, 1981, 1984); विश्व बैंक (1984)

अ : कुल जनसंख्या से नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत अनुपात.

ब : विभिन्न वर्ष : बोलीविया 1976, चिली 1970, कोलंबिया 1981, वेनेजुएला 1971.

स : ये मान 1982 के लिए हैं.

द : ये मान 1980 के लिए हैं.

से एक व्यक्ति बेरोजगार था। आधिकारिक तौर पर दर्ज 22 प्रतिशत बेरोजगारी तब पिछले साल के मुकाबले दोगुनी थी। इस समस्या ने विनिर्माण और भवन-निर्माण क्षेत्रों को खास तौर पर नुकसान पहुंचाया। इस तथ्य के कारण यह समस्या और भी नाटकीय बन गई कि सरकार के न्यूनतम रोजगार कार्यक्रम को छोड़ दें तो तमाम बेरोजगारों और उनके परिवारों के लिए जीवन-निर्वाह का और कोई उपाय भी नहीं था (ला.अ.आ.आ. 1984 देखें)।

बोलीविया और चिली के शैक्षिक स्तरों में अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण अंतर मौजूद हैं। इसका पता उनकी साक्षरता दरों से तथा स्त्री-पुरुष आबादी की अलग-अलग शैक्षिक उपलब्धियों से चलता है। मसलन 1970 की जनगणना के अनुसार चिली में स्त्री-साक्षरता की दर 12.8 प्रतिशत थी मगर यही बोलीविया में 58.8 प्रतिशत थी (तालिका 3 देखें)। इसी तरह 1975 में विद्यालयों में नामांकन का अनुपात बोलीविया के मुकाबले चिली में अधिक था। फिर भी दोनों ही देश शिक्षा के लिए अपने-अपने सकल घरेलू उत्पाद (स.घ.उ) के लगभग बराबर भाग खर्च कर रहे थे।

चिली और बोलीबिया ने क्रमशः 1965 और 1968 में अपनी-अपनी शिक्षाव्यवस्था में दूरगामी और आधुनिकीकरण संबंधी सुधार किए। दोनों मामलों में सुधारों का मकसद विद्यालयों में नामांकन के लिए शैक्षिक प्रावधान बढ़ाना था ताकि बच्चे कम से कम प्राथमिक शिक्षा पूरी कर सकें। दोनों ही व्यवस्थाओं ने 8-वर्षीय प्राथमिक या बुनियादी शिक्षा को अपनाया और उसी के अनुसार पाठ्यक्रमों को बदला। विस्तार और समान शैक्षिक अवसरों से संबंधित उद्देश्यों को हासिल करने में विविधताओं के बावजूद दोनों ही देश अनुतीर्णता और बीच में पढ़ाई छोड़ने के कारण होनेवाले अपव्यय को रोकने में असफल रहे हैं। मसलन हम देखते हैं कि चिली में जो समूह कक्षा एक में प्रवेश करता है, शिक्षा सत्र की समाप्ति तक उसका मात्र 80 या 90 प्रतिशत शिक्षा को जारी रख पाता है (तालिका 2 देखें)। यहां अगर हम शीफेलबाइन और ग्रासी (1981) के आकलन[4] का प्रयोग करें तो पहली कक्षा में अनुत्तीर्ण छात्रों की दर 23.4 प्रतिशत है। और भी हाल के सरकारी आंकड़े अनुत्तीर्णता की समग्र दर के कम होने के संकेत देते हैं हालांकि पहले वर्ष में इसका प्रतिशत अभी भी सबसे अधिक (14.3 प्रतिशत) है। दुर्भाग्य से शीफेलबाइन और ग्रासी (1981) के आकलन को छोड़ दें तो बोलीविया के बारे में बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की या अनुत्तीर्णता की आधिकारिक दरें बताई नहीं गई हैं। इस आकलन के अनुसार 1975 में पहले वर्ष में अनुत्तीर्णता की दर 24.4 प्रतिशत थी।

विचाराधीन दो अन्य देश यानी कोलंबिया और वेनेजुएला अपने दक्षिण के पड़ोसी देशों से अनेक प्रकार से अलग हैं। उनकी आबादी चिली के मुकाबले बहुत कम एकरस हैं लेकिन संस्कृति और भाषा की दृष्टि से बोलीविया की आबादी से अधिक एकरस हैं। विशेषकर कोलंबिया को दक्षिण अमरीकी गणराज्यों में सबसे अधिक स्पेनी रंग में रंगा हुआ माना जाता है हालांकि 1970 की जनगणना के अनुसार यहां यूरोपीय मूल की जनता का भाग 20 प्रतिशत से कुछ ही अधिक था। मेस्तिजो जनता का भाग 50 प्रतिशत है जबकि शेष 30 प्रतिशत

में मुलातो, अश्वेत और इंडियन आ जाते हैं। कोलंबिया दक्षिण अमरीका के पश्चिमोत्तर कोने पर स्थित है और इसका समुद्रतट प्रशांत महासागर और कैरिबियन को छूता है। कृषि और खनिज की दृष्टि से यह एक समृद्ध देश है लेकिन उसकी अर्थव्यवस्था कॉफी के उत्पादन पर ज्यादा निर्भर है। गांवों से नगरों और खासकर तीस लाख आबादी वाली राजधानी बगोता की ओर पलायन भयानक सामाजिक समस्याओं का कारण है। यह बात खासकर 'गेमाइनों' (आवारागर्द बच्चों) के बारे में स्पष्ट है जो नगर की सड़कों पर भटकते हैं, जीवन-निर्वाह के लिए चोरी करते हैं और जहां ठिकाना मिले, वहीं सो जाते हैं। कोलंबिया की प्रति-व्यक्ति आय 1460 अमरीकी डालर है जिसके कारण देश आसानी से, विश्व-बैंक की शब्दावली में, मध्यम आय वाले देशों (410 डालर से अधिक आयवालों) की श्रेणी में आ जाता है। लेकिन लातानी अमरीका के दूसरे देशों की ही तरह कोलंबिया भी बढ़ती बेरोजगारी और आर्थिक कठिनाइयों से त्रस्त है। वास्तव में 1982 में उसका सकल राष्ट्रीय उत्पाद मात्र एक प्रतिशत बढ़ा। कोलंबिया में निरक्षरता की दरें (1981 में 15 प्रतिशत) चिंताजनक सीमा तक ऊंची हैं लेकिन विद्यालयों में अपव्यय की दरें और भी चिंता का विषय हैं। 1980 में राष्ट्र के स्तर पर कुल 40 प्रतिशत बच्चे प्राथमिक शिक्षा जारी रखने की स्थिति में थे (तालिका 4 देखें)। इसमें ग्रामीण प्राथमिक छात्रों का भाग (16.7 प्रतिशत) सबसे कम था। जैसाकि शिक्षा मंत्रालय ने बताया, 1980 में पहले वर्ष में अनुत्तीर्णता की दर 16.9 प्रतिशत थी। लेकिन गणना की एक अन्य पद्धति का प्रयोग करके शीफेलबाइन और ग्रासी (1981) ने बताया कि यह दर 40 प्रतिशत के आसपास थी। कोलंबिया में 6-23 साल के आयुवर्ग की

तालिका 4 : कोलंबिया में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में प्रतिधारण की दरें (1980)

	प्राथमिक	माध्यमिक
नगरीय	60.1	53.6
ग्रामीण	16.7	26.0
योग	40.1	53.6

स्रोत : मिनिस्तेरियो दे एजुकेशियों नेशनल, आफिशिना सेक्तोरियाल दे प्लेनिएसियों एजुकेतिवा, दिविजों दे एस्तादिस्तिकस या सिस्तेमस, बगोता, कोलंबिया.

विद्यालय-नामांकन की दरें बोलीविया से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं थीं (तालिका 3 देखें)। प्रस्तुत अध्ययन के आरंभ के समय तक भी वेनेजुएला दुनियाभर में तेल के बढ़े दामों से फायदे उठा रहा था। इस तरह इसे इस क्षेत्र के सबसे अधिक प्रतिव्यक्ति आय (4140 अमरीकी डालर) वाले देशों में गिना जाता था। इसकी जनसंख्या (167 लाख) में वृद्धि की दर दुनिया की सबसे अधिक दरों में गिनी जाती है। लेकिन इस आबादी का वितरण असमान है क्योंकि

अधिकाधिक लोग नगरों की ओर आ रहे हैं। राजधानी कराकास की पहाड़ियों पर गरीबों की झुग्गियों की कतारों और ऊंची इमारतों की संख्या से यह बात साफ हो जाती है। वेनेजुएला अभी भी भारी निरक्षरता (27.8 प्रतिशत), विद्यालयों के नामांकन के कम अनुपातों, तथा 1979 से बढ़ती आ रही बेरोजगारी (1982 में 8.2 प्रतिशत) जैसी समस्याओं से त्रस्त है। 1976 में अनुत्तीर्णता की आधिकारिक दरों से जाहिर है कि प्राथमिक शिक्षा के पहले वर्ष में अनुत्तीर्णता की माध्य दर 10.7 प्रतिशत (यूनेस्को 1980 अ) थी। निश्चित ही यह इस क्षेत्र की सबसे कम दरों में एक है, लेकिन 1974 और 1977 के बीच स्वतः प्रोन्नति की व्यवस्था इसका कारण है। लेकिन प्रोन्नति की इस व्यवस्था में अगर माता-पिता स्वेच्छा से अपनी संतान को एक ही कक्षा में फिर से पढ़ाना चाहें तो दोहराव का होना संभव है।

सभी देशों में अध्यापक-प्रशिक्षण में थोड़े-बहुत अंतर मौजूद हैं। प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक मोटे तौर पर नार्मल स्कूलों में प्रशिक्षण पाते हैं जबकि विश्वविद्यालय माध्यमिक अध्यापकों को प्रशिक्षण देते हैं। नार्मल स्कूल प्रशिक्षण के ऐसे संस्थान हैं जो विश्वविद्यालय के समकक्ष हो सकते हैं और नहीं भी, मगर वे माध्यमिक स्तर के बाद 2-3 वर्ष की शिक्षा प्रदान करते हैं। बोलीविया, चिली और वेनेजुएला जैसे देशों में बुनियादी शिक्षा के दो चरण हैं। यहां अध्यापक-प्रशिक्षण के पहले चरण में विषय की विविधता नहीं होती, मगर दूसरे चरण में होती है। अब ग्रामीण और नगरीय अध्यापकों के प्रशिक्षण के रूप अलग-अलग नजर नहीं आते। संबंधित देशों में प्राथमिक, अध्यापकों के लिए विश्वविद्यालय के किसी पाठ्यक्रम को अपनाकर प्रोन्नति के अवसर में वृद्धि करना, बल्कि अध्यापन-कर्म जारी रखते हुए किसी और पेशे में जाने के प्रयास करना, कोई असाधारण बात नहीं है। लातीनी अमरीका के लगभग सभी देशों में प्राथमिक अध्यापकों के वेतन और सामाजिक रोबदाब कम होते हैं, और जिन प्रयासों की ऊपर चर्चा की गई है वे इनसे जुड़ी समस्याओं पर काबू पाने के तरीके हैं। अभी तक प्राथमिक शिक्षा में अध्यापिकाओं की तादाद ही अधिक है, खासकर चिली में जहां अध्यापन की कुल संख्या में उनका भाग 74 प्रतिशत है। संबंधित देशों में औसत कार्यभार बहुत अधिक नहीं लगता। बोलीविया, चिली और वेनेजुएला में अध्यापक-छात्र अनुपात क्रमशः 20, 34 और 33 हैं। ये अनुपात संयुक्त राज्य अमरीका के अनुपात (19) के करीब नहीं हैं। फिर भी ये चाड (77), और कोरिया गणराज्य (48) के अनुपातों से काफी कम हैं (यूनस्को 1981 देखें)।

अध्ययन के समय इन देशों की ऐतिहासिक और राजनीतिक स्थितियों पर विचार करने पर उनके बीच उल्लेखनीय अंतर दिखाई पड़े। हालांकि कोलंबिया और वेनेजुएला को हम सापेक्ष रूप में लोकतंत्र मान सकते हैं जहां सामान्यतः चुनाव होते रहे हैं, मगर चिली 8 वर्षों से एक निर्मम तानाशाही का सामना कर रहा है। अध्ययन के काल में बोलीविया में भी तब तक का सबसे अधिक निर्मम सैनिक सत्तापलट (सितंबर 1981 में जनरल गार्शिया मेजा द्वारा किया गया सत्तापलट) देखने को मिला।

वेनेजुएला का अध्ययन वहां के शिक्षा मंत्रालय ने कराया। कोलंबिया में वास्तव में

शिक्षा मंत्रालय के एक अधिकारी ने निजी रूप से इस अध्ययन में अपने देश की भागीदारी सुनिश्चित की और प्रायोजक के रूप में एक उपयुक्त संस्था का प्रस्ताव रखा। पता चला कि राष्ट्रीय शिक्षाशास्त्र विश्वविद्यालय में स्थित शैक्षिक अनुसंधान केंद्र ही यह संस्था थी। लेकिन इस परियोजना में चिली या बोलीविया के शिक्षा मंत्रालयों को खींचना बहुत मुश्किल होता। इसलिए चिली में एक निजी शैक्षिक अनुसंधान केंद्र ने इसे प्रायोजित किया। यह केंद्र चिली कैथलिक विश्वविद्यालय का अंग था और 1973 के सैनिक विद्रोह के बाद के वर्षों में अन्य समाज विज्ञान केंद्रों की ही तरह किनारे लगा दिया गया था। अनुसंधान के समय इसे ईसाई मानववादी अकादमी की संस्थागत सहायता प्राप्त हुई। इस अकादमी की स्थापना चिली के कैथलिक चर्च ने समाज विज्ञान अनुसंधान की स्वतंत्रता सुरक्षित रखने के उद्देश्य से की थी। बोलीवियाई केंद्र भी एक निजी संस्थान था जिसे फौजी तानाशाही अकसर परेशान करती रही। इसका कारण इसकी गतिविधियां थीं, जिनका मकसद देश के निर्धन वर्गों में शिक्षा का प्रसार करना था। बोलिविया का सैनिक विद्रोह उस समय हुआ जब यह अध्ययन क्षेत्रकार्य के चरण में प्रवेश कर रहा था। इस कारण ग्रामीण विद्यालयों में क्षेत्रकार्य करना अनुसंधानकर्ताओं की सुरक्षा के लिए बहुत ही घातक था। फलस्वरूप हमें इन विद्यालयों को अपने अध्ययन से खारिज करना पड़ा। दूसरी ओर चिली ने 1981 में अपनी विद्यालय प्रणाली के प्रशासन में एक भारी परिवर्तन किया जो अध्यापकों और प्रधानाध्यापकों के लिए भारी सरदर्द बन गया। खासकर केंद्रीयकृत नियंत्रण की जगह स्थानीय नगरीय निकायों के नियंत्रण का व्यवहार होने लगा जिसके कारण कुछ अध्यापक अनुचित रूप से सेवामुक्त कर दिए गए। जाहिर है कि इससे दूसरे भी अपने रोजगार को लेकर भयभीत हो उठे। व्यवस्था के इस परिवर्तन में अफसरशाही के हस्तक्षेप में और निरीक्षण-पद्धति के रूपों में भी वृद्धि सामने आई जिसके चलते अध्यापकों की स्वतंत्रता खतरे में नजर आने लगी।[5] इन सबके अलावा प्राथमिक अध्यापकों के वास्तविक पारिश्रमिक कम हो गए। फलस्वरूप वे लगभग अकुशल मजदूरों के स्तर पर आ गए।

अभी तक हमने इस पुस्तक में प्रस्तुत अनुसंधान-कार्य की पृष्ठभूमि की विवेचना की है। अगले अध्यायों में हम भिन्न-भिन्न परिवेशों में किए गए अध्ययन का परिचय देंगे और इसके लिए प्रत्येक देश की रिपोर्ट के चुनिंदा पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करेंगे। अनुसंधान-कार्य चलाने और शोधकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए विभिन्न शोधदलों ने जिन कार्यपद्धतियों का उपयोग किया, अगला अध्याय उन्हीं पर केंद्रित होगा। फिर हम अध्याय 3 में अध्ययन के परिवेशों की चर्चा करेंगे। अध्याय 4-7 विभिन्न देशों में किए गए अध्ययनों के कुछ पक्षों से संबंधित होंगे। ये प्रत्येक देश की रिपोर्ट के विस्तृत सारसंक्षेप नहीं होंगे। इसकी बजाए ये उन क्षेत्रों की चयनमूलक विवेचनाएं हैं जो एकसाथ देखने पर अध्यापन-अधिगम तथा सफलता-असफलता की विवेचना के लिए प्रासंगिक लगते हैं। मसलन अध्याय 4 में एरासली दे तेजानो ने कोलंबिया की कक्षाओं में प्रयुक्त अध्यापन-शैली का विश्लेषण किया है। इरमा हर्नादीज ने अध्याय 5 में ढांचागत स्तर पर भिन्न वेनेजुएलाई विद्यालयों की विशेषताओं और

उनकी अध्यापन-पद्धति की चर्चा की है। अध्याय 6 में मेरित्जा दे क्रेस्पो ने बोलीविया के अध्ययन में मात्र एक अध्यापक का दृष्टांत प्रस्तुत किया है जिसे अधिकांश दूसरे अध्यापकों से भिन्न समझा जाता है। अंत में, जिस अध्ययन ने एक सत्र विशेष के घटनाक्रमों का सबसे अधिक गहराई से विचार किया है, वह ग्रैबिएला लोपेज और उनके सहकर्मियों का किया हुआ है। इसमें (अध्याय 7) उन्होंने चिली के विद्यालयों में असफलता के निर्धारण की प्रक्रियाओं की विवेचना की है। फिर अध्याय 8 विद्यालयों और अध्यापकों की विशेषताओं के बारे में तमाम देशवार अध्ययनों के निष्कर्षों का सार प्रस्तुत करता है। साथ ही यह अध्यापन की उन विशेषताओं का व्याख्यात्मक विश्लेषण भी करता है जो शैक्षिक असफलताओं से जुड़ी लगती हैं। हमने पुस्तक का समापन एक निष्कर्ष (अध्याय 9) के साथ किया है जो शायद ऐसे अध्ययन की संभावनाओं का वक्तव्य है जिसे हमें आजमाइशी सामाजिक-राजनीतिक और वृत्तिक दशाओं में संपन्न करना पड़ा। तीसरी दुनिया के तथा अन्य देशों में भी अकसर ऐसी ही स्थितियां दिखाई देती हैं।

टिप्पणियां

1. ब्राजील के शिक्षाशास्त्री पाओलो फ्रेरे का कृतित्व और लेखन (1972 अ-ब, 1974) इस सिलसिले में एक विशेष शक्तिशाली प्रभाव रहा है. 1964 में ब्राजील से देशनिकाला मिलने के बाद वे चिली चले गए जहां वे एदुआर्दो फ्रेई की क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक सरकार (1964-70) के भूमि-सुधार के वयस्क शिक्षा कार्यक्रमों से जुड़े रहे.
2. उपलब्धि के निर्धारकों के अध्ययन (दूसरे शब्दों में शैक्षिक उत्पादन फलन संबंधी अध्ययनों) पर शीफेलबाइन और सीमंस (1981) की समीक्षा देखें. इसमें लातीनी अमरीका संबंधी प्रासंगिक अध्ययन भी शामिल है. जैसे ई.सी.आई.ई.एल (प्रोग्राम दे एस्तुदियो कंजुंतो दे इंतिग्रेशियों इकोनामिका लातीनी अमेरिकाना) के अर्थशास्त्र अनुसंधान केंद्रों द्वारा प्रायोजित तथा आई.ई.ए. (अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक उपलब्धि मूल्यांकन संगठन) द्वारा प्रायोजित अध्ययन.
3. लातीनी अमरीका के 23 देशों में अनुत्तीर्णता के प्रतिमान से जाहिर है कि यह चक्र के पहले वर्ष में अधिकतम होती है और फिर गिरते हुए अंतिम (छठे या आठवें) वर्ष तक सबसे कम हो जाती है.
   (यूनेस्को 1980 अ देखें.)
4. शीफेलबाइन और ग्रासी (1981) ने स्पष्ट किया है कि नामांकन और अनुत्तीर्णता के वर्षवार उपलब्ध आंकड़े दोहराव के वास्तविक स्तर को कम करके पेश करते हैं. दोहराव के आंकड़े आम तौर पर हर नई कक्षा के छात्रों से अध्यापकों द्वारा प्राप्त की गई सूचनाओं पर आधारित होते हैं. कमजोर छात्रों को अकसर उनके माता-पिता उसी कक्षा में दोबारा पढ़ने के लिए दूसरे विद्यालयों में भेज देते हैं. मंत्रालयों को भेजे गए आंकड़े वही होते हैं जो कक्षाध्यापक आम तौर पर केवल एक बार छात्रों से हाथ उठवाकर दर्ज करते हैं. इस प्रकार 'शिक्षा मंत्रालय की सांख्यिकीय इकाइयों द्वारा विकसित तमाम जटिल सांख्यिकीय परिभाषाएं अंततः अनुत्तीर्ण छात्र के बारे में प्रत्येक छात्र की समझ पर आधारित होती हैं.' इस कारण शीफेलबाइन और ग्रासी (1981) ने अनेक लातीनी अमरीकी देशों में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के आंकड़ों के आधार पर दोहराव के आकलन के लिए तीन वैकल्पिक कार्यपद्धतियों के उपयोग का प्रस्ताव किया है. पहला प्रतिरूप प्रत्येक वर्ष-कक्षा में नामांकन के आयुवार वितरण का उपयोग करता है तथा उसे वर्ष t में कक्षा g के नामांकन से, वर्ष t+1 में कक्षा g + 1 में प्रोन्नति से, वर्ष t में कक्षा g के अनुत्तीर्ण छात्रों की संख्या से, वर्ष t में कक्षा g के नए छात्रों से, तथा समय (पंचांग वर्ष और आयु समूह, दोनों) से जोड़ता है. दूसरा प्रतिरूप नए छात्रों से पहली कक्षा के नामांकन के संबंधों पर आधारित है. तीसरा प्रतिरूप पहली कक्षा के नामांकन को अगले काल में संक्रमण के प्रवाहों से जोड़ता है; इस प्रकार अनुत्तीर्ण छात्रों, उत्तीर्ण छात्रों और शिक्षात्यागियों का योग पहली कक्षा के नामांकन के बराबर होता है. इस तरह नामांकन से कुल उत्तीर्ण छात्रों और शिक्षात्यागियों की संख्याएं निकाल देने पर अनुत्तीर्ण छात्रों की संख्या का पता चलता है. यही वह प्रतिरूप है जो अनुत्तीर्णता की अधिकतम दरें दर्शाता है.
5. इसका मुख्य कारण यह था कि शिक्षा मंत्रालय ने अपनी निगरानीवाली भूमिका अर्थात शिक्षा की गुणवत्ता पर नजर रखने की भूमिका बनाए रखी. दूसरी ओर नगरीय निकायों का सरोकार विद्यालय के सुचारु संचालन से जुड़े सभी विषयों से था और इसलिए वे भी निगरानी के कार्य करते रहे. इस तरह व्यवहार में हुआ यह कि अध्यापक खुद पर मंत्रालय और नगरीय निकायों के प्रतिनिधियों की हद दर्जा और अकसर समान प्रकार की निगरानी के दबाव महसूस करने लगे.

संदर्भ ग्रंथ

एवॉलास, बी. और हद्दार, डब्ल्यू (1979) : *ए रिव्यू आफ टीचर इफेक्टिवनेस इन अफ्रीका, इंडिया, लैटिन अमेरिका, मिडिल ईस्ट, मलेशिया, फिलीपींस एंड थाइलैंड : सिंथीसिस आफ रेजल्ट्स,* अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र, ओटावा, ओंटारियो, कनाडा, आई डी आर सी एम आर 10.

फ्रेरे, पी (1972 अ) : *कल्चरल एक्शन फार फ्रीडम,* पेंग्विन बुक्स, हैमंड्सवर्थ, न्यूयार्क, अमरीका.

फ्रेरे, पी (1972 ब) : *पेडागाजी आफ द आप्रेस्ड,* पेंग्विन बुक्स, हैमंड्सवर्थ, न्यूयार्क, अमरीका.

फ्रेरे, पी (1974) : *एजुकेशन फार क्रिटिकल कांशसनेस,* शीड एंड वार्ड, न्यूयार्क, अमरीका.

बाल, एस (1981) : *बीचसाइड कंप्रेहेंसिव,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, ग्रेट ब्रिटेन.

यूनेस्को (1980 अ) : *वेस्टेज इन प्राइमरी एंड जनरल सेकंडरी एजुकेशन : ए स्टेटिस्टिकल स्टडी आफ ट्रेंड्स एंड पैटर्न्स इन रिपिटीशन एंड ड्रापआउट,* सांख्यिकी संभाग, यूनेस्को, पेरिस, फ्रांस.

यूनस्को (1980 ब) : *कंप्रेहेंसिव एनालिसिस आफ मेल एंड फिमेल इनरोलमेंट एंड इल्लिटरेसी : करेंट स्टडीज एंड रिसर्च इन स्टेटिस्टिक्स,* सांख्यिकी संभाग, यूनेस्को, पेरिस, फ्रांस.

यूनेस्को (1981) : *एजुकेशन स्टेटिस्टिक्स : करेंट सर्वे एंड रिसर्च इन स्टेटिस्टिक्स,* सांख्यिकी संभाग, यूनेस्को, पेरिस, फ्रांस.

यूनेस्को (1984) : *स्टेटिस्टिकल इयर बुक,* सांख्यिकी संभाग, यूनेस्को, पेरिस, फ्रांस.

रिस्ट, आर (1970) : स्ट्डैंट सोशल क्लास एंड टीचर एक्सपेक्टेशंस : दि सेल्फ-फुलफिलिंग प्रोफेसी इन घेटो एजुकेशन, *हारवर्ड एजुकेशनल रिव्यू,* 40 (3), 411-50.

रिस्ट, आर (1973) : *दि अर्बन स्कूल : ए फैक्टरी फार फेलियर,* एम आई टी प्रेस, कैंब्रिज, एम ए, अमरीका.

लातीनी अमरीका आर्थिक आयोग (ला अ आ आ) (1984) : *इकानामिक सर्वे आफ लैटिन अमेरिका एंड दि कैरिबियन,* ला अ आ आ, संयुक्त राष्ट्र, सांतियागो, चिली.

लीकॉक, ई.बी. (1969) : *टीचिंग एंड लर्निंग,* बेसिक बुक्स ई, न्यूयार्क, अमरीका.

लीकॉक, ई.बी. (1971) : थ्योरेटिकल एंड मेथोडोलाजिकल प्राब्लम्स इन दि स्टडी आफ स्कूल्स; एम एल वेक्स, एस डायमंड और एफ ओ गियरिंग द्वारा संपादित *एंथ्रोपोलाजिकल पर्सपेक्टिव्स आन एजुकेशन*, बेसिक बुक्स ई, न्यूयार्क, अमरीका में संकलित.

जेसी, सी (1970) : *हाईटाउन ग्रामर*, मानचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, मानचेस्टर, ग्रेट ब्रिटेन.

विश्व बैंक (1984) : *वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट*, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड, ग्रेट ब्रिटेन.

शीफेलबाइन, ई (1980) : *एलिमेंट्स आफ ए सिस्टमेटिक डिस्कशन आफ स्ट्रेटेजीज दैट कंसीडर द एक्सटर्नल एंड इंटर्नल कालेज आफ स्कूल फेलियर*, 1980 के दशक में लातीनी अमरीका और कैरिबियन की शैक्षिक आवश्यकताओं और संभावनाओं के अध्ययन के लिए आयोजित अमरीकी राज्य संगठन, तकनीकी बैठक में पढ़ा गया आलेख, पनामा, अमरीकी राज्य संगठन, वाशिंगटन डी सी, अमरीका.

शीफेलबाइन, ई और ग्रास, एम सी (1981) : स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट आन रिपीटीशन इन लैटिन अमरीका, *स्टेटिस्टिकल मेथड्स फार इंप्रूविंग द एस्टीमेशन आफ रिपीटीशन एंड ड्राप-आउट : टु मेथोडोलाजिकल स्टडीज*, सांख्यिकी संभाग, यूनेस्को, पेरिस, फ्रांस में संकलित.

शीफेलबाइन, ई और सीमंस, जे (1981) : *दि डिटरमिनेंट्स आफ स्कूल एचीवमेंट : ए रिव्यू आफ दि रिसर्च फार डेवलपिंग कंट्रीज*, अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र, ओटावा, ओंटारियो, कनाडा, आई डी आर सी ई एस 24 ई, पृष्ठ संख्या 36.

हारग्रीव्ज, डी एच (1967) : *सोशल रिलेशंस इन ए सेकंडरी स्कूल*, रुटलेज एंड केगन पाल लि. लंदन, ग्रेट ब्रिटेन.

2. अनुसंधान की प्रक्रिया

शैक्षिक सफलता या असफलता को जन्म देनेवाली प्रक्रियाओं का अध्ययन शुरू करने का हमने जब निर्णय लिया तब यह जाहिर था कि परिमाणात्मक तथा और भी विशिष्ट ढंग से कहें तो नृजातिशास्त्रीय अनुसंधान के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना आवश्यक होगा। हमारे शोधकर्ताओं की पृष्ठभूमि बेहद अलग-अलग थीं और उनके अनुभव भी भिन्न थे। कुछ तो यूरोपीय और उत्तर अमरीकी अनुसंधान और समाजविज्ञान के सिद्धांतों में पारंगत थे। कुछ दूसरे शोध की रूपरेखा बनाने की अपेक्षा कार्रवाई की योजनाएं विकसित करने में राहत महसूस करते थे। लेकिन एक दीर्घकालिक शोध परियोजना चलाने के लिए आवश्यक कार्य का व्यवस्थित अनुभव शायद ही कुछ को रहा हो। इसलिए बगोता में योजना बनाने के लिए आयोजित आरंभिक गोष्ठी में हमने तय किया कि परियोजना शुरू होने से पहले ही स्पेनी भाषा में प्रशिक्षण दिया जाए। आस्टिन स्थित टेक्सास विश्वविद्यालय तथा मेक्सिको सिटी स्थित राष्ट्रीय राजनीतिशास्त्रीय संस्थान के शोधकर्ताओं से संपर्क करके गुणात्मक अनुसंधान के विभिन्न चरणों से जुड़े सैद्धांतिक ढांचों और व्यावहारिक पद्धतियों के बारे में 6 सप्ताह के प्रशिक्षण की रूपरेखा तैयार की गई और उसे लागू किया गया। आस्टिन में चला कार्यक्रम काफी हद तक मानवशास्त्रीय सिद्धांत पर तथा अमरीका में प्राप्य ऐसे शोध साहित्य पर केंद्रित था जिसका संबंध विद्यालय-शिक्षा से था। टेक्सास के हिस्पानी सामुदायिक विद्यालयों के माध्यम से व्यावहारिक अनुभव की व्यवस्था की गई। मेक्सिको में आयोजित प्रशिक्षण मानवशास्त्रीय साहित्य में और अधिक अंतर्दृष्टि प्रदान करता था। इसके अलावा वह नस्लविज्ञान के सैद्धांतिक आधारों पर तथा अन्य समाजविज्ञानों के सिद्धांतों से उसके संबंधों पर भी केंद्रित था। प्रयुक्त सामग्री में मेक्सिको में विद्यालयों में किए गए नृजातीय अनुसंधानों की रिपोर्ट भी शामिल थीं। इन कार्यशालाओं में चार देशवार संयोजक अर्थात एरासली दे तेजानो, मेरित्जा दे क्रेस्पो, ग्रेब्रिएला लोपेज और इरमा हर्नादीज शामिल हुए। प्रशिक्षण पूरा करके वे अपने-अपने देश वापस गए। वहां उन्होंने अपने सहकर्मी चुने, जैसे उन्होंने प्रशिक्षण पाया था उसी ढंग से उन लोगों को प्रशिक्षित किया तथा उनके साथ मिलकर अपने देश में अध्ययन की रूपरेखा तैयार की।

क्षेत्रकार्य की विशेषताएं

एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण और अनुसंधान-पद्धति के रूप में नृजातिशास्त्र की व्यापक विवेचना हुई है। मानवशास्त्र से इसका गहरा संबंध है मगर उसके जितना यह व्यवहृत नहीं है क्योंकि इसका समाजशास्त्रीय अन्वेषण से भी गहरा संबंध है। जहां तक प्रस्तुत अध्ययन का सवाल है, एक शोधपरक दृष्टिकोण के रूप में हमने नृजातिशास्त्र का चयन ज्ञान के निर्धारण तथा सामाजिक यथार्थ संबंधी ज्ञान अर्जित करने की विधियों की परिघटनात्मक (फिनामिनोलाजिकल) धारणा से उसके गहन संबंध के कारण किया।[1] प्रक्रियाओं के तथा सामाजिक घटनाओं में रत व्यक्तियों के अर्थ संबंधी संरचनाओं के वर्णन और बोध पर उसके जोर देने के कारण हमें लगता था कि यही विद्यालयजीवन की जटिलताओं को परखने तथा संभव हो तो छात्रों की सफलता और असफलता की स्थितियों की पहचान करने का सही साधन है।[2] विद्यालय-शिक्षा के संदर्भ में नृजातिशास्त्रीय कार्यों में कक्षा में भाषाई अंतःक्रिया जैसी व्यष्टिगत घटनाओं के प्रेक्षण, वर्णन और व्याख्या से चल कर, ओग्बू (1980) के शब्दों में, समष्टिगत नृजातिशास्त्र तक आ जाते हैं। समष्टिगत नृजातिशास्त्र का उद्देश्य किसी एक सामाजिक घटना तथा अन्य सामाजिक कारकों और संस्थाओं के संबंधों की छानबीन करना है। पुनरुत्पादनवादी (मसलन पियरे बोर्दियो या लुई आल्थ्यूसर द्वारा प्रतिपादित) सिद्धांतों[3] से असहमत होते हुए भी प्रस्तुत अध्ययन की मान्यताओं में हमने शैक्षिक प्रक्रियाओं पर किसी सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रकार के संदर्भगत कारकों के निर्धारक प्रभावों पर विचार किया है। इस तरह हमने महसूस किया कि हमारा चुना हुआ दृष्टिकोण समष्टिगत नृजातिशास्त्र के अधिक करीब होगा और ओग्बू (1980) ने जिस चीज को नृजातिशास्त्र का 'बहुस्तरीय' दृष्टिकोण कहा है उसकी तरफ बढ़ने का प्रयास करेगा। इसके लिए नृजातिशास्त्री को

> दरकार है एक 'नृजातीय कल्पनाशक्ति' वाले विद्यालय की तथा विद्यालय जिस समुदाय में स्थित है उसकी सामाजिक संरचना के बारे में एक अच्छे कार्यकारी सिद्धांत की। उसका अध्ययन 'समग्रतावादी' (होलिस्टिक) होना चाहिए अर्थात उसे दिखाना चाहिए कि शिक्षा किस प्रकार विद्यालयों से लाभान्वित होनेवाली जनता की अर्थव्यवस्था, राजनीतिकप्रणाली, स्थानीय सामाजिक संरचना और विश्वासप्रणाली से जुड़ी हुई है।

एक बहुस्थलीय दृष्टिकोण अपनाकर हम संदर्भगत कारकों के प्रभावों पर विचार कर सकते हैं (हेरोत और फायरस्टोन 1983 देखें)। इसलिए हमने तय किया कि विभिन्न दक्षिण अमरीकी देशों में नगरीय और ग्रामीण, दोनों क्षेत्रों से विद्यालय चुने जाने चाहिए। एक निम्न सामाजिक-आर्थिक विद्यालयगामी जनसंख्या का चयन करके हम अन्य सामाजिक-आर्थिक कारकों के प्रभाव को अपेक्षाकृत स्थिर रखेंगे; वैसे यह जनसंख्या यकीनन संबद्ध देश के अनुसार अलग-अलग किस्म के जीवन-अनुभवों से गुजरती होगी। जैसाकि ओग्बू (1980)

का सुझाव है, अन्य ऐतिहासिक प्रभावों और समुदाय से जुड़े प्रभावों पर ध्यान देने को भी हम वांछित समझते थे। मगर व्यवहार में यह हमेशा संभव नहीं था। वैसे तमाम शोधकर्ता उनकी प्रासंगिकता से परिचित लगे और उन पर कम या अधिक सीमा तक ध्यान देते थे।

आम तौर पर हमने अनुसंधान की जिन कार्यपद्धतियों का व्यवहार किया उनमें सहभागी प्रेक्षण, अर्धसंरचनाबद्ध साक्षात्कारों और दस्तावेजी विश्लेषण का सहारा लिया गया। शोध की प्रक्रिया प्रेक्षण की मुक्त, आरंभिक प्रक्रिया को संचालित करनेवाली 'पूर्वानुमानित समस्याओं'[4] से शुरू होकर और भी सटीक प्रेक्षण और साक्षात्कारों की तरफ बढ़ी। अध्ययन का क्रम आगे बढ़ा तो वर्णन और व्याख्यात्मक विश्लेषण अपेक्षाकृत तदर्थ और परिकल्पनात्मक स्थितियों से आगे चलकर प्रासंगिक प्रक्रियाओं के और भी सुस्पष्ट बोध की दिशा में बढ़ी। यह बोध अंशतः उन प्रमुख व्यवहारों और घटनाओं की तफतीश[5] पर आधारित था जो एक अर्से तक देखने पर प्रेक्षित स्थितियों को एक अर्थ प्रदान करते हुए नजर आती थीं। ऐसी स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त सभी प्रवर्ग आंकड़ों के बल पर ही निरूपित किए गए। वैसे ये प्रवर्ग आगे चलकर विद्यमान सिद्धांतों से जोड़े गए, मगर ये इन सिद्धांतों से नहीं बल्कि शोधकर्ता द्वारा प्रेक्षित घटनाओं से ही निरूपित किए गए।

देशवार रिपोर्टों और प्रस्तुत पुस्तक के अध्यायों में प्राप्त विवेचन को पुष्ट करने के लिए पेश किए गए आंकड़े बड़ी हद तक कक्षा में अध्यापक-छात्र अंतःक्रिया के बारे में दर्ज बातों या शिक्षाप्रक्रिया के विभिन्न कर्ताओं (अध्यापकों, छात्रों, या अभिभावकों) के साक्षात्कारों पर आधारित थे। इन टिप्पणियों के चयन का कारण यह था कि आरंभ में वे प्रमुख घटनाओं की पहचान के लिए उपयोगी सामग्री प्रदान करती थीं, विश्लेषण को एक दिशा देती थीं या दृष्टांतों के रूप में विभिन्न पाठों से सामने आनेवाले व्याख्यात्मक प्रवर्गों को पुष्ट करती थीं। कुल मिलाकर सामग्री की सामान्य बुद्धि पर आधारित व्याख्याओं को ही स्वीकार किया गया और विशेष रुचि वालों वार्तालापों के विश्लेषण का कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया, ऐसे वार्तालापों का जिन्हें स्टब्स (1977) जैसा कोई सामाजिक भाषा विज्ञानी जांचे-परखे : अर्थात जो कुछ कहा गया और जो कुछ अभिप्रेत है उसके समस्यामूलक संबंधों के विश्लेषण का। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से नृजातीय तथ्यों के विश्लेषण के द्वारा हम, लगभग अचेत रूप में, 'स्थिति की परिभाषाओं' के बारे में कर्ताओं के सरोकारों तक भी पहुंचे। इस मामले में अध्यापक को समस्याग्रस्त बच्चों की स्थिति की परिभाषा और व्याख्या के लिए तथा आगामी कार्रवाई का फैसला करने के लिए प्रेरित करनेवाला तत्व ऐसा ही एक सरोकार था।

हालांकि सभी देश सामान्य प्रश्नों के एक साझे ढांचे पर सहमत थे (इन्हें अध्याय 1 में प्रस्तुत किया गया है) और वे नगरीय और ग्रामीण, दोनों क्षेत्रों क्षेत्रों में निम्न सामाजिक-आर्थिक परिवेशों में स्थित विद्यालयों के पहले 4 वर्षों के अध्ययन पर भी सहमत थे, मगर इनको अमली जामा पहनाने का ढर्रा अलग-अलग देशों में अलग-अलग था। व्यावहारिक और राजनीतिक, दोनों प्रकार की स्थानीय स्थितियों से तालमेल बिठाने की

आवश्यकता इसका कारण थी। आगे के पृष्ठों में प्रेक्षित प्रक्रियाओं की परिभाषा और व्याख्या के लिए प्रयुक्त शोध कार्यपद्धतियों का हमने देशवार वर्णन किया है; प्रत्येक संदर्भ में अंतिम रिपोर्ट की प्रस्तुति का ढर्रा यही है। लेकिन विद्यालयों और अध्यापकों का वर्णन एक अलग अध्याय का विषय है।

बोलीविया

बोलीविया के अध्ययन के संयोजक ने आरंभ में चार शोधकर्ताओं का एक दल काम पर लगाया (आगे चलकर ये तीन ही रह गए, तालिका 5 देखें.)। उन्होंने टेक्सास और मेक्सिको के प्रशिक्षण सत्रों में प्रयुक्त दृष्टिकोण और सामग्री का उपयोग करके प्रशिक्षण का आयोजन भी किया। सभी शोधकर्ता पठन-पाठन, बहस, प्रेक्षण तथा क्षेत्र के ब्यौरे रखने में सक्रिय थे। इस चरण के पूरा होने के बाद इस दल ने विचाराधीन विद्यालयों और अध्यापकों का चयन और उनसे संपर्क किया ताकि उन्हें काम का उद्देश्य समझाया सके और उनकी रजामंदी पाई जा सके। प्रेक्षण के आरंभिक चरण का स्वरूप जांच-पड़ताल वाला था और इसमें ब्यौरे नहीं लिखे गए। इसका मकसद सत्र के आरंभ में बच्चों के अनुकूलन के प्रयासों को समझना तथा शोधकर्ताओं को विद्यालयों के कार्य-कलाप की संरचना और पद्धति से परिचित कराना था। औपचारिक प्रेक्षण-कार्य मार्च 1981 में शुरू हुए। तब ब्यौरे जरूर लिखे जाने लगे मगर प्रेक्षण फिर भी बड़ी हद तक ध्यानकेंद्र से वंचित रहे। इसका मकसद कक्षाओं और खेलकूद के दौरान की घटनाओं का वर्णन करना भर था।

प्रेक्षित कक्षाओं का चयन ला पाज के चार विद्यालयों में पहले से चौथे वर्ष तक की सभी समानांतर कक्षाओं में से बेतरतीब ढंग से किया गया। इस आरंभिक काल में प्रत्येक कक्षा का चार बार प्रेक्षण किया गया और प्रेक्षणों की अवधि तात्कालिक स्थिति के अनुसार बदलती रही। कतार बंदी, शिष्टाचार के कार्य, अवकाश, शारीरिक शिक्षा और हस्तकला के पाठ आदि अन्य विद्यालयी गतिविधियों का प्रेक्षण भी किया गया। आरंभिक, ध्यानकेंद्र रहित चरण को पूरा करने के बाद इस दल ने मिलकर क्षेत्रकार्य के ब्यौरों को पढ़ा, आपस में उनकी तुलना कीं, और यह जानने का प्रयास किया कि विद्यालय और कक्षा के जीवन में कौन-कौन सी घटनाएं विशेष महत्वपूर्ण लगती हैं। इस विश्लेषण से प्रवर्गों के पहले समूह का निरूपण संभव हुआ। लेकिन इस प्रक्रिया में शोधकर्ताओं ने जल्द ही महसूस किया कि वे अभी भी बहुत कुछ अपनी खुद की सैद्धांतिक पृष्ठभूमियों से प्रभावित थे और यह कि कुछ चुनिंदा प्रवर्गों पर आंकड़ों को खपाना मुश्किल था। अंततः उन्होंने पाया कि प्रवर्गों के एक पूरे समूह का त्याग करना और ब्यौरों पर किसी और दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। अब चारों विद्यालयों से प्राप्त सूचनाओं को एक साथ लाकर प्रेक्षित पाठों का सत्रवार सरल और दो टूक वर्णन किया गया। एक बार संपन्न होने के बाद यही वर्णन धनदाता संगठन में जमा की गई पहली प्रगति-रिपोर्ट के एक बड़े भाग का आधार बन गया।

शोध के दूसरे चरण में शोधकर्ता विद्यालयों में वापस गए और पिछले विश्लेषण से उजागर होनेवाली घटनाओं का प्रेक्षण किया। अब हर कक्षा में चार-पांच प्रेक्षण और किए गए। इस बार हर कक्षा में दो प्रेक्षक गए और पहले जैसा ही प्रत्यक्ष अनुभव पाने के लिए शोधकर्ताओं का पूरा दल अध्ययनाधीन सभी विद्यालयों में गया। इस गहन प्रेक्षणवाले चरण से प्राप्त ब्यौरों की छानबीन करने के बाद शोधकर्ता एक ऐसे संशोधित प्रवर्ग-समूह के निरूपण

तालिका 5 : देशवार परियोजनाओं की विशेषताएं, संक्षेप में

	बोलीविया	चिली	कोलंबिया	वेनेजुएला
दल में शोधकर्ताओं की संख्या	3	3	4	5
विद्यालय	4	2	5	5
कक्षाओं का स्तर	प्राथमिक	प्राथमिक	प्राथमिक	प्राथमिक
अध्ययनकाल	मार्च-दिसंबर 1981	मार्च-दिसंबर 1982	अक्टूबर-मार्च 1981-82	मार्च-दिसंबर 1982
दी गई रिपोर्ट	रिपोर्ट	पुस्तक	पुस्तक	रिपोर्ट
प्रायोजक संस्था*	सी ई बी आई-ए ई	पी आई-आई ई	सी आई-यू पी	एम आई एन ई डी, यू सी

* *सी.ई.बी.आई.ए.ई.* : सेंतरो बोलीवियानो दे इनवेस्तिगे शियों या एक्शियों एजुकेतिवा; *पी.आई.आई.ई,* प्रोग्रामा इंतरदिसिप्लिनारियो दे इनवेस्तिगेशियोनेस एन एजुकेशियों; *सी आई यू पी;* सेंतरो दे इनवस्तिगेशियोनेस, यूनिवर्सिदाद पेडागाजिया नेशनल; *एम.आई.एन.ई.डी., यू.सी,* योजना संभाग, शिक्षा मंत्रालय, वेनेजुएला.

में सफल हुए जो अंततः अंतिम रिपोर्ट की विषयवस्तु को एक ढांचा दे सके। इस विश्लेषण ने यह भी दिखाया कि सामने आनेवाली कुछ घटनाओं और मुद्दों के अर्थ की ओर भी गहन छानबीन जरूरी है। इसलिए हमने सोचा कि हमें अनेक साक्षात्कारों की आवश्यकता है। बाद में चलकर ये साक्षात्कार अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों, सचिवों, अभिभावकों, समुदाय के अगुओं, विद्यालय के बाहर बैठनेवाले खोंमचेवालों और छात्रों से लिए गए। विद्यालय की भूमिका और महत्ता के बारे में साक्षात्कार लिए गए व्यक्ति के विचारों तथा विद्यालय की सफलता और असफलता के बारे में उनकी समझ का पता लगाना इन साक्षात्कारों का उद्देश्य था। साक्षात्कार में मिले ब्यौरों के विश्लेषण के दौरान शोधकर्ताओं को लगा कि पिछले प्रेक्षणों से प्राप्त प्रवर्गों पर इनको खपाना मुश्किल है। इसलिए कोडिंग की एक विशिष्टतर योजना का विकास आवश्यक था। तब इन साक्षात्कारों से प्राप्त सूचनाओं को लेकर एक तीसरी प्रगति-रिपोर्ट लिखी गई। फिर दल द्वारा तीनों प्रगति-रिपोर्टों के विवेचन और विश्लेषण के

आधार पर अंतिम रिपोर्ट तैयार की गई (दे क्रेस्पो आदि 1982 देखें)।

बोलीविया वाली अंतिम रिपोर्ट के दो भाग हैं। पहले तो कक्षाओं की तथा विद्यालय-जीवन की जिन प्रमुख घटनाओं का पूरे साल प्रेक्षण किया गया उनका वर्णन किया गया था। इसी तरह वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त योजना से प्राप्त कुछ व्याख्यात्मक तत्वों का भी वर्णन किया गया था। साक्षात्कारों से आंकड़े लिए गए। यह रिपोर्ट आसपास के समुदाय के विद्यालयों से संबंधों को परखने का प्रयास करती है। इस खंड में विषयों की कक्षावार नहीं, विश्वदृष्टि से विवेचना की गई है। ये विषय इस प्रकार हैं :

- अध्यापन-कर्म से जुड़े मुद्दे : शैली, अंतर्वस्तु, मूल्यांकन की विधियां, तथा अधिगम संबंधी प्रेक्षित कठिनाइयां;
- संचार-प्रक्रिया से जुड़े मुद्दे : अध्यापक से छात्र की अंतःक्रिया, हमजोलियों के संबंध तथा छात्र से अध्यापक की अंतःक्रिया; और
- समुदाय की विशेषताओं के पक्ष : परिवार की संरचना, विद्यालय के बारे में सामुदाय के विचार तथा विद्यालय-समुदाय अंतःक्रिया।

दूसरे, विद्यालयों की असफलता की समस्या का गहन विश्लेषण किया गया। इस समस्या को समझने के लिए शोधकर्ताओं ने क्षेत्र कार्य से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग किया। इस तरह उन्होंने विद्यालय की असफलता के बारे में अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों, अभिभावकों, व्यापकतर समुदाय और स्वयं बच्चों के विचारों की रिपोर्ट दी। इसी तरह उन्होंने कक्षा से जुड़ी जीवन की उन स्थितियों की रिपोर्ट दी जो बच्चों की असफलता के निरूपण में योगदान देते नजर आते हैं। हमने विद्यालयों और समुदायों की उन स्थितियों और संरचनाओं पर भी विचार किया जो 'असफलता' के अनुभवों से जोड़े जा सकते हैं।

चिली

चिली वाला अध्ययन दूसरे देशों में हुए अध्ययनों से कार्यपद्धति और ध्यानकेंद्र में बिलकुल भिन्न था। प्रेक्षण के लिए सांतियागो शहर के दो विद्यालय चुने गए और हर विद्यालय में पहली और चौथी कक्षाओं का प्रेक्षण किया गया। इनमें पहला एक म्युनिसिपल विद्यालय था अर्थात उसे अभी हाल में केंद्र ने स्थानीय नियंत्रण में दिया था। इस विद्यालय से संपर्क करने के लिए शोधकर्ताओं को उसके प्रशासक नगर निगम से अनुमति लेनी पड़ी। दूसरा एक निजी मगर शुल्कमुक्त विद्यालय था। इसमें प्रवेश करने के लिए सीधे प्रधानाध्यापिका से संपर्क किया गया और उन्होंने अपने अध्यापकों से विचारविमर्श किया। 1100 बच्चों वाले म्युनिसिपल विद्यालय में समानांतर कक्षाओं की संख्या अधिक थी और इस कारण यहां पहली और चौथी कक्षा के तीन-तीन 'वर्गों' का प्रेक्षण संभव हुआ। 600 छात्रों वाले निजी विद्यालय में हर कक्षा के केवल एक 'वर्ग' का प्रेक्षण संभव था।

शोध के संयोजक ने दो अन्य शोधकर्ता भरती किए (तालिका 5 देखें)। उन्हें संरचनाबद्ध प्रेक्षण की तकनीकों का ज्ञान था मगर अन्यथा नृजातिशास्त्र में कोई प्रशिक्षण प्राप्त न था। प्रशिक्षण का ढर्रा टेक्सास और मेक्सिको सिटी जैसा ही था; केवल इसकी अवधि कम थी। तीन शोधकर्ताओं के इस दल ने एक पूरे सत्र में (मार्च-दिसंबर 1982 के दौरान) प्रत्येक विद्यालय का गहन अध्ययन किया। उन्होंने कक्षा के जीवन पर अपना ध्यान केंद्रित किया, तथा उत्सवों और अभिभावकों की बैठकों जैसी अन्य घटनाओं पर भी कुछ हद तक ध्यान दिया। इन लोगों ने अभिभावकों, अध्यापकों और छात्रों से साक्षात्कार भी लिए।

परियोजना के लिए नए दो शोधकर्ताओं को कुछ अनुभव कराने तथा उनके परिप्रेक्ष्य संबंधी मतभेदों के बारे में कुछ अंतर्दृष्टि पाने के लिए हमने तय किया कि आरंभ में दल के ये दो सदस्य मिलकर हर कक्षा का अध्ययन करें और प्रत्येक प्रेक्षित सत्र का एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करें। इस तरह कुछ समय बिताकर उनके 'रंग में आने' के बाद हरेक को एक कक्षा दी गई। फिर अकेला वही पूरे सत्र में उस विद्यालय का प्रेक्षण करता रहा। प्रत्येक प्रेक्षण के बाद और किसी भी हाल में 24 घंटों के अंदर क्षेत्रकार्य के ब्यौरों को नए सिरे से दर्ज किया गया और हर बात को यथासंभव विस्तार से दर्ज करने पर ध्यान दिया गया। ब्योरे लिखने में आसानी के लिए कुछेक चिह्न निश्चित किए गए।

अकसर बीच-बीच में यह दल मिलजुलकर ब्यौरों को पढ़ता, उनकी तुलना करता तथा घटनाओं के अर्थ निर्धारित करता रहा। प्रश्न उठाकर या दर्ज किए गए मगर अविचारित भावों को व्यक्त करके यह काम किया गया। जब प्रश्नों और घटनाओं के ब्योरों में वृद्धि हुई तो प्रेक्षित बातों को लेकर और अधिक बहसें हुईं। हाल के प्रेक्षणों को पिछले प्रेक्षणों से जोड़ने का प्रयास किया गया और इस क्रम में बार-बार सामने आनेवाले या एक-दूसरे की काट करनेवाली स्थितियों पर ध्यान केंद्रित किया गया। मसलन एक ही कक्षा के तीन समानांतर वर्गों में किसी पाठ से जुड़ी गतिविधियों के प्रेक्षण के बाद उन पर बहस हुई। ब्योरों की तुलना करने पर पता चला कि किसी विशेष कालखंड में पाठ से जुड़ी गतिविधियों को कैसे ढर्राबंद किया जाता है। एक संदर्भ और दूसरे संदर्भ के बीच सामने आनेवाले अंतर का भी इसी तरह पता चला। कुल मिलाकर इन आरंभिक विचारविमर्शों के बल पर दल ने अंततः तदर्थ परिकल्पनाओं का निरूपण किया।

दूसरा चरण वह था जब दल ने प्रत्येक कक्षा पर अलग-अलग विचार करते हुए सभी ब्योरों को नए सिरे से और कालक्रमानुसार पढ़ा। इसके बल पर दल ने प्रारंभिक परिकल्पनाओं का पुनर्निरूपण किया और नई परिकल्पनाएं सामने रखीं। साथ ही साथ दल कुछ सिद्धांतग्रंथों को पढ़कर व्याख्या की आगे आ रही प्रक्रिया के लिए खुद को तैयार किया। इस तमाम सामग्री को लेकर दल ने पहली विवरणमूलक रिपोर्ट लिखी जो हर कक्षा और हर विद्यालय के आधार पर ढांचाबंद था। इस रिपोर्ट ने अगले चरण के प्रेक्षणों और साक्षात्कारों के वास्ते ध्यानकेंद्र को स्पष्ट करने में सहायता दी।

चिलीवाले अध्ययन का तीसरा चरण अध्यापकों और कम उपलब्धिवाले छात्रों के संबंधों

पर केंद्रित था :

- अध्यापक-छात्र अंतःक्रिया के विशेष रूप कम उपलब्धिवाले छात्रों को किस प्रकार प्रभावित करते नजर आते हैं ?
- ये बच्चे अध्यापक से कैसा व्यवहार करते हैं ?
- दूसरे बच्चे उनके बारे में क्या सोचते हैं ?
- इन कक्षाओं में अध्यापन-अधिगम की सामान्य स्थिति कैसी थी ?

क्षेत्रकार्य के ब्योरों का विश्लेषण पहले चरण जैसा ही था। वैसे अब ऐसी अहम घटनाएं और स्थितियां नजर आने लगी थीं जो अंततः व्याख्या की प्रक्रिया पर और अधिक रोशनी डालतीं। एक बार असफलता की संभावनावाले छात्रों की पहचान के बाद प्रधानाध्यापकों, अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों से टेपबंद साक्षात्कार लिए गए। इन्होंने प्रत्येक बच्चे की स्थिति बेहतर समझ पाने में मदद पहुंचाई। ये साक्षात्कार असफलता के विशेष प्रश्नों पर केंद्रित थे। फिर भी ये इस अर्थ में मुक्त थे कि प्रत्येक साक्षात्कृत व्यक्ति को प्रश्नावली से बाहर के विषयों पर भी खुलकर बोलने का भरपूर अवसर हमने दिया। पूरे दल ने साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों को भी पढ़ा और विश्लेषित किया। उसने सफलता या असफलता की स्थितियों के विकास को समझने का सूत्र देनेवाली बातों पर ध्यान दिया।

तीसरे चरण के पूरा होने के बाद तमाम जमा सामग्री को यह परखने के एतबार से पढ़ा गया कि असफलता कैसे कक्षा के अंदर निर्धारित होती है और इस निर्धारण में लगे व्यक्ति अपनी भागीदारी को किस नजर से देखते हैं। इसके लिए हमने प्रश्नों और परिकल्पनाओं पर विचार-विमर्श किए और उनमें तब्दीलियां कीं, ग्रहण किए गए भावों को परखा तथा व्याख्या संबंधी सहमति विकसित की। इन तमाम कार्यपद्धतियों के बल पर हमने अंततः एक नृजातिशास्त्रीय रिपोर्ट (ला पेज आदि 1983) तैयार की। इसके दो भाग थे :

- निम्नलिखित के आधार पर प्रत्येक विद्यालय और कक्षा का वर्णनमूलक विवरण : प्रेक्षित कक्षा की सामन्य विशेषताएं; अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया; कक्षा का वातावरण; मूल्यांकन की पद्धतियां; समाजीकरण की पद्धतियां; अनुशासन; अध्यापक-छात्र संबंध; हमजोली से संबंध; अध्यापक-प्रेक्षक संबंध; अध्यापक-अभिभावक संबंध।
- विद्यालय की असफलता या लेखकगण के शब्दों में 'असफलता की विद्यालयी संस्कृति' के निर्धारण की प्रक्रिया का एक व्याख्यात्मक विवरण। इन व्याख्याओं के विवरण मुख्यतः अध्याय 8 के विषय हैं।

कोलंबिया

दूसरे देशों की तरह कोलंबिया में भी शोध के संयोजक ने एक दल भरती किया। इस दल में आरंभ में संयोजक और तीन अन्य शोधकर्ता शामिल थे, मगर यह अंततः कुल तीन का दल रह गया क्योंकि एक शोधकर्ता फेलोशिप (छात्रवृत्ति) पाकर फ्रांस चला गया (तालिका 5 देखें)। आरंभिक प्रशिक्षण का आयोजन संयोजक ने किया। इसमें नृजातिशास्त्र के सिद्धांत और व्यवहार का ज्ञान कराया गया। जो पांच विद्यालय अध्ययन के लिए चुने गए (यह अध्ययन 1981-82 के शैक्षिक सत्र में किया गया) वे बगोता के संघीय क्षेत्र तथा मध्य कोलंबिया में कुंदिनामार्का के पड़ोसी इलाके में स्थित थे। प्रत्येक विद्यालय में पहली, तीसरी और पांचवी कक्षा का प्रेक्षण किया गया। मगर दो विद्यालय एक या दो कमरों में चल रहे थे और सभी कक्षाओं को साथ-साथ बिठाया जाता था। प्रवेश के लिए शिक्षाधिकारियों की मार्फत संपर्क किया गया। एक बार संपर्क बन जाने पर शोधकर्ताओं ने अपने दौरों के उद्देश्यों और अपने काम को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक विद्यालय में अध्यापकों के साथ बैठकें कीं। कुछेक अध्यापक इन आगंतुकों को लेकर पूरी तरह खुश नहीं थे। फिर भी शोधकर्ताओं ने उनके भय को दूर करने का पूरा-पूरा प्रयास किया। इस वजह से अंततः संपर्क किए गए विद्यालयों में केवल एक ने अध्ययन में भाग न लेने का फैसला किया।

शोध की कार्यपद्धति दूसरे देशों जैसी ही थी : कक्षाओं और विद्यालयों के प्रेक्षण, अर्धसंरचनाबद्ध साक्षात्कार और साथ में दस्तावेजी विश्लेषण। प्रेक्षण कार्य हमेशा दो शोधकर्ताओं ने किया। इन शोधकर्ताओं का आगमन अघोषित होता था और जरूरी नहीं होता था कि वे किसी पाठ के आरंभ में पहुंचें। इसी तरह उनका प्रस्थान भी हमेशा पाठ के अंत में नहीं था। इसके कारण अध्यापकगण एक सीमा तक पहले से तैयारी करने से वंचित रहे जो एक छोटे से ग्रामीण विद्यालय में संभव भी थी।

दूसरे अध्ययनों की तरह कोलंबिया के शोधकर्ताओं ने भी अकेंद्रित प्रेक्षणों से कल शुरू किया और देखी गई बातों को यथा विस्तार दर्ज करने के प्रयास करते रहे। वह सूक्ति उनका मार्गदर्शन कर रही थी जिसे उन्होंने अपने कार्यालय में आसानी से नजर आनेवाले एक स्थान पर चिपका रखा था : 'जो कुछ अलिखित है वह अस्तित्वहीन है।'

हर प्रेक्षक ने कक्षा के अलग-अलग भागों का मुआयना किया और ध्यान रखा कि वहां चल रही गतिविधियों में खलल न पड़े। आरंभ में अपने ब्योरों की छानबीन करते समय उन्होंने पाया कि जो कुछ अध्यापक बोलता था उस पर वे कुछ ज्यादा ही ध्यान दे रहे थे। बाद में उन्होंने अपनी दृष्टिसीमा को विस्तार देकर उसमें बच्चों की कथनी या करनी को भी शामिल किया। 24 घंटे गुजरने से पहले ही प्रेक्षकों के हर जोड़े ने क्षेत्रकार्य के विस्तृत ब्योरे तैयार किए। फिर भी उनमें कुछ भी ऐसा न था जो पहले किसी न किसी रूप में उन्होंने दर्ज न किया हो। धीरे-धीरे इस दल ने महसूस किया कि कक्षाओं ही नहीं बल्कि विद्यालय की दूसरी गतिविधियों, जैसे बच्चों का प्रवेश, मध्यावकाश, अभिभावक-अध्यापक गोष्ठियों आदि का प्रेक्षण करके वे कक्षा में होने वाली घटनाओं की कहीं बेहतर समझ पा सकते हैं।

साक्षात्कार के सत्र शोध का एक खासा अहम अंग साबित हुए। इनमें अध्यापकों, अभिभावकों और बच्चों को प्रेरित करने पर ध्यान दिया गया जिससे वे अपने जीवन की

उन अहम घटनाओं पर बातचीत करें जिनको वे शैक्षिक महत्व से भरपूर मानते हैं। अध्यापकों से बातचीत करके शोधकर्ताओं ने शिक्षा तथा अपने विद्यालय और समुदाय के बारे में अध्यापकों के विचारों का अंतरंग ज्ञान प्राप्त किया। जिस चीज को अध्यापक का 'शिक्षाशास्त्रीय संवाद' कहा गया है उसके बारे में शोधकर्ताओं ने जानकारी पाई। उन्होंने अध्यापकों के परिवारों और सामाजिक संबंधों की बातें सुनीं और इस पर विचार किया कि वे सब बातें उनके अध्यापन-कर्म को कैसे प्रभावित करती हैं। ये साक्षात्कार कुल मिलाकर लगभग दो घंटों में पूरे हुए। अध्यापकगण साक्षात्कार देने की तत्परता के आधार पर चुने गए थे। दूसरी ओर बच्चों का चयन अध्यापकों द्वारा व्यक्त विचारों के आधार पर किया गया था। तत्पर अभिभावकों से साक्षात्कार समूहों में लिए गए। शोधकर्ताओं के पास मार्गदर्शन के लिए एक ढीली-ढाली प्रश्नावली मौजूद थी। मगर उन्होंने इसका इस्तेमाल केवल एक ध्यानकेंद्र बनाए रखने के लिए किया और अगर स्थिति इस प्रस्तावित संरचना के अनुकूल न हो तो वे उस पर अड़े नहीं रहे। अंतिम बात, अध्यापकों के साथ अनौपचारिक बैठकें करके शैक्षिक असफलता और मूल्यांकन की पद्धतियों जैसे मुद्दों पर उनके विचार जाने गए।

विश्लेषण और व्याख्या की प्रक्रिया काफी हद तक दूसरे अध्ययनों वाले ढर्रे पर ही चले। आरंभ में इसका ध्यानकेंद्र अधिक वर्णनमूलक और अंत में अधिक व्याख्यामूलक रहा। इस प्रक्रिया पर संयोजक के विचारों का विस्तृत वर्णन परिशिष्ट एक में किया गया है; इसलिए हम उन्हें यहां पेश नहीं कर रहे हैं। पूरी अनुसंधान-प्रक्रिया के दौरान कई तरह की रिपोर्टें लिखी गईं। ये रिपोर्टें अध्यापन शैलियों के वर्णनमूलक विवरण तथा शैक्षिक असफलता की व्याख्या पर केंद्रित थीं। इस बीच कोलंबिया में अंतिम रिपोर्ट (दे तेजानोस आदि 1983) छप चुकी है। यह प्रेक्षित बातों का एक सरल वर्णनमूलक और व्याख्यामूलक विवरण मात्र नहीं है। पाठक को शोध के चरणों की तथा व्याख्या-पुनर्व्याख्या की उस निरंतर जारी प्रक्रिया के यह दर्शन कराती है जिसमें हमारे शोधकर्ता संलग्न थे। इसका अंतिम अध्याय विद्यालय-शिक्षा को दिए गए अर्थ की अस्पष्टता की और इस कारण शिक्षा-प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न समूहों द्वारा सफलता और असफलता को दिए गए अर्थ की भी व्याख्या करता है।

वेनेजुएला

वेनेजुएला वाला अध्ययन फरवरी 1982 में शुरू हुआ। इसका पांच-सदस्यीय शोध दल (तालिका 5) शिक्षा मंत्रालय के योजना संभाग से जुड़ा हुआ था। उनमें से अधिकांश समाजशास्त्री थे मगर उनसे केवल एक ही मानवशास्त्रीय शोध-पद्धति में पारंगत था। इस कारण दूसरे दलों की तरह इसके लिए भी नृजातिशास्त्रीय प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। इस प्रशिक्षण सत्र ने टेक्सास और मेक्सिको की बैठकों की अंतर्वस्तु और शैली का बड़ी हद तक अनुकरण किया।

अध्ययन के लिए पांच विद्यालय चुने गए जिसका वर्णन अध्याय 5 में किया गया है। ये विद्यालय स्थिति (ग्रामीण और नगरीय) ही नहीं बल्कि पाठ्यचर्या और प्रशासनिक ढांचे के आधार पर भी भिन्न-भिन्न थे। सभी विद्यालयों की पहली और चौथी कक्षाओं के प्रत्येक वर्ग में दो शोधकर्ता पहुंचे। अध्ययन का आरंभिक चरण मार्च 1982 के आरंभ से लेकर अप्रैल 1982 के अंत तक चला। यह (45-45 मिनट के) 40 प्रेक्षणों पर आधारित था। दूसरे देशों की तरह इन अकेंद्रित प्रयासों का उद्देश्य भी हर कक्षा के जीवन की घटनाओं को यथाविस्तार दर्ज करना था। क्षेत्रकार्य के ब्योरों को निपटाने की प्रक्रिया भी दूसरे अध्ययनों में प्रयुक्त विधि जैसी ही रही। दल ने प्रेक्षण के 24 घंटों के अंदर विस्तृत ब्योरे तैयार किए तथा समय-समय पर उन ब्यौरों पर बहस करने, प्रश्न तैयार करने और व्याख्या करने के लिए बैठकें कीं। इन बैठकों से मुख्यतः एक वर्णनमूलक रिपोर्ट निकलकर आई जिसमें शास्त्रीय शिक्षाशास्त्रीय प्रवर्गों के अनुसार आंकड़ों को व्यवस्थित किया गया था। जैसे पहली बात, संचार की शैलियों में व्यक्त अंतःक्रिया की प्रक्रियाएं, अनुशासन लागू करने की विधियां, तथा स्नेह, सम्मान और सहयोग की अभिव्यक्तियां, और दूसरे, संचार में रुचि पैदा करने में और प्रतिज्ञान पाने के लिए प्रयुक्त अध्यापन की रणनीतियां, और मूल्यांकन में प्रयुक्त तकनीकें। रिपोर्ट में प्रेक्षण के ब्योरों से लिए गए उदाहरणों का विस्तृत उपयोग किया गया था। इसका मकसद प्रत्येक प्रवर्ग को दृष्टांतों से पुष्ट करना था। इसमें प्रेक्षण के ब्योरों पर आधारित एक भारी-भरकम परिशिष्ट भी शामिल था।

पहले चरण को पूरा करने और तब तक के कार्य का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के बाद शोधकर्ता अब दो माह के नए प्रेक्षण-कार्य में जुट गए (इन प्रेक्षणों की संख्या और अवधि पहले जैसी ही थी)। इसमें उन्होंने छात्रों की भागीदारी और अधिगम के व्यक्त संदेशों समेत अध्यापक-छात्र अंतःक्रिया पर ध्यान केंद्रित किया। प्रेक्षणकार्य को विस्तार देकर बाकी विद्यालय को तथा उसकी रोजमर्रा की और विशेष प्रकार की विभिन्न गतिविधियों को भी उन्होंने समेटा। साथ ही उन्होंने अध्यापकों, अभिभावकों, छात्रों और समुदाय के दूसरे प्रतिनिधियों से अनेक अर्धसंरचनाबद्ध साक्षात्कार भी लिए। इन साक्षात्कारों से प्राप्त सामग्री के आधार पर उन्होंने एक अधिक संरचनाबद्ध साक्षात्कार कार्यक्रम तैयार किया और इसे 141 व्यक्तियों के समूह पर लागू किया। इन साक्षात्कारों की विषयवस्तु विद्यालय की घटनाओं, सफलता और असफलता संबंधी दृष्टिकोणों तथा विद्यालय-समुदाय संबंधों पर केंद्रित थी। इसमें उन विभिन्न प्रायोगिक कार्यक्रमों से जुड़े सवाल भी शामिल थे जिनमें कुछ विद्यालय संलग्न थे। इनमें अध्यापकों द्वारा संपन्न कार्य तथा दायित्व और वृत्ति के रूप में अध्यापन संबंधी विचारों को लेकर भी प्रश्न पूछे गए। दल ने 'सामुदायिक विद्यालय' की विशेषता से युक्त एक विद्यालय में विशेष क्षेत्रकार्य भी किया। उसने इलाके की जनता से तथा विद्यालय के अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों से साक्षात्कार करके यह पता लगाया कि यह विद्यालय सामुदायिक विद्यालय कैसे बना तथा वहां की जनता पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।

ब्योरे जमा होने के बाद दल ने व्याख्यात्मक तत्वों की खोज के लिए उनकी छानबीन और उन पर बहस की। इस तरह उसने पहले की प्रवर्ग-योजना का पुनर्परीक्षण किया। इसके

आधार पर दल ने और दो सटीक रिपोर्टें लिखीं। पहली रिपोर्ट विद्यालयों के वर्णन, उनकी भौतिक विशेषताओं तथा कक्षेतर गतिविधियों पर और फिर अध्यापकों के बारे में उनके खुद के, छात्रों के, प्रेक्षक के तथा समुदाय के प्रतिनिधियों के विचारों पर केंद्रित थी। इसमें आम तौर पर सभी छात्रों पर विचार किया गया था, मगर साथ ही संभावित सफलता या असफलता की दृष्टि से उल्लेखनीय लगनेवाले दृष्टांतों पर भी विचार किया गया था। दूसरी रिपोर्ट वास्तव में उस 'सामुदायिक विद्यालय' का एक वर्णनमूलक केस अध्ययन थी। अंत में, इन तमाम आंशिक विश्लेषणों का प्रयोग करके और अपने आंकड़ों की निरंतर छानबीन के आधार पर दल ने एक अंतिम रिपोर्ट (हर्नादीज आदि 1983) प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट निम्नलिखित भागों में विभाजित थी :

- भौतिक सुविधाओं तथा विद्यालय की रोजमर्रा की गतिविधियों का वर्णन;
- विद्यालय और समुदाय के संबंधों की विशेषताएं;
- संचार और अध्यापन की रणनीतियों की दृष्टि से अध्यापक-छात्र संबंध;
- विद्यालय की सफलता और असफलता के बारे में शिक्षा-प्रक्रिया में संलग्न विभिन्न कार्यकर्ताओं के विचार।

वेनेजुएला वाले अध्ययन और दूसरे देशों में हुए अध्ययनों में प्रमुख अंतर यह था कि यहां विभिन्न रिपोर्टों ने शुरू से आखिर तक व्याख्या की जगह वर्णन पर जोर दिया था।

सारांश

चारों देशों में अनुसंधान के लिए प्रयुक्त कार्यपद्धतियों के सारसंक्षेप से चार प्रमुख तत्व सामने आते हैं :

- शोधकर्ताओं के दल का उपयोग। इनमें सभी ने प्रेक्षण कार्य किए, साक्षात्कार लिए, बहसों में तथा देखी और दर्ज की गई बातों की प्रक्रिया में भागीदारी की।
- प्रेक्षण काल को इन दलों ने कम से कम दो चरणों में बांटा। पहला चरण सामान्य, अकेंद्रित प्रेक्षण का था जिसमें उन्होंने परिवेश का परिचय प्राप्त किया और उन घटनाओं का पता लगाया जिनकी और अधिक छानबीन आवश्यक थी। दूसरा चरण विशिष्ट सुकेंद्रित अध्ययन का था जिसमें उन्होंने कर्ताओं, संबंधों तथा अध्ययन के लिए प्रासंगिक समझे गए मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया।
- ब्योरों के विश्लेषण और व्याख्या के लिए दलों ने निरंतर मिल बैठने की पद्धति अपनाई। इसके लिए उन्होंने क्षेत्रकार्य के ब्योरों को बार-बार पढ़ा।
- इन दलों ने उपरोक्त तीन तत्वों के आधार पर आम तौर पर अलग-अलग दृष्टियों से विभिन्न प्रकार की आंशिक रिपोर्टें तैयार कीं। आरंभ में ये रिपोर्टें व्याख्यात्मक से अधिक वर्णनात्मक थीं। लेकिन अंतिम रिपोर्ट बाकी का सारसंक्षेप न होकर जमा सामग्री की एक व्यापक पुनर्व्याख्या थी।

समन्वय की गतिविधियां

मई 1980 की बगोता गोष्ठी में जो बातें तय हुई थीं उनमें एक बात यह भी थी कि बीट्रीस एवॉलास समग्र रूप में परियोजना की संयोजक होंगी। वे शोधदलों से संपर्क रखेंगी, उनके कार्यस्थलों के दौरे करेंगी, समन्वयमूलक बैठकों में भाग लेंगी तथा प्रकाशन के लिए निष्कर्षों का समन्वय करेंगी। वैसे विशिष्ट रूप से संयोजकों की केवल एक बैठक के लिए धन प्राप्त हुआ था, मगर वास्तव में शोधकर्ताओं को मुलाकात के अनेक अवसर प्राप्त हुए। कारण यह था कि वे सभी अब लातीनी अमरीका में गुणात्मक पद्धतियों का व्यवहार कर रहे शैक्षिक शोधकर्ताओं के एक नवगठित संगठन तंत्र के सदस्य बन चुके थे। अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र इस तंत्र का भी प्रायोजक था।

चारों देशों के शोध दलों के लिए संपर्क का पहला अवसर आस्टिन (टेक्सास) और मेक्सिको सिटी में 6 सप्ताह के प्रशिक्षण कार्यक्रम के रूप में आया। मेक्सिको वाले प्रशिक्षण के अंतिम दिनों में इस समूह ने विभिन्न देशों में अध्ययन कार्य के ढंग की विवेचना की क्योंकि अब प्रयोग किए जानेवाले नृजातिशास्त्रीय दृष्टिकोण से हर व्यक्ति परिचित हो चुका था। दुर्भाग्य से सभी दल एक साथ काम शुरू नहीं कर पाए। मंत्रालय के स्तर पर पेचीदगियों के कारण वेनेजुएला का अध्ययन 1988 से पहले शुरू नहीं हो सका। समुचित धन के अभाव में चिली का अध्ययन भी 1982 तक लटका रहा।

समय के इस अंतर के कारण परियोजनाओं पर आरंभिक संयुक्त विचारविमर्श में थोड़ी कठिनाई आई। फिर से मिलने का पहला अवसर अब अक्टूबर 1981 में ब्यूनस आयर्स में गुणात्मक अनुसंधान तंत्र की बैठक में मिला। यहां दो देशों अर्थात कोलंबिया और बोलीविया की तब तक तैयार हो चुकी प्रगति-रिपोर्टों पर विचारविमर्श का मंच भी प्राप्त हुआ। दिसंबर 1981 में शोधदलों की एक भरपूर बैठक ला पाज (बोलीविया) में आयोजित हुई। इस बैठक के आयोजन तक यह स्पष्ट हो चुका था कि उत्साहवर्धक कार्य संपन्न होने लगा था। आस्टिन और मेक्सिको सिटी के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के बाद शोधकर्ताओं ने विद्यालयों के छोटे-छोटे प्रतिदर्श (नमूने) चुनने, अध्यापकों और प्रधानाध्यापकों का विश्वास जीतने तथा विद्यालयों, समुदायों, अध्यापकों और छात्रों की अंतःक्रिया की छानबीन करने में निरंतर प्रगति की थी। कुछ भागीदार देशों और संस्थाओं में उत्पन्न विभिन्न राजनीतिक और प्रशासनिक समस्याओं के बावजूद उन्होंने यह प्रगति की थी।

तब तक संपन्न कार्य के आधार पर हमने क्षेत्रकार्य के विश्लेषण के लिए एक साझा ढांचा तैयार करने की संभावनाओं पर विचारविमर्श किया और ऐसे व्यापक प्रवर्गों का निरूपण किया जिन्होंने कोलंबिया, बोलीविया और आगे चलकर वेनेजुएला की रिपोर्टों के लिए आधार का काम किया (परिशिष्ट दो देखें)। 1982 के अंत में ब्यूनस आयर्स और मई 1983 में बगोता में गुणात्मक शैक्षिक अनुसंधान तंत्र की दो बैठकों में देशवार संयोजकों की भागीदारी उनके बीच और अधिक संपर्क का कारण बनी। तब तक हम प्रकाशन के लिए एक ढांचे

पर सहमत हो चुके थे और प्रस्तुत पुस्तक में हर देश संबंधी अध्याय की विषय वस्तु संबंधी फैसले ले चुके थे।

यूं तो हर देश की नृजातिशास्त्रीय रिपोर्टों के सारसंक्षेप प्रकाशित करना उपयोगी हो सकता था; मगर हमने सोचा कि विषयवार अध्यायों की रोचकता अधिक होगी। इस तरह चारों देशवार अध्याय स्वयं अध्ययन के चुनिंदा पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। समाकलन वाला अध्याय (8, बी. एवॉलास द्वारा लिखित) चार देशवार अध्यायों का समन्वय मात्र नहीं है बल्कि प्रत्येक शोधदल द्वारा प्रस्तुत पूर्ण देशवार रिपोर्टों में मौजूद सामग्री पर यह आधारित है।

हमने देशवार अध्यायों के लिए विषय का चयन तीन मानदंडों के आधार पर किया। पहला, ये पाठक के सामने यह परिप्रेक्ष्य रखते हैं कि काफी-कुछ अध्यापन-कर्म कैसे संपन्न होता है। इसके लिए इसमें एक संदर्भगत स्थिति पर अर्थात कोलंबिया की स्थिति पर तथा उससे कुछ कम सीमा तक वेनेजुएला के ढांचागत आधार पर भिन्न प्रकार के विद्यालयों में प्राप्त स्थिति पर रोशनी डाली गई है। ये अध्याय अपने-आप में अध्यापन-कर्म का वर्णन करते हैं मगर असफलता की समस्या की विवेचना नहीं करते (वैसे ये अध्याय जिन रिपोर्टों पर आधारित हैं वे ऐसी विवेचना अवश्य करती हैं)। दूसरे, ये अध्याय पाठक के आगे (अध्यापन संबंधी दृष्टिकोण तथा अधिकांश दूसरे अध्यापकों की शिक्षा की दृष्टि से) एक 'भिन्न' प्रकार के अध्यापक की तस्वीर रखते हैं। हर देश में ऐसा एक 'भिन्न' अध्यापक था मगर सबसे उल्लेखनीय उदाहरण बोलिविया में मिला। यह अध्यापक वह था जिसने बिना किसी दिखावे के मित्रता और काम का माहौल बनाया और बहुत सारे छात्रों को सफलता पाने योग्य बनाया। तीसरे, ये अध्याय एक सत्र की घटनाओं के माध्यम से इस बात का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हैं कि कुछ बच्चे किस प्रकार अनुत्तीर्णता और शिक्षात्याग के दोषी बन जाते हैं। चिली की कक्षाओं से संबंधित अध्याय 7 का केंद्रीय विषय यही था। इस तरह केवल यह अध्याय और समाकलन वाला अध्याय ही विशिष्ट रूप से शैक्षिक असफलता की समस्या को उठाते हैं। मगर दूसरे सभी अध्याय प्रच्छन्न रूप से असफलता पैदा करनेवाली दशाओं की विवेचना करते हैं।

संपन्न कार्य और जमा सामग्री का समग्रता में विश्लेषण काफी कठिन कार्य था। यह सामग्री अब अध्याय 8 का अंग है। देशवार रिपोर्टों को बार-बार पढ़ने, क्षेत्रकार्य के ब्यौरों में कुछ के उल्लेखनीय अभिलेखों का उपयोग करने (देशवार रिपोर्टों में इनमें से सारे का उल्लेख नहीं किया गया है) तथा अंततः सामने आनेवाले व्याख्यात्मक प्रवर्गों पर खप सकनेवाले साझे तत्वों की खोज करने के कारण ही यह कार्य संभव हो सका। समय-समय पर तमाम देशवार संयोजकों ने प्रस्तुत रचना की पूरी विषय वस्तु पर विचारविमर्श किया है।

इस तरह प्रस्तुत अध्ययन बड़ी हद तक शोधकर्ताओं के एक दल के कार्यों का परिणाम है। इन शोधकर्ताओं ने एक दूसरे को अच्छी तरह से समझा और आपस में अध्ययन की विषय वस्तु और शोध के दृष्टिकोण के बारे में एक साझे दृष्टिकोण का विकास किया।

मगर व्याख्या के रूपों और कार्यपद्धति संबंधी दूसरी बातों को लेकर अकसर उनमें मतभेद भी उभरे। उन्होंने अलग-अलग ढंग से अध्ययन का आरंभ किया और एकत्र की गई तमाम सूचनाओं पर विचार करने के लिए अलग-अलग परिप्रेक्ष्य सामने रखे। लातीनी अमरीका में अध्यापन-अधिगम की समझ में सहायक होने के कारण ही नहीं बल्कि एक बहुत भिन्न प्रकार के अनुसंधान के विवरण रूप में भी यह ग्रंथ रोचक हो सकता है। यह वह अनुसंधान है जिसमें वैयक्तिक योगदान समूह की उपलब्धि से थोड़ा कम ही महत्व रखते हैं।

टिप्पणियां

1. मिसाल के लिए एडमंड हुसर्ल और अल्फ्रेड शुत्ज की कृतियां तथा बर्गर और लुकमान की परवर्ती संवृत्तिशास्त्रीय कृतियां देखें. हेबरमास (1971) और एदोर्नो (1975) के सिद्धांतों में मौजूद संवृत्तिशास्त्र के आलोचनात्मक मीमांसाविषयक रुझान भी देखें.
2. अनेको अध्ययन नृजातिशास्त्र के सिद्धांत और व्यवहार के हवाले देते हैं. दोनों पक्षों के वर्णन तथा एक अच्छी टीकायुक्त संदर्भ-सूची के लिए हैमर्सली और एट्किंसन (1983) और गोएत्ज और लेकोंत (1984) देखें.
3. पुनरुत्पादनवादी सिद्धांत की विवेचना के लिए गीरू (1983) देखें. पुनरुत्पादनवादी सिद्धांतकारों का जोर इस बात पर है कि विद्यालय समाज की उन प्रभुतासंपन्न शक्तियों के हितसाधक हैं जो पूंजीवादी आर्थिक ढांचे के अंग हैं. उनका मत है कि विद्यालय अपने संसाधनों का उपयोग करके समाज में विद्यमान वर्गभेदों और आर्थिक संगठन को पुष्ट बनानेवाले समाजिक संबंधों और सामाजिक दृष्टिकोणों का पुनरुत्पादन करते हैं. पूरी तरह या अंशतः पुनरुत्पादनवादी सिद्धांत का समर्थन करनेवालों में आल्थ्यूसर (1971), बाउल्ड और गिंटिस (1976), बोर्दियो और पसेरों (1977) तथा बर्नस्टाइन (1977) शामिल हैं.
4. जैसाकि मैलिनोव्स्की (1972 : 8-9) की सलाह थी : 'पूर्वग्रहित विचार किसी भी वैज्ञानिक कार्य के लिए घातक होते हैं लेकिन पूर्वानुमानित समस्याएं एक वैज्ञानिक चिंतक की मुख्य संपत्ति होती हैं, और ये समस्याएं प्रेक्षक के सामने पहले-पहल उसके सिद्धांत अध्ययन के कारण स्पष्ट होती हैं.'
5. एरिकसन (1977) के अनुसार यह प्रक्रिया 'क्षेत्रकार्य के ब्योरों से एक प्रमुख घटना को निकालने, उसे दूसरी घटनाओं, संवृत्तियों और सैद्धांतिक उपकरणों से जोड़ने, और उसे इस प्रकार लिखने पर आधारित है कि दूसरे लोग विशेष में सामान्य को, मूर्त में सार्वभौम को, अंश और समग्र के संबंध को देख सकें.'

संदर्भ

आल्थ्यूसर, एल (1971) : आइडियोलाजी एंड आइडियोलाजिकल स्टेट आपरेटसेज, *लेनिन : फिलासफी एंड अदर एस्सेज,* मंथली रिव्यू प्रेस, न्यूयार्क, अमरीका में संकलित.

ऐदोर्नो, टी (1975) : *दायलेक्तानिगेतिवा,* ताउरस एदिशियोनेस, एस ए, बार्सिलोना, स्पेन.

एरिकसन, एफ (1977) : सम एप्रोचेज टु इंक्वायरी इन स्कूल-कम्युनिटी एथनोग्राफी, एंथ्रोपोलाजी एंड एजुकेशन क्वार्टरली, 8 (21, 58-69).

ओग्बू, जे यू (1980) : स्कूल एंथनोग्रफी : ए मल्टीकल्चरल एप्रोच, मानवशास्त्र संभाग, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले, अमरीका.

गीरू, एच ए (1983) : *थ्योरी एंड रेसिस्टेंस इन एजुकेशन : ए पेडागाजी फार दि अपोजीशन,* विलीयम हाइनेमान लि. लंदन, ग्रेट ब्रिटेन.

गोएत्ज, जे पी और लेकोंत, एम डी (1984) : *एंथनोग्रफी एंड क्वालिटेटिव डिजाइन इन एजुकेशनल रिसर्च,* एकेडेमिक प्रेस ई, ओर्लांदो, अमरीका.

दे क्रेस्पो, एम बी; बाल्दिविएसी, एफ और दे उसांगास्ती, ई एस (1982) : *एस्क्यूला या कम्युनिदाद, उना पर्सपक्तीवा एथनोग्राफिका,* सेंतरो बोलीवियानो दे इनवेस्तिगेशियों या एक्शियों एजुकेतीवस, ला पाज, बोलीविया.

दे तेजानो, ए; मुनोज, जी और रोमेरो, ई (1983) : *एस्क्यूला या कम्युनिदाद : उना प्राब्लेमा दे सेंतिदो,* सेंतरो दे इनवेस्तिगेशियोनेस, यूनिवर्सिदाद पेदागाजिका नेशनल, बगोता, कोलंबिया.

बर्गर, पी एल और लुकमान, टी (1966) : *दि सोशल कंस्ट्रक्शन आफ रियलिटी,* पेंग्विन बुक्स, हेमंड्सवर्थ, न्यूयार्क, अमरीका.

बर्नस्टाइन, बी (1977) : कोड्स, मोडेलिटीज एंड दि प्रोसेस आफ कल्चरल रिप्रोडक्शन : ए माडल, एम एपिल द्वारा संपादित *कल्चरल एंड इकानमिक रिप्रोडक्शन,* रुटलेज एंड केगन पाल लि, बोस्टन, अमरीका में संकलित.

बाउल्ड, एस और गिंटिस, एच (1976) : *स्कूलिंग इन कैपिटलिस्ट अमेरिका,* बेसिक बुक्स ई, न्यूयार्क, अमरीका.

बोर्दियो, पी और पसेरों, जे सी (1977) : *रिप्रोडक्शन इन एजुकेशन एंड सोसायटी,* एंड कल्चर, सेज पब्लिकेशंस ई, बेवर्ली हिल्स, अमरीका.

मैलिनोव्स्की, एक्स (1972) : *अर्गोनात्स आफ दि वेस्टर्न पैसिफिक,* रुटलेज एंड केगन पाल लि, लंदन, इंग्लैंड.

ला पेज, जी; आसेल, जे और न्यूमान, ई (1983) : *ला कल्चरा एस्कोलर; रिस्पांसेबल देल फ्राकासो ?* प्रोग्रामा इंतरदिसिप्लिनारियो दे इन वेस्तिगेशियोनेस एन एजुकेशियों, सांतियागो, चिली.

स्टब्स, एम (1977) : कीपिंग इन टच : सम फंक्शंस आफ टीचर टाक, एम स्टब्स और एस डेलामोंट द्वारा संपादित *एक्सप्लोरेशन इन क्लासरूम आब्जर्वेशन,* जान वाइली एंड संस लि, चाइचेस्टर, ससेक्स, ग्रेट ब्रिटेन में संकलित.

हर्नादीज, आई; रोजस, एन; रोदरीग्वेज, आई आर; सारो, एल; अंजोला, एम; गोंजालेज, आर; रोदरीग्वेज, आर और सिल्वा, आई (1983) : *ला इंसिदेंशिया देल माएस्त्रो, एन एल रेंदिमिएंतो दे लोस एल्यूमनोस, त्रादुसिदो एन एक्सितो या फ्राकासो एस्कोलर;* आफिशिना सेक्तोरिएल दे प्लेनिफिकेशियों या प्रेसपुएस्तस, दिविजन दे इनवेस्तिगेशियोनेस, एजुकेतिवास, मिनिस्तेरियो दे एजुकेशियों, कराकास, वेनेजुएला.

हेबरमास, जे (1971) : आन सिस्टमेटिकली डिस्टार्टेड कम्युनिकेशन, *इंक्वायरी,* 13, 205-18 और 360-75.

हेरोट, आर ई और फायरस्टोन, डब्ल्यू, ए (1983) : मल्टीसाइट क्वालिटेटिव पालिसी रिसर्च : आप्टिमाइजिंग डिस्क्रिप्शन एंड जनरलाइजेबिलिटी, एजुकेशनल रिसर्चर, फरवरी 1983, 14-19.

हेमर्सली, एम और एटकिंसन, पी (1983) : *एथनोग्राफी : प्रिंसिपुल्स इनटू प्रैक्टिस,* टैविस्टाक पब्लिकेशंस लि, लंदन, ग्रेट ब्रिटेन.

3. विद्यालयों के परिवेश

पहले हम बता चुके हैं कि अध्ययन के लिए चुने गए विद्यालय नगरीय और ग्रामीण, दोनों क्षेत्रों के निचले सामाजिक-आर्थिक समुदायों वाले इलाकों में स्थित थे। केवल बोलीविया के विद्यालय पूरी तरह नगरीय थे लेकिन दूसरे संदर्भों में अगर ला पाज नगर के बाहरी क्षेत्रों की विशेषताओं को देखा जाए तो ये विद्यालय भी कुछ ग्रामीण विद्यालयों से मिलते-जुलते थे। इस अध्ययन में हमने उन समूहों और समुदायों को निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाला माना है जिनमें अभिभावक कम शिक्षित हों या अशिक्षित हों (आम तौर पर एक या दो साल से अधिक विद्यालय न गए हों), बेरोजगार हों या कुशल-अकुशल मजदूरों के रूप में काम कर रहे हों। अध्ययन में शामिल कुछ विद्यालयों में हमारी शब्दावली में निम्न मध्यवर्गीय छात्रों को नामांकित कर रखा था—अर्थात ऐसे छात्रों को जिनके माता-पिता छोटे दुकानदार हों या सरकारी दफ्तर में क्लर्की जैसे मामूली वेतनवाले सफेदपोश धंधों में नियमित रूप से काम कर रहे हों। इनमें वे लोग भी शामिल हैं जो संभव है कि अध्ययन के समय बेरोजगार रहे हों। रहा सवाल इन विद्यालयों के अध्यापकों का तो हम देख सकते हैं कि उनके सामाजिक मूल भी निम्न मध्यवर्गीय नहीं, मजूदरवर्गीय भी हैं; वैसे संभव है कि अध्यापक बनकर वे खुद को मध्यवर्ग के सदस्य मानते रहे हों। अधिकांश मामलों में ये अध्यापक नार्मल स्कूल में शिक्षित थे और यह शिक्षा मोटे तौर पर माध्यमिक स्तर के बाद की साल-दो साल की शिक्षा के समान थी। इसमें कोई शक नहीं कि स्थान और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की इन समानताओं के बावजूद इन विद्यालयों और उनकी जनसंख्या को हम इतना सुस्पष्ट रूप से भिन्न पाते हैं कि उनका देशवार वर्णन जरूरी लगता है। इसलिए हमने इस अध्याय में बोलीविया, चिली और कोलंबिया के विद्यालयों और अध्यापन की गतिविधियों की विशेषताओं की छानबीन की है। वेनेजुएला का अध्ययन इसका अपवाद है; उसका वर्णन अलग से अध्याय 5 में किया गया है।

बोलीविया

बोलीविया के अध्ययन में शामिल चारों विद्यालय (तालिका 6) ला पाज की पहाड़ी सरहदों पर स्थित थे। ये समुदाय स्पष्ट रूप से दूसरों से भिन्न हैं और उनका अपना एक जीवन है। सबसे अधिक, दो लाख आबादीवाला समुदाय ला पाज में वहां रहता है जिसे अल आल्तो

तालिका 6 : बोलीविया के विद्यालयों, अध्यापकों और छात्रों की विशेषताएं

	पंपाहसी	ला पोतोसा	विला नाएवोस हारिजातेस	ताहुआंतिसूयो
स्थान	नगरीय	नगरीय	नगरीय	नगरीय
इमारत की श्रेणी (स्थान, प्रकाश, सुविधाएं)	अपर्याप्त	औसत	अपर्याप्त	औसत
आकार (छात्रों की संख्या)	235	618	460	387
छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति	निम्न	निम्न	निम्न से निम्न-मध्य	निम्न
प्रत्येक कक्षा (1-4) के प्रेक्षित वर्गों की संख्या	1	1	1	1
अध्यापकों की योग्यताएं[1]	नार्मल स्कूल	नार्मल स्कूल	नार्मल स्कूल	नार्मल स्कूल
अध्यापक-छात्र अनुपात[2]				
कक्षा 1	84, 74	120, 41	113, 52	123, 41
कक्षा 2	6[illegible], 25	145, 41	108, 34	93, 45
कक्षा 3	44, 33	145, 34	88, 38	74, 35
कक्षा 4	30, 43[3]	102, 45	84, 38	52, 52

1. अध्यापक-प्रशिक्षण महाविद्यालय.
2. पहली संख्या नामांकित और दूसरी संख्या कक्षा में वास्तव में देखे गए छात्रों की संख्या है.
3. एक ही कमरे में चौथी और पांचवीं कक्षाएं बैठी हुई थीं.

कहते हैं, और विद्यालय इसके विला नाएवोस हारिजातेस नामक इलाके में स्थित हैं। यहां 2600 लोग मुद्रण और कारखाना श्रमिकों के संगठन (कंफेदेरेशन दे विनिंएदा फाब्रील या ग्राफिका) द्वारा बनवाए गए छोटे और एक जैसे घरों में रहते हैं। आम तौर पर आबादी में अपेक्षाकृत नौजवान ही थे हालांकि कुछ सेवानिवृत्त खदान मजदूर भी हैं। स्थानीय अधिकारियों की वादाफरामोशी के कारण अधिकांश घर मुख्य सेवाओं से वंचित थे। मसलन रोजाना एक पानी की गाड़ी से पानी लेना पड़ता था। इलाके में गंदगी का कोई निकास न था और रोशनी बहुत मामूली थी। जनता के लिए यहां एक गिरजाघर और एक स्वास्थ्य-केंद्र है। लेकिन स्थान या भवन का कोई प्रबंध न होने के कारण विद्यालय इलाके के छः खाली पड़े मकानों में चलाया जा रहा था। इस तरह आसपास की सड़कें खेल के मैदान बनी हुई थीं जहां स्थानीय स्त्रियां स्कूली बच्चों को मिठाइयां और फल बेचती थीं। विद्यालय के कामचलाऊ स्वरूप के कारण कमरे बहुत छोटे-छोटे थे और छात्रों को पाठ के दौरान बारी-बारी से सीटों पर बैठना पड़ता था।

नगर के पश्चिमी भाग की तरफ पाई देल आल्तो नाम का इलाका पड़ता है। यहां 9000 की बस्ती में कोई 3500 बच्चे विद्यालय जाने लायक उम्र के थे। पुरुष मजदूरों, दस्तकारों, कारखाना मजदूरों या नगरपालिका कर्मचारी के काम करते थे जबकि स्त्रियां खोमचे लगाती या सिलाई-बुनाई करती थीं। यहां बिजली, पानी और नालियों की व्यवस्था तो थी मगर ये सेवाएं पूरे समुदाय के लिए पर्याप्त न थीं। लोग खुलकर सुधारों की मांग करते थे और इसलिए विद्रोही कहे गए थे। लेकिन नगर के दूसरे इलाकों के मुकाबले पाई देल आल्तो के लोग थोड़ी बेहतर स्थिति में थे। उनके पास यातायात की अच्छी व्यवस्था थी और उनका विद्यालय बोलीविया के अध्ययनाधीन विद्यालयों में इमारत और साजसामान की दृष्टि से बेहतर था। इसकी दो मंजिला इमारत में तीन पारियां (प्रांतः, मध्याह्न और सांध्य कालीन) चलती थीं और इनमें अलग से एक किंडर गार्टेन भी शामिल था। कमरे बड़े और प्रकाशयुक्त थे। लेकिन विद्यालय के पास पर्याप्त डेस्कों, बैठने के पर्याप्त स्थान और टूटी खिड़कियों की मरम्मत के लिए धन का अभाव था हालांकि जाड़े की ठंडी हवा बेरहमी भी दिखा सकती है। प्रधानाध्यापक के कार्यालय में अनेक अच्छी पुस्तकें थीं मगर लगता था कि कभी-कभार ही उनका इस्तेमाल होता है। नगरपालिका पुस्तकालय का उपयोग भी कम ही हुआ था। खेल के मैदान लंबे-चौड़े थे मगर बदनसीबी से एक चोटी पर थे और यह चोटी एक गंदे नाले से लगी हुई खड़ी थी। मुर्गे, कुत्ते और भेड़ें इस नाले का पानी पीते थे और स्थानीय स्त्रियां यहां कपड़े धोती थीं।

ताहुआंतिसूयो उत्तरी ला पाज में स्थित है जो खुद एक पहाड़ी इलाका है। यह पूरी तरह ग्रामीण समुदाय है। इसके छोटे और बेरौनक मकानों की छतें भी ठीक नहीं थीं। पानी, बिजली और नालियों का अभाव था और केवल एक रूट की बसें लोगों को नगर ले जाती थीं। यहां कोई 2500 व्यक्ति (400 परिवार) रहते थे। जिनमें से अधिकांश आल्तिप्लेमो से आए आप्रवासी थे। वे सामान्यतः या कभी-कभार राज मजदूरों या नगरपालिका के मजदूरों

के काम करते थे। औरतें घर चलाने के अलावा बुनाई करती या खोंमचे लगाती थीं, खासकर इतवारी बाजार में। दूसरे समुदायों की तरह ताहुआंतिसूयो में भी एक स्थानीय समिति, एक अभिभावक-अध्यापक समिति और एक माताओं का क्लब था। ये संस्थाएं सक्रिय रूप से अपने स्थानीय विद्यालय की देखभाल करती थीं। अगर विद्यालय एक संरक्षित क्षेत्र नजर आता था तो इसलिए कि इन समितियों के लोगों ने संयुक्त प्रयास करके एक चहारदीवारी बनवा ली थी ताकि बच्चे जाड़े की ठंडी हवा से बचे रहें। विद्यालय के पुराने हिस्से में 9 छोटे कमरे थे जिनमें दूसरी से पांचवीं तक की कक्षाएं बैठती थीं और अभिभावकों के बनवाए हुए नए हिस्से में पहली की तीन कक्षाएं लगती थीं। यहां एक बहुत बड़ा खुला मैदान खेलकूद के काम आता था। इस असाधारण समुदाय ने प्रयास करके विद्यालय में सौरऊर्जा से गर्म फव्वारे भी लगवा रखे थे। फिर भी टूटी खिड़कियों की मरम्मत न होने से अनेक कमरे तब भी बहुत ठंडे थे।

विद्यालय और कक्षाओं की सामान्य गतिविधियां

जिन विद्यालयों का प्रेक्षण किया गया उनमें से प्रत्येक में 5 कक्षाएं थीं जो बोलीविया की प्राथमिक शिक्षा का बुनियादी चक्र हैं। इनमें से हर कक्षा के कम से कम दो वर्ग थे। वर्गों में छात्रों को बांटने का कोई स्पष्ट मानदंड नहीं था। कक्षाओं के आधार अलग-अलग थे—पहली कक्षा के एक वर्ग में 74 तो तीसरी कक्षा के एक वर्ग में 33 बच्चे थे। निचली कक्षाओं में बालकों और बालिकाओं की संख्याएं लगभग बराबर थीं। लेकिन ऊंची कक्षाओं में बालकों की संख्या बालिकाओं से अधिक थी।

विद्यालयों में पद्धति संबंधी थोड़े-बहुत अंतर के बावजूद अधिकांश बच्चों का दिन घंटी बजने पर शुरू होता था। तब वे दौड़ कर अपने-अपने कमरे के आगे या खेल के मैदान में कतार बांधते थे। ये कतारें लड़कों तथा लड़कियों के अनुसार लगती थीं। तब वे रुककर अध्यापिका के आने का इंतजार करते थे (जो कभी-कभी बहुत देर से आती थी) ताकि वह उन्हें कक्षा में प्रवेश की अनुमति दे। सप्ताह के आरंभ में या विशेष अवसरों पर कक्षा में प्रवेश से पहले विद्यालय की एक औपचारिक सभा भी हो जाती थी। कक्षा में बच्चों के प्रवेश के बाद पाठ का आरंभ कुछ-कुछ इस तरह होता था :

अध्यापिका (कक्षा से) : बैठ जाओ।
अध्यापिका : नमस्ते।
कक्षा : नमस्ते मादाम।
अध्यापिका : आज कौन सा दिन है ?
कक्षा : शुक्रवार, 8 मई 1981 मादाम।
अध्यापिका (क्रमांक के अनुसार बच्चों की हाजिरी लेते हुए) : एक, दो...
छात्र : उपस्थित, जी हां...

अध्यापिका (हाजिरी पूरी होने के बाद) : ठीक है, अब खिड़कियां खोल दो। मुझे पता है तुममें से बहुत से बच्चे अपनी कापियां नहीं ले आए हैं। तो रफ का इस्तेमाल करो और घर जाकर कापियों पर उतारो। अब हम विलोमार्थक शब्दों वाले पाठ 4 का आरंभ करेंगे।

सभी विद्यालयों में यह एक सामान्य दृश्य होता था कि पीठ पर बच्चे लादे हुए स्त्रियां आगे-पीछे होती रहती थीं और खिड़कियों से झांककर देखती थीं कि उनके बच्चे क्या कर रहे हैं। सभी विद्यालयों में मध्यावकाश के समय बच्चे अपने एप्रन या पूरा ड्रेस पहने हुए खेलते या खोमचेवालियों से कुछ खरीदने के लिए बाहर की ओर भागते थे। जैसा कि प्रेक्षक ने देखा, यह वह दुनिया थी जो बच्चों की अपनी दुनिया लगती थी। कक्षा के अंदर स्थिति भिन्न होती थी; यहां अध्यापिका का राज चलता था। अध्यापिका के लगभग पूर्ण नियंत्रण का पता तब चलता था जब उसे किसी न किसी कारण से बाहर बुला लिया जाता था। तब बच्चे खुलकर शोर मचाते, इधर-उधर आते-जाते या खेलते थे जब तक कि अध्यापिका आ नहीं जाती थी और उनको फिर से ढर्रे पर नहीं लाती थी। तब उसका परंपरागत संबोधन यूं होता था : 'चुप, चुप हो जाओ। तुम क्या सोचते हो, तुम कहां हो ?'

अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों की अनुशासन संबंधी साझी धारणा विद्यालय के अंदर व्यवस्था, कक्षा में खामोशी तथा ठीक-ठीक कहे अनुसार कार्य पूरा करने पर जोर देती थी। लेकिन विद्यालय के कुछ ही स्थापित नियम होते थे और इसलिए अनुशासन का व्यवहार काफी हद तक प्रशासकों, रीजेंट्स और अध्यापकों के निजी विवेक पर निर्भर होता था। इन रीजेंट्स को निरीक्षक और अनुशासनप्रेमी कहा जा सकता है। इनका मुख्य दायित्व यह था कि शोर-शराबा रोकें और यह सुनिश्चित करें कि कोई बच्चा विद्यालय से न भागे। कक्षा के अंदर और भी अधिक सख्तीपसंद अध्यापिकाएं कान खींचकर या मध्यावकाश में छात्र को कक्षा में ही रोककर अपनी कानूनव्यवस्था की धारणा को लागू करती थीं।

अध्यापिका : तुम्हारा गृहकार्य कहां है ?
छात्र : अगली बार करके लाऊंगा।
(अध्यापिका उसका कान खींचती है।)
छात्र (अध्यापिका कान खींचती है तो) : आयं यं यं।
अध्यापिका (उसका कान फिर खींचते हुए दूसरे छात्र से कहती है) : तुम अपना गृहकार्य कर रहे हो; क्यों ?
छात्र : मैं पहले नहीं...
(अध्यापिका उसके सर पर चपत मारती है और इसी तरह गृहकार्य देखती चलती है।)

सभी कक्षाओं में अध्यापन और अधिगम की गतिविधियां काफी मिलती-जुलती थीं और मुखोच्चार (प्रश्नोत्तर क्रम), इमला और श्यामपट से नकल पर आधारित थीं। छात्र गणित के सवाल एक-एक करके बोर्ड पर आकर या अपनी सीट पर करते थे और एक ही शब्द

को अनंत बार कापी में लिखकर भाषा सीखी जाती थी। अध्यापन की पुनरावृत्तिमूलक शैली पहली और चौथी कक्षा की एकसमान विशेषता थी। लेकिन पूछे जाने पर अध्यापिकाओं ने चौथी कक्षा में अपनी शैली को 'आगमनमूलक' या 'सामूहिक', 'वैश्लेषिक' या 'अन्वेषणमूलक' तथा पहली कक्षावाली शैली को 'मौखिक' कहा। मगर इनके शब्दों के अर्थ के बारे में उनकी समझ ज्यादातर गड्डमड्ड थी।

प्रश्नकर्ता : अध्यापन में आप किन पद्धतियों का प्रयोग करती हैं ?
अध्यापिका : वैश्लेषिक का।
प्रश्नकर्ता : इसे आप कैसे बयान करेंगी ?
अध्यापिका : यह वस्तुओं के विश्लेषण पर आधारित है।
प्रश्नकर्ता : आप पाठ का विकास किस प्रकार करती हैं ?
अध्यापिका : मैं, मैं फलां पद्धति...या यूं कहिए...इसका मतलब आसान से कठिन की ओर बढ़ना है...मैं...मैं तो इतना ही कह सकती हूं।
एक अन्य अध्यापिका : मैं यादृच्छ, वैश्लेषिक का प्रयोग करती हूं क्योंकि हमें पता है कि हम किस क्षेत्र में कार्यरत हैं। मैं दोनों पद्धतियों का प्रयोग करती हूं।

अधिकांश अध्यापक उस सरकारी पाठ्यविवरण से दुखी थे जिसका अनुसरण उन्हें करना पड़ता था। वे इसे 'हवाई', 'सड़ियल' और 'अप्रासंगिक' समझते थे। लेकिन वे उसके मार्गदर्शक सिद्धांतों पर दासों की तरह निर्भर थे, यहां तक कि उसकी गिनी-चुनी सुस्पष्ट गलतियों को भी देख नहीं पाते थे।

अध्यापिका : ये छोटे पशु और इमारती लकड़ीवाले वृक्ष जिनकी चर्चा हम कर रहे हैं, जो मानव के हाथों से अछूते रहकर बढ़ते हैं, इन्हीं का हम प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। इसलिए कि, जैसाकि तुम्हें पता है, हम इमारती लकड़ीवाले वृक्ष नहीं उगाते बल्कि आलू उगाते हैं।

जैसाकि हमने कहा है, अधिकांश कक्षा के कार्य पूरी तरह अध्यापिका चलाती थी और छात्रों के योगदान के प्रयास पर कम ही ध्यान दिया जाता था। फिर भी यह एक सामान्य दृश्य था कि छात्र जब अपने भरोसे छोड़ दिए जाते थे तो अपनी समस्याओं से जूझने के प्रयास करते थे या एक जिज्ञासुवृत्ति के संकेत देते थे।

छात्र : (अध्यापिका का दिया हुआ अखबार पढ़ते हुए दूसरे छात्र से) : 'हम अपनी मिट्टी से ही बोलीवियाई हैं;' इसका क्या मतलब हुआ ?

अध्यापिका शायद ही कभी ऐसे प्रश्नों पर ध्यान देती या अपने अध्यापनकर्म के लिए उनका प्रयोग करती थी।

गृहकार्य मूल्यांकन का सबसे अधिक प्रचलित ढंग था। अध्यापिकाएं इसे अधिगम का एक महत्वपूर्ण साधन मानती थीं और गृहकार्य जमा करवाने में रोजाना 20-30 मिनट लगाती

थीं। आशा की जाती थी कि बच्चों के माता-पिता गृहकार्य में उनकी सहायता करेंगे। माता-पिता यथासंभव इस तकाजे को पूरा करने की कोशिश करते, मगर अकसर कम शिक्षित या अशिक्षित माता-पिता के लिए यह काम बूते से बाहर होता था।

प्रश्नकर्ता (एक अभिभावक से) : गृहकार्य में क्या आप अपने बच्चों की सहायता करते हैं ?
अभिभावक : हां, अपनी पत्नी के साथ मिलकर मुझे जैसे भी संभव हो, उनकी थोड़ी-बहुत सहायता करनी पड़ती है; खास कर मेरी पत्नी बच्चों की बहुत मदद करती है। वह मुझसे ज्यादा शिक्षित है, सो सबसे ज्यादा मदद भी वही करती है।

माता-पिता के इस कदर दिलचस्पी लेने पर भी अध्यापिकाएं अकसर उनकी सीमा को समझ नहीं पाती थीं और उनके 'सहयोग' के अभाव की शिकाय करती थीं : 'अभिभावक शायद ही कभी मदद देते हों; वे तो अपने बच्चों पर गृहकार्य करने तक के लिए जोर नहीं देते। यह हमारे लिए एक समस्या है।'

विद्यालय में बच्चों की प्रगति लिबरेता दे कैलिकेशियोनेस कहलानेवाली एक पुस्तिका में दर्ज की जाती थी; इसमें अंक और उपस्थिति, दोनों दर्ज किए जाते थे। दूसरी से पांचवीं तक के जो बच्चे एक स्वीकार्य स्तर तक नहीं पहुंच पाते थे, वे फिर से उसी कक्षा में पढ़ते थे। कानून के अनुसार कक्षा 1 के बच्चों की प्रोन्नति स्वतः होती थी। लेकिन व्यवहार में अध्यापिकाएं जिन बच्चों को कमजोर समझती थीं उनके माता-पिता को समझाती थीं कि वे अपने बच्चों को पहली कक्षा में ही रहने दें। इन अनुत्तीर्ण बच्चों को बाकायदा शायद ही कभी इस रूप में (अनुत्तीर्ण के रूप में) दर्ज किया जाता हो।

अध्यापिकाओं का सरोकार अपनी अध्यापन-वृत्ति को 'बचाए रखने' की थी। इससे आगे, कुछेक अपवादों को छोड़ दें (अध्याय 7 देखें) तो ऐसा नहीं लगता कि वे अपने बच्चों की रोजमर्रा की जिंदगी को जानने या उन पर ध्यान देने या उनकी कठिनाइयों को समझने की कोशिश करती हों। जब उपस्थिति को समस्या आती तभी ये अध्यापिकाएं घर का हाल पूछती थीं। अपनी अधिगम संबंधी जरूरतों पर बच्चों की प्रतिक्रिया के अभाव के लिए अकसर अवमूल्यांकनात्मक ढंग से 'अंतर्मुखी स्वभाव' या 'द्विभाषिता' को जिम्मेदार ठहरा दिया जाता था।

प्रश्नकर्ता (अध्यापिका से) : क्या आपके सामने द्विभाषिता की समस्याएं हैं ?
अध्यापिका : हैं, बिलकुल हैं। यह तो एक बड़ी समस्या है क्योंकि मैं चाहे जितना समझाऊं, वे समझते ही नहीं। क्यों ? इसलिए कि वे ठीक से स्पेनी बोल नहीं सकते। वे यहां होते हैं तो जो थोड़ी-सी स्पेनी जानते हैं, बोलते हैं, लेकिन जब वे घर जाते हैं तो उनके माता-पिता सिर्फ एमारा बोलते हैं। तब वे भी वही बोलते हैं।

छात्र, अभिभावक और समुदाय

अध्यापिकाओं, अभिभावकों, छात्रों, खोमचेवालों तथा समुदाय के दूसरे सदस्यों से लिए गए अर्ध-संरचनाबद्ध साक्षात्कारों से हम उनके जीवन, विद्यालय के बारे में उनकी राय और समुदाय में उनकी भूमिका पर उनकी राय को जानने में सफल रहे।

इस अध्ययन में शामिल बोलीवियाई समुदायों का औसत, पांच सदस्योंवाला परिवार दो कमरों के मकान में रहता था; ऐसे अधिकांश मकानों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव था। परिवार की कम आय के कारण कम आयुवाले बच्चों तक को घर में और बाहर काम करना पड़ता था।

प्रश्नकर्ता (एक छात्र से) : शनिवार और इतवार को तुम क्या करते हो ?
लड़का : काम पर जाता हूं।
प्रश्नकर्ता : कहां ?
लड़का : (बसों की) 28वीं लाइन में।
प्रश्नकर्ता : तुम्हारे माता-पिता स्कूल के काम की चीजें खरीदते हैं ?
लड़का : मदद करते हैं, कभी-कभी कुछ मिला देते हैं...लेकिन मैं काम करता हूं तो कुछ पैसा भी पास होता है और खुद ये चीजें खरीद लेता हूं।

अपेक्षाकृत अधिक आयु के अधिकांश बच्चे शायद ही कभी सिनेमा देखने गए। कुछ के पास टेलीविजन था, सो मनोरंजन के लिए उसे ही देख लेते थे। छोटों के पास खुद के बनाए खेलों के अलावा शायद ही कोई खिलौना या मनबहलाव का साधन था। जीवन की बुरी स्थितियां उनकी सेहत को भी प्रभावित करती थीं। अधिकांश बच्चों में कुपोषण के चिह्न दिखाई देते थे हालांकि उनके माता-पिता दिन में कम से कम तीन बार भोजन उन्हें देने के लिए जो कुछ कर सकते थे, करते थे। आम तौर पर यह भोजन मांसरहित होता था और इसमें पनीर, अंडा या दूध कभी-कभार ही शामिल होता था।

इन समुदायों में मुहल्ला समितियों, माताओं के क्लब, युवा क्लब और अभिभावक-अध्यापक समिति जैसे जीवंत संगठन मौजूद थे। इनमें से एक या दूसरे संगठन में भाग लेने के कारण इन लोगों ने अपने विद्यालय के प्रति वास्तविक सरोकार का विकास किया था। ये लोग विद्यालय को अकसर 'शिक्षास्थली' और 'उपयोगी' समझते थे। लोग मानते थे कि अगर उनको विद्यालय जाने का मौका मिला होता तो वे जो कठोर जीवन बिता रहे हैं, उससे बच जाते। उन्हें आशा थी कि विद्यालय उनके बच्चों को 'कुछ...जैसे डाक्टर...बढ़ई...तालासाज' बनने का अवसर देगा। समुदाय के साक्षात्कृत अगुओं में सिर्फ एक व्यक्ति मानता था कि विद्यालय ऐसी जगह है जहां शिक्षा समाज-कल्याण में योगदान दे सकती है।

अगुआ : विद्यालय का मुख्य उद्देश्य सांस्कृतिक बातों की और फिर सामाजिक बातों की शिक्षा देना है। छात्रों को कुछ बनना सीखना चाहिए, यानी उन्हें वहां वह चीज मिलनी चाहिए जो आगे चलकर उन्हें नए किस्म की भूमिका निभाने में मदद दे, और इसमें अपने सामाजिक वर्ग की रक्षा हमेशा शामिल होनी चाहिए।
प्रश्नकर्ता : अपने सामाजिक वर्ग की रक्षा से आपकी मुराद क्या है ?
अगुआ : ओह...मुराद सर्वहारा से है। हम हमेशा यही बात करते हैं कि हमें सर्वहारा की रक्षा करनी चाहिए; पता है आपको, अपने देश में हमें हमेशा किनारे लगाया गया है और आज भी यही हालत जारी है।

ऐसे अधिकांश सामुदायिक समूह जानते थे कि शिक्षा में दक्षता के लिए समुचित भवन होना ही चाहिए। इसलिए वे अपने निजी अवकाशकाल का काफी भाग रखरखाव, सजावट तथा टूटी खिड़कियों को बदलने में लगाते थे।

ये विद्यालय समय-समय पर साक्षरता के पाठ्यक्रम चलाकर या विभिन्न सामुदायिक संगठनों से संवाद कायम करके समुदाय के जीवन और आवश्यकताओं पर भी ध्यान देते थे। मसलन दो प्रधानाध्यापक टोंटी के पानी और बिजली की आपूर्ति के लिए निजी तौर पर सक्रियता दिखाकर समुदाय की ओर से प्रार्थनापत्र आदि भेजते थे। अध्यापक के संपर्क आम तौर पर बच्चों की प्रगति संबंधी विचारविमर्श से जुड़े होते थे; इसके लिए वे उनके घर जाते या उनके माता-पिता को विद्यालय में आने के लिए कहलवाते थे। फिर भी वैसे तो दिन के वक्त अनेक माताएं विद्यालय के आसपास चक्कर काटती रहती थीं मगर अपनी उपस्थिति को उपयोगी बनाने की चिंता कम ही करती थीं।

विद्यालय में बच्चों के जीवन की सबसे बड़ी बाधा संभवतः भाषा की थी। अधिकांश घरों में एमारा बोली जाती थी; इसलिए विद्यालय में क्या-कुछ हो रहा है, इसके बारे में माता-पिता से सहायता या समझदारी की कम ही आशा रहती थी। थोड़ी-बहुत स्पेनी बोलनेवाले अभिभावक तो एमारा को जीवन की प्रगति में बाधा समझने लगते थे।

प्रश्नकर्ता : आप अपने बच्चों से कौन सी भाषा बोलते हैं ?
अभिभावक : सिर्फ स्पेनी।
प्रश्नकर्ता : और एमारा के बारे में क्या कहेंगे ?
अभिभावक : अगर मैं बोलूं तो वे समझते नहीं, बल्कि समझते हैं तो बोलते नहीं।
प्रश्नकर्ता : यानी वे बोल नहीं सकते ? क्या वे अपनी भाषा से हाथ धो रहे हैं ? आप इसके बारे में क्या सोचते हैं ?
अभिभावक : उनके लिए बेहतर यही है कि वे इसे न बोलें।

चिली

चिली वाले अध्ययन में शामिल दो विद्यालय (तालिका 7) सांतियागो के एक पुराने केंद्रीय मुहल्ले में स्थित थे और तीसरा सांतियागो के एक धनी आबादीवाले निचले स्तर वाले समुदाय

में था। इन इलाकों के लोग निम्न-मध्यवर्ग या मजदूर वर्ग के थे और देश की आर्थिक मंदी से बुरी तरह प्रभावित थे।

नगरपालिका के विद्यालय का आरंभ एक शुल्कमुक्त निजी विद्यालय के रूप में हुआ, मगर इसे बाद में राज्य को सौंप दिया गया और अध्ययन के कुछ ही समय पहले नगरपालिका के नियंत्रण में आया था। इसमें 1000 से अधिक छात्र थे जो दो पारियों में विद्यालय में आते थे। इसके पास जगह कम थी तथा किंडर गार्टेन तथा पहली कक्षा का एक वर्ग दो इमारतों में दूर एक अलग स्थान पर चल रहे थे। इसके 32 अध्यापकों में अधिकतर महिलाएं थीं। आठ के पास (विश्वविद्यालय शिक्षा पर आधारित) माध्यमिक अध्यापन का प्रमाणपत्र था।

विद्यालय का प्रशासन एक संचालन समिति चलाती थी। इसमें प्रधानाध्यापक, परामर्शदाता, तकनीकी विभाग का अध्यक्ष और विद्यालय निरीक्षक शामिल थे। एक कक्षा विशेष के सभी अध्यापक मिलकर अध्यापन संबंधी कार्यकलापों की योजना बनाते थे। इसे मुहल्ले के बेहतरीन विद्यालयों में गिना जाता था लेकिन उसे सरकार से अधिक सहायता पाने के लिए बच्चों की संख्या बढ़ाने के लिए मजबूर कर दिया गया था। प्रधानाध्यापक के शब्दों में इसके चलते (यानी छात्रों की संख्या बढ़ाने से) शिक्षा की गुणवत्ता को चोट पहुंची थी। पढ़ाई के समय अधिकांश कक्षाओं में 40 से अधिक छात्र होते थे।

कमरों में उपलब्ध स्थान और साजसामान की दृष्टि से अंतर थे। पहली कक्षा के दो प्रेक्षित वर्गों में बहुत भिन्नता थी। इनमें से एक में दो-दो सीटों वाली डेस्कों की कतारें परंपरागत ढंग से लगी थीं। इसमें प्रदर्शन के लिए भी एक स्थान था मगर साजसामान रखने की आलमारी नहीं थी। पहली कक्षा का दूसरा वर्ग साथ की इमारत में था जिसे सुबह के वक्त किंडर गार्टेन कक्षा के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। इस कारण कक्षाओं का विन्यास एक जैसा ही था और पहली कक्षा के बच्चे स्थिर डेस्कों की बजाए मेज-कुर्सी की आजादी का मजा लेते थे। पहली कक्षा का तीसरा कमरा ठंडा और अंधकारमय था तथा कुछेक अक्षरांकित पोस्टर इसकी एकमात्र सजावट थे। इस कक्षा के बच्चे परंपरागत ढंग से कतार में लगी डेस्कों पर बैठते थे। इस कक्षा के बारे में प्रेक्षक ने लिखा है कि 'ऐसा लगता है गोया यहां वास्तविकता का परिचय जो कुछ अध्यापक बताए उसी के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है; यह तो ऐसा ही है मानो इस कक्षा में दुनिया समेट दी गई हो।'

चिली वाले अध्ययन का निजी विद्यालय एक प्रतिष्ठान का था जो नौ अन्य प्राथमिक, माध्यमिक और व्यावसासिक विद्यालय चलाता था। इसमें 600 बच्चे थे जिनमें से अधिकांश मजदूर परिवारों के थे। सरकारी उद्देश्यों के अलावा विद्यालय के अपने भी कुछ उद्देश्य थे। इनमें वैयक्तिक भेदों और निजी विकास की जरूरतों पर तथा समुदाय के सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन संबंधी सरोकारों पर जोर दिया जाता था। विद्यालय में पर्याप्त भौतिक सुविधाएं थीं। दो प्रेक्षित (पहली और चौथी) कक्षाओं में क्रमशः 44 और 33 बच्चे थे।

विद्यालय की दिनचर्या और कक्षा की गतिविधियां

दोनों विद्यालय दोपहर की पारी में चलते थे। नगरपालिका के विद्यालय में यह पारी 4½ घंटे की तथा निजी विद्यालय में 4¾ घंटे की होती थी। दोनों विद्यालयों के रोजमर्रा की गतिविधियों में (तालिका 8) मामूली सा ही फर्क था। इसमें पढ़ाई के तीन कालखंड थे जिनमें से प्रत्येक कालखंड 1¼ घंटे का था और इनके बीच में 10 से 15 मिनट तक का अवकाश होता था।

तालिका 7 : चिली के विद्यालयों, अध्यापकों और छात्रों की विशेषताएं

	नगरपालिका	निजी
स्थान	महानगर	महानगर
इमारत की श्रेणी (स्थान, प्रकाश, सुविधाएं)	अपर्याप्त	औसत
आकार (छात्रों की संख्या)	1100	600
छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति	निम्न व निम्न-मध्य	निम्न व निम्न-मध्य
प्रेक्षित वर्गों की संख्या		
पहली कक्षा	3	1
चौथी कक्षा	3	1
अध्यापक-छात्र अनुपात[1]		
कक्षा 1 (अ)	41, 41	44, 44
कक्षा 1 (ब)	46, 32	
कक्षा 1 (स)	45, 39	
कक्षा 4 (अ)	42, 42	40, 33
कक्षा 4 (ब)	44, 43	
कक्षा 4 (स)	42, 42	
अध्यापकों की योग्यताएं	नार्मल स्कूल[2]	नार्मल स्कूल[2]
अध्यापकों के अनुभव, वर्षों में		
कक्षा 1 (अ)	8	8
कक्षा 1 (ब)	17	
कक्षा 1 (स)	27	
कक्षा 4 (अ)	9	4
कक्षा 4 (ब)	7	
कक्षा 4 (स)	16	

1. पहली संख्या वर्ष के आरंभ और दूसरी संख्या वर्ष के अंत के लिए है.
2. विश्वविद्यालय स्तर.

सोमवार को पहली गतिविधि का प्रारंभ एक देशभक्तिपूर्ण सभा से होता था जिसमें चिली का झंडा फहराते समय प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रगान गाता था। विद्यालय के अधिकारी इस अवसर पर देशभक्तिपूर्ण, नैतिक और सामाजिक मूल्यों का महत्व बच्चो के मन में बिठाते थे।

> *परामर्शदाता* (विद्यालय की सभा से) : जब हम राष्ट्रगान गाते हैं तो हम चिलीयाई चरित्र और अपने आदरभाव का परिचय देते हैं...इस हफ्ते हमारा सरोकार एकता से होगा। मुझे यह देखकर खुशी हो रही है कि सारे बच्चे मिलकर खेलते-कूदते हैं।
> (एक और अवसर पर)
> जैसाकि सप्ताह के आरंभ का कायदा है, हम एक विशेष विषय चुनते हैं। इस सप्ताह का विषय है, एकजुटता या मित्रता या सहयोगभाव का सप्ताह। तुम लोग अपने तीन साथियों की बात सुनोगे। ध्यान से सुनो।
> (तीन बच्चे एकजुटता और मित्रता के बारे में अपना खुद का लिखा हुआ कुछ पढ़ते हैं। जब वे पढ़ना समाप्त करते हैं तो ताली बजती है।)

दोनों विद्यालयों में पाठ्येतर गतिविधियां चलती थीं, खासकर राष्ट्रीय उत्सवों पर, जब काफी

तालिका 8 : सभी कक्षाओं की सामान्य समयसारणी

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार
		कक्षा 1		
गृहकार्य संबंधी	गणित	स्पेनी	गणित	स्पेनी
स्पेनी	स्पेनी	गणित	स्पेनी	गणित
स्पेनी	विज्ञान	गणित	इतिहास	कला
इतिहास	विज्ञान	गणित	इतिहास	व्यायाम
इतिहास	संगीत	कला	हस्तकला	व्यायाम
		कक्षा 4		
गृह कार्य संबंधी गतिविधियां	व्यायाम	अंग्रेजी	स्पेनी	सुलेख
स्पेनी	गणित	स्पेनी	गणित	समाज विज्ञान
समाज विज्ञान	गणित	प्रकृति विज्ञान	तकनीकी शिक्षा	समाज विज्ञान
समाज विज्ञान	गणित	समाज विज्ञान	प्रकृति विज्ञान	संगीत
प्रकृति विज्ञान	तकनीकी शिक्षा	स्पेनी	स्पेनी	स्पेनी

तैयारी करनी पड़ती थी। कभी-कभी अध्यापकों को लगता था कि इस बारे में ज्यादा ही दबाव पड़ रहा है। एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने शिकायत की :

> इस विद्यालय में हम सब इतनी ज्यादा पाठ्येतर गतिविधियों से कुछ परेशान हैं। हमारे पास जगह भी नहीं है। हमें एक ही साथ अनेक विभिन्न समूहों से मिलकर काम करना पड़ता है। जैसे एक पुलिसवाले द्वारा प्रशिक्षित परिवहन ब्रिगेड, एक फौजी प्रशिक्षक द्वारा 21 मई की परेड (एक राष्ट्रीय नौसैनिक उत्सव) के लिए तैयार कराया गया बैंड, एक गानसमूह जो रेड क्रास के गीत का अभ्यास करता है, और एक बागवानी दल जो अपने निर्देशक के तहत काम करता है। पर्यावरण का महीना चल रहा है और मैं चाहता हूं कि विद्यालय पौधों से भर जाए। हमारे पास एक दल खेलकूद और लोककला का भी है।

यहां भी खेल-जीवन दूसरे विद्यालयों जैसा ही था। बच्चे उछल-कूद करते, खेलते, गपशप करते या घर से लाया हुआ यां गुमटी से खरीदा हुआ भोजन करते थे। लगता था कि खेलने के समय लड़के लड़कों को और लड़कियां लड़कियों को वरीयता देती थीं। मध्यावकाश के बाद कक्षा में प्रवेश के समय कतारें बनाने का तकाजा शायद इस स्थिति को पुख्ता बनाता था। दोनों विद्यालय बाहरी व्यवस्था और अनुशासन पर जोर देते थे। नगरपालिका के विद्यालय ने बच्चों के सुरक्षा ब्रिगेड बना रखे थे जिन पर खेल के मैदान में अनुशासन लागू करने की जिम्मेदारी थी।

कक्षा के अंदर बच्चे महसूस करते थे कि उनकी गतिविधियों का केंद्र बिंदु अध्यापक है। यह अध्यापक कभी दयालु और कभी स्नेही होता था और कभी कठोर और कभी निरंकुश भी बन जाता था जैसा कि नीचे के उदाहरण से स्पष्ट है :

> (पहली कक्षा के बच्चों से कमरा गर्म रखने की पैराफिन खरीदने के लिए पैसा लाने को कहा जाता है। जो नहीं लाए उन्हें अध्यापक डांटता है।)
> *अध्यापक* : सुनो बच्चो, मैं चाहता हूं कि माशैलो बारा पैराफिन का पैसा जमा करे। मगर मैं देख रहा हूं कि तुम लोग पैसे लाए ही नहीं।
> *छात्र* (अपनी डेस्क से चिल्लाकर) : नैंसी लाई है मगर देती नहीं है।
> *अध्यापक* : तुम लोगों की माताएं महीने के शुरू में ही पैसे दे देती हैं और फिर भी तुम लोग नहीं लाते।
> *अध्यापक* (धमकी भरे लहजे में) : मुझे उठकर अपनी जेबें तलाशने के लिए मजबूर मत करो।
> *अध्यापक* (मार्शेलो से) : दर्जे में फिर एक चक्कर लगाओ।
> *अध्यापक* (एक छात्र पैसे निकालता है तो) : देखो तो, पैसा कैसे निकल रहा है।

नगरपालिका वाले विद्यालय में बच्चे साथ की इमारत में ही कक्षा में घूमने की आजादी पाते थे। कारण यह था कि यहां किंडर गार्टेन वाले भी उसी फर्नीचर का उपयोग करते थे। बच्चे आजादी से आगे-पीछे आते-जाते थे हालांकि अध्यापक कभी-कभी उन्हें बिना हिले-डुले खामोश रहने को भी कहता था। बाकी विद्यालय की तरह यहां समय सारणी का सख्ती से पालन

नहीं किया जाता था; संभवतः इसलिए कि बगलवाली इमारत में बच्चों को समय का ध्यान दिलाने के लिए घंटी नहीं बजती थी। इसके कारण अध्यापक स्थिति के अनुसार पाठ के अंतःतत्व और समय में परिवर्तन भी कर लेता था।

विभिन्न कक्षाओं में अनुशासन लागू करने की विधि अलग-अलग थी। जैसे ध्यान देना, खामोशी, काम कराना। व्यवहार का कोई सुस्थापित नियम नहीं था। इसलिए हर अध्यापक का अपना मानदंड होता था जिसे बच्चों पर जाहिर किया या नहीं किया जाता था। मनमानेपन के ऐसे अतिवादी उदाहरण भी देखने को मिले जिनमें मानदंड और सुधार, दोनों ही किसी वस्तुनिष्ठ नियम की जगह अध्यापक की मर्जी पर अधिक निर्भर थे। मसलन कक्षा के खामोश होने पर भी चुप्पी रखने की बार-बार प्रार्थना करना या बच्चों को अकारण डांटना।

चिली की शिक्षा व्यवस्था में शारीरिक दंड देने की इजाजत नहीं है। मगर कुछ उदाहरणों में अध्यापक हलके किस्म के शारीरिक दंड देते थे। जैसे सर पर चपत मारना या बाल और कान खींचना। कोलंबिया के विद्यालयों में दुर्व्यवहार पर नियंत्रण के लिए एक उपाय का इस्तेमाल आम था (अध्याय 4 देखें) जिसमें बच्चों से आसन बदलवाया जाता या कुछ उठक-बैठक कराया जाता था।

अध्यापक : अब तुम सब अपनी-अपनी बांहें बांध लो। पिछले हफ्ते हम यही शब्द सीख रहे थे...गुरुवार या शुक्रवार की बात है।
अध्यापक (एक छात्र से) : इधर-उधर अपने को मत झुकाओ। सीधे बैठो। लेटो मत।

सभी कक्षाओं में अध्यापन का ढर्रा मिलता जुलता था। इसमें मुखोच्चार, शब्दांश पढ़ने, इमला तथा श्यामपट से अभ्यासों की नकल पर जोर दिया जाता था। अधिगम और मूल्यांकन का एक सामान्य उपाय 'क्वेश्तिनारियो' था जिसमें अध्यापक श्यामपट पर कुछ प्रश्न और उत्तर लिख देता था ताकि बच्चे उसे नकल कर लें और याद करें। बाद में इस 'क्वेश्तिनारियो' का प्रयोग करके यह परखा जाता था कि बच्चों ने उस चीज को रटा है या नही।

1. *जलवायु क्या है* ? यह मौसम की सामन्य स्थिति का नाम है।
2. *मौसम क्या है* ? यह हवा की दो-एक दिन की स्थिति का नाम है।

सिर्फ एक कक्षा ऐसी थी जिसमें अध्यापन की खराब पद्धतियों से दुर्व्यवहार का स्पष्ट संबंध था। अजीब बात यह थी कि यह अध्यापक सच्चे दिल से बच्चों की चिंता और देखभाल करने के लिए मशहूर था।

अध्यापक : आओ बच्चो, हम देखें कि आज हम क्या करते हैं। (अध्यापक एक लड़की की ओर घूमकर कुछ पूछता है लेकिन उसकी अभी-अभी कही बातों से जिसका कोई संबंध नहीं था।)
अनेक बच्चे : लोरेतो।
अध्यापक : हां, चित्रकला के नंबर! मैं हरेक की रचना पर नंबर दूंगा। तुम्हारा कोई

गणित का टेस्ट नहीं होगा। देखों, मुझे स्पेनी की एक किताब तो दो। इस पाठ में (अध्यापक कुछ बच्चों की बातचीत बंद कराने के लिए अपनी बात रोक लेता है।)
अध्यापक : ठीक है, चित्रकला के कागज बाहर निकालो। गर्म रंग कौन-कौन से होते हैं ?
(कई बच्चे हाथ उठा देते हैं।)
अध्यापक : जैक्वेलिन ?
(लड़की कोई जवाब नहीं देती। कुछ बच्चे बातचीत करते हैं।)
अध्यापक : चुप रहो गोंजलेज।
लड़की : पीला, लाल, नारंगी।

गड्डमड्ड सवालों, विज्ञान पढ़ने के निर्देशों और कुछ ऐसी गतिविधियों के बीच यह पाठ जारी रहा जिसे या तो पूरा नहीं किया गया या शुरू ही नहीं किया गया। उधर अध्यापक अव्यवस्था पर काबू पाने की नाकाम कोशिश करता रहा।

अधिकांश कक्षाओं में अध्यापन का एक ही ढांचा अपनाया जाता था और निर्देश पाठ के आरंभ में दिए जाते थे। इन निर्देशों के बाद गृहकार्य जांचा जाता था, छात्रों से पाठ पढ़वाने जैसे कुछ कार्य कराए जाते थे या सवाल पूछे जाते थे। इसके बाद व्याख्याएं की जाती थीं, छात्रों के नकल करने के लिए श्यामपट पर 'क्वेश्तिनारियो' लिखा जाता था या बच्चों से कहा जाता था कि वे अपने किताबों से कुछ नकल करें। 'बच्चों को सोचना सिखाने' के बारे में अध्यापकों की समझ कुल मिलाकर बहुत ही गड्डमड्ड नजर आई। अधिकतर इस शब्द की व्याख्या छात्रों को 'विश्लेषण करना' सिखाने के रूप में की जाती थी। यह एक ऐसी चीज थी जो अध्यापक की अपने सोच के दायरे में आती थी। इसका मतलब यह था कि बच्चों को प्रश्नोत्तर के क्रम से गुजारा जाता था जिसके अंत में आम तौर पर अध्यापक अपने शब्दों या पाठ्यपुस्तक के शब्दों में सारसंक्षेप प्रस्तुत करता था।

अध्यापक (पुस्तक में दिए गए प्रश्न पूछते हुए) : आओ देखें, हरकत करना जानवरों के लिए कैसे उपयोगी होता है। कौन इस सवाल का जवाब देगा ? यूं मत चिल्लाओ जैसे तुम सब मछली बाजार में हो।
छात्र (चिल्लाकर) : मैं, मैं, मैं।
(अध्यापक अलग-अलग छात्रों के नाम लेता है तो वे जवाब देते हैं।)
छात्र : जीवनरक्षा के लिए। शिकार पकड़ने के लिए। खाने के लिए। घर जाने के लिए। अपनी रक्षा करने के लिए।
अध्यापक : हां, जानवरों के लिए शिकार करना, जीना आदि अनेक काम करने में समर्थ होना आवश्यक है... अब हम श्यामपट पर इस सवाल का जवाब लिखें ?
अध्यापक (लिखता है) :
प्रश्न : हरकत जानवरों के लिए क्यों उपयोगी है ?

उत्तर : जानवरों की हरकत उन्हें भोजन की सक्रिय खोज में समर्थ बनाती है।

प्रायः ऐसा होता था कि पढ़े हुए को समझने का महत्व गौण होता था तथा उच्चारण और विराम चिह्नों के प्रयोग का ही ध्यान रखा जाता था। उसी तरह किसी कार्य की विषयवस्तु की अपेक्षा उसकी प्रस्तुति और सफाई के साथ प्रस्तुति का अधिक महत्व होता था।

केवल (पहली कक्षा के) एक वर्ग में मूल्यांकन अध्यापन-अधिगम की स्थिति का स्वाभाविक अंग था और अंक देने का शुद्ध धमकी भरा खेल नहीं था। अध्यापिका ने बच्चों को धीरे-धीरे इस बात का एहसास कराया कि परीक्षा की स्थिति में खामोशी से अपना काम करना जैसी कुछ बातें आवश्यक हैं। लेकिन उसने प्रतियोगी वृत्ति से मूल्यांकन को न जोड़ने का ध्यान रखा।

अध्यापिका : बच्चों, अब हम कुछ काम करेंगे। हम अब ऐसा कुछ करेंगे जिसमें तुम न हिलोगे-डुलोगे और न बातें करोगे। अपनी पेंसिल-रबर निकालो और जो रंगीन पेंसिलें तुम्हारे पास हों वह भी...मैं तुम्हें एक पन्ना दूंगी। लेकिन जब तक मैं कहूं न, इसे पलटना मत।

अध्यापिका : मैं हरेक से कहती हूं कि इसे ध्यान से पढ़ो और जो कुछ कहा गया है उसे अपने-आप करो। इससे अध्यापिका को भी पता चलेगा कि पाठ सीखने के सिलसिले में किसे अधिक मदद की जरूरत है।

अलफांसो : हां, इसलिए कि हमें थोड़ा-थोड़ा करके ही सीखना है। है कि नहीं मिस ?

चिली के इन विद्यालयों में कक्षा के जीवन की दूसरी विशेषताओं को देखें तो यह बात दिलचस्प लगती है कि बच्चों में सहयोग के स्वतःस्फूर्त रूपों का अर्थात अध्यापिका से सहायता लेने से पहले सूचनाओं के स्रोतों के रूप में एक-दूसरे का इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति का विकास कैसे हुआ।

छात्र (दूसरे छात्र से) : इसके बाद पूर्ण विराम आता है क्या ?
छात्र : हां।
(एक अन्य अवसर पर छात्र शब्दकोश में शब्द ढूंढ रहे हैं)
छात्र (दूसरे से) : 'खटमल' क्या है ?
छात्र : एक कीड़ा है। (अपने नोट्स देखकर) हां, एक कीड़ा है।
छात्र (हंसकर) : कीड़ा ?
एक अन्य छात्र (अनमना होकर) : वह क्या होता है ?

कुछ कक्षाओं में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों से अलग किस्म का व्यवहार होता था। मसलन एक उदाहरण में लड़कियों की बजाए लड़कों से लगातार सवाल पूछते रहने के कारण अध्यापिका यह विश्वास कर बैठी थी कि 'उसकी कक्षा में प्रतिभाशाली लड़कियां जरूर हैं' मगर 'लड़कों से कम प्रतिभाशाली हैं।' फिर भी इसी कक्षा में लड़कों ने एक मध्यस्थ की

भूमिका अपना रखी थी और लड़कियां जो सवाल पूछना चाहती थीं उसे अध्यापिका तक पहुंचाते थे। एक अन्य कक्षा में बच्चों को 'लड़कों' और 'लड़कियों' की अलग-अलग श्रेणियों में स्पष्ट रूप से बांटा गया था।

लड़का : मादाम, आपने कहा कि आज आप लड़कियों से सवाल पूछेंगी।
अध्यापिका : क्या सवाल पूछेंगी ?
लड़कियां (लगभग सभी) : नहीं, वह तो विज्ञान के बारे में था।
(अध्यापिका हाजिरी लेती है : लड़के पहले, फिर लड़कियां।)

इस तरह का वर्गीकरण एक और कक्षा में इस रूप में व्यक्त होता था कि लड़कियों को प्रथम नाम से और लड़कों को उनका उपमान लेकर पुकारा जाता था।

अध्यापकों और उनकी आत्मछवि की ओर पलटें तो कुछ तो अपने काम को लेकर खुश थे और उन्हें संतोष था कि साल के अंत तक उनके बच्चे पुस्तक पढ़ना सीख चुके होंगे। लेकिन दूसरे काफी निढाल लगते थे :

'कितना मुश्किल है उन्हें संभालना। मैं तो थक गया। कुछ भी करने को जी नहीं चाहता।' अनेक अध्यापकों की एक स्पष्ट दीखनेवाली विशेषता वह चीज थी जिसे हम पेशागत तनहाई कह सकते हैं। अपनी कक्षा में आनेवाले प्रेक्षकों से वे जिस तरह से व्यवहार करते थे, उससे यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती थी। लगभग हर मामले में वे प्रेक्षकों का मित्रवत स्वागत करते थे तथा कुछ समय बाद उनसे खुद के, अपनी कठिनाइयों और अनुरक्षा के बारे में बातें करने तथा उनसे सलाह मांगने को उत्सुक दिखाई देते थे।

अध्यापक (प्रेक्षक से) : जो कुछ मैं बोलता हूं, वह सब आप लिखते हैं ? यह भी कि मैं रह-रहकर चिल्लाता हूं ? मुझे यह चिल्लाना बुरा लगता है...वे (छात्र) मुझे चिल्लाने पर मजबूर कर देते हैं, मुझे उनसे लगातार कहना पड़ता है कि मैं उन्हें सजा दूंगा अगर...।

कोलंबिया

कोलंबिया के पांच विद्यालयों (तालिका 9) का अध्ययन किया गया। बगोता के सबसे पुराने मुहल्लों में से एक मुहल्ले में इस अध्ययन में शामिल एकमात्र महानगरीय विद्यालय स्थित था। यह इलाका 19वीं सदी में अमीरों का इलाका था मगर अब शहर के सबसे कम वेतन पानेवालों के टूटे-फूटे मकानों वाला इलाका रह गया था। अधिकांश मकान टिन के फेंके हुए कनस्तरों और जस्ते की जंग लगी चादरों के बने हुए थे और खस्ता हालत में थे। लेकिन विद्यालय नया था और ठीक से काम कर रहा था। उसके पास 490 छात्रों के लिए पर्याप्त स्थान और साजसामान थे। धूप इमारत की ऊपरी मंजिल पर पड़ती थी जिसके कारण पहली मंजिल के कमरे गर्म और रौशन थे। मगर उसकी तुलना में निचली मंजिल ठंडी और अंधेरी

तालिका 9 : कोलंबिया के विद्यालयों, अध्यापकों और छात्रों की विशेषताएं

	पोलिकापों साल्वातिएरा	शलीशी	अल सेद्रो	अल सेरो	ला कंकार्दिया
स्थान	नगरीय	ग्रामीण	उपनगरीय	ग्रामीण	महानगरीय
इमारत की श्रेणी (स्थान, प्रकाश, सुविधाएं)	औसत	उत्तम	अपर्याप्त	औसत	उत्तम
विद्यालय का प्रकार (प्रति कक्षा कमरों की संख्या)[1]	अनेक कमरे (1 से 5)	एक कमरा (1 से 5)	अनेक कमरे	दो कमरे (1, 5 और 2,3,4)	अनेक कमरे
विद्यालय का आकार (छात्रों की संख्या)	300	52	115	65	490
छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति	निम्न और निम्न-मध्य	निम्न	निम्न	निम्न	निम्न
प्रति कक्षा प्रेक्षित वर्गों की संख्या (कक्षा 1, 3 और 5)	1	1	1	1	1
अध्यापकों की योग्यताएं	नार्मल स्कूल	नार्मल स्कूल	नार्मल स्कूल	नार्मल स्कूल	नार्मल स्कूल

1. ग्रामीण क्षेत्रों में लागू प्रायोगिक एस्क्यूला नोएवा (नव विद्यालय) कार्यक्रम एक और दो कमरों वाले विद्यालयों में चल रहा है.

2. अध्यापक-प्रशिक्षण महाविद्यालय.

थी। खेल का मैदान लंबा-चौड़ा था, मगर जाड़ों में यहां पानी भर जाता था। प्राथमिक स्तर की 5 कक्षाओं में से प्रत्येक के कम से कम तीन वर्ग थे और हर वर्ग में बच्चों की औसत संख्या 30 थी। सभी अध्यापकों के पास नार्मल स्कूल का अध्यापन-प्रमाणपत्र और कोई 13 वर्षों का अनुभव था, हालांकि कम से कम दो अध्यापक सेवानिवृत्ति की आयु को पहुंच चुके थे। दस अध्यापक अपनी स्थिति और वेतन में सुधार के लिए विश्वविद्यालय के अंशकालीन पाठ्यक्रमों में भी दाखिला लिए हुए थे।

बगोता से पूर्वोत्तर दिशा में दो घंटे की दूरी पर कोई 2600 मीटर की ऊंचाई पर उबाते नगरपालिका स्थित है। इसका नाम शिबशा भाषा के एक शब्द से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'खूनखराबा' है। यह देसी लोगों को स्पेनी विजय के समय इंडियनों और स्पेनियों के बीच हिंसक संघर्षों की याद दिलाता है। न्यूइस्का इंडियनों के शासनकाल में उबाते एक फलती-फूलती बस्ती थी लेकिन स्पेनी 'एनकमेंदेरोस' (सामंती भूस्वामियों) के लोभ ने उसे पतन के रास्ते पर डाल दिया था। नगर का मौजूदा सरकारी अस्तित्व मात्र 1952 से है। यहां किसानों की आबादी है जो आलू, गेहूं, जौ और मक्का पैदा करते हैं और मवेशी पालते हैं। यहां कुछ कोयला मजदूर भी हैं। अधिकांश फार्म छोटे हैं हालांकि कुछ तो समृद्ध और लंबे-चौड़े भूखंडों पर बने हुए हैं।

उबाते नगर का विद्यालय पूरे पांच कक्षाओं वाला प्राथमिक विद्यालय था और हर कक्षा के दो वर्ग थे। औसतन हर अध्यापक के वर्ग में 30 बच्चे थे और इनमें दो-तिहाई लड़कियां थीं। ये बच्चे 7 से 16 वर्ष तक की आयु वर्ग के थे। विद्यालय की इमारत मरम्मत की गई एक औपनिवेशिक इमारत थी। पुरानी बाल्कनी और खिड़कियां अभी भी मौजूद थीं लेकिन विद्यालय की गतिविधियों को संभव बनाने के लिए बाकी इमारत में फेरबदल किए गए थे। हर कमरे में दो-तीन खिड़कियां, दोहरी डेस्कें, आल्मारियां तथा सैक्रेड हर्ट और सीमों बोलिवार और फेदेरिको सांतांदेर जैसे राष्ट्रनायकों की तस्वीरें मौजूद थीं। यहां एक रसोई घर भी था मगर प्रधानाध्यापक के लिए कोई कार्यालय, कोई पुस्तकालय या चिकित्सा-सेवा के लिए कोई कमरा नहीं था। इस विद्यालय में आनेवाले अधिकांश बच्चे इसी इलाके में पैदा हुए थे और उनके अभिभावक खेत मजदूर, घरेलू नौकर या मोटर मेकैनिक थे। आधे बच्चे उबाते में ही रहते थे और उससे दूर रहनेवाले बच्चे रोज कोई एक घंटा पैदल चलकर आते थे। आधे से ज्यादा अध्यापक 40 साल से ऊपर के थे और उनके पास 20 साल से अधिक के अनुभव थे। सभी अध्यापकों के पास नार्मल स्कूल के प्रमाणपत्र (उच्च या ग्रामीण प्रमाण-पत्र) थे और इनमें से दो ने स्नातक शिक्षा भी पूरी की थी।

उबाते जनपद में ही सेहिक्वले और ग्वाताविता नगरों को जोड़नेवाली सड़क पर अध्ययन में शामिल एक और विद्यालय था। स्पेनियों के आने से पहले देश के इस भाग में सोने का काम करनेवाले इंडियन रहते थे। इसी इलाके में वह मशहूर झील भी है जहां विश्वास है कि अभी भी बेपनाह सोना छिपा हुआ है; अल दोरेदो की दंतकथा में इस सोने का जिक्र मिलता है। यह इलाका 1967 में भारी उथलपुथल का शिकार हुआ जब ग्वातेविता का जलाशय

बनाया गया और जैसा कि लोग कहते हैं कि आसपास की 'बेहतरीन जमीनें' इसमें चली गईं। इस स्थिति के फलस्वरूप जनता ने पास के इलाकों या बगोता की ओर काफी बड़ी संख्या में पलायन किया। अध्ययन के समय में भी खराब फसल और भयानक सूखे के कारण जनता का पलायन जारी था। विद्यालय में आनेवाले बच्चों के माता-पिता बेहद गरीब थे और कई तो काफी हद तक कुपोषण के शिकार थे। एस्क्यूला नोएवा कार्यक्रम के तहत चलनेवाले इस विद्यालय में मात्र एक अध्यापिका थी। यह कार्यक्रम 1976 में शुरू हुआ। पहले के एक कक्षा वाले विद्यालय-कार्यक्रम का यह विकास था जो 1961 में प्रायोगिक आधार पर सांतांदेर प्रांत में शुरू किया गया था। आज एस्क्यूला नोएवा कार्यक्रम इस तरह चलता है कि यह ग्रामीण समुदायों की जरूरतों से जुड़ी लोचदार प्रशासनिक और शैक्षिक गतिविधियों की एक व्यवस्था के अंदर ग्रामीण बच्चों को (6 वर्ष की) संपूर्ण प्राथमिक शिक्षा प्रदान करता है। ग्रामीण कोलंबिया के एक या दो अध्यापकों वाले विद्यालयों की परंपरा का विकास करते हुए, एस्क्यूला नोएवा कार्यक्रम अध्यापकों को कार्यकलाप केंद्रित शिक्षा के सिद्धांतों का प्रशिक्षण दे रहा है। इसके लिए उनको शिक्षा मंत्रालय अध्यापक-मार्गदर्शिकाएं और कापियां या छात्रों के काम की पाठ्यपुस्तकें प्रदान करता है। इनमें उद्देश्यों के रूप में पाठ्यचर्या की विषयवस्तु तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अधिगम के विशिष्ट कार्यकलाप दिए हुए रहते हैं। जैसा कि कार्यक्रम का निर्देश है, अध्यापक की भूमिका यह है कि वह इन सामग्रियों के उपयोग तथा अधिगम के कार्यकलापों के चयन के सिलसिले में बच्चों को प्रेरणा और मार्गदर्शन दे। अध्यापक को निरंतर निदान-मूल्यांकन भी करना पड़ता है। तीन-चार के दलों में संगठित छात्र ये कार्यकलाप संपन्न करते हैं। इन परियोजनाओं की सफल पूर्ति पर ही उनकी उच्चतर स्तर की ओर प्रगति निर्भर होती है। ठीक-ठीक कहें तो इन विद्यालयों में कोई छात्र अनुत्तीर्ण नहीं होना चाहिए, सिर्फ पाठ्य-विवरण और उससे जुड़े कार्यकलापों के माध्यम से प्रगति की रफ्तार अधिक या कम होनी चाहिए। इनमें कोई कठोर समयसारणी भी नहीं होनी चाहिए ताकि विभिन्न समूहों के छात्र एक ही साथ विभिन्न गतिविधियों में भाग ले सकें।

एस्क्यूला नोएवा कार्यक्रम की परिकल्पना इस प्रकार है : विद्यालय के लिए अभिभावकों की सहायता लेकर, छात्रों से समुदाय में विभिन्न प्रकार के सुधार करके तथा विद्यालय में समुदाय संबंधी सूचनाओं का संग्रह और भंडारण करके स्थानीय समुदाय से निकटता विकसित की जाए। इसकी यह परिकल्पना भी थी कि विद्यालय समुदाय के लिए लाभकारी परियोजनाएं लागू करे। जैसे पूरे क्षेत्र के लिए अपने पुस्तकालय के द्वार खोलना या कृषि-कार्यों का पंचांग तैयार करना।

एस्क्यूला नोएवा प्रणाली के छात्र अनुशासन, सफाई, सजावट, बागवानी और सांस्कृतिक कार्यों के आयोजन से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों में भी शामिल होने चाहिए। छात्रों और अध्यापकों को चाहिए कि 'रिंकोनेस दे त्रबजो' अर्थात कक्षा में विभिन्न विषयों से संबंधित कोने भी बनाएं। इनमें जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों के नमूने या छात्रों के अन्वेषण-कार्यों के परिणाम दर्शानेवाले पोस्टर भी रखे जाते हैं।

इस कार्यक्रम के तहत अध्यापन से पहले अध्यापकगण एक-एक सप्ताह की चार प्रशिक्षण कार्यशालाओं में शामिल होते हैं। इनमें कार्यक्रम के सिद्धांतों, सामग्रियों के उपयोग तथा संचार की रणनीति संबंधी सूचनाएं दी जाती हैं। प्रणाली की गतिविधियों को सुचारु बनाने के लिए एक क्षेत्रीय संयोजक और उसके सहयोगियों का एक दल जो सुपरवाइजरों के काम करते हैं, विद्यालयों का दौरा करते हैं, अध्यापकों से संपर्क बनाते हैं, विभिन्न विषयों पर व्याख्यान देते हैं और कार्यकलापों को अंजाम देने में अध्यापकों की सहायता करते हैं। आज इस कार्यक्रम के तहत 1600 से ज्यादा ग्रामीण विद्यालय चल रहे हैं (एस्क्यूला नोएवा कार्यक्रम के ब्योरों के बारे में मोरा 1981 देखें)।

इस कार्यक्रम के तहत पाठों का विकास सामान्यतः सभी कक्षाओं के लिए एक साथ एक बड़ी, प्रकाशयुक्त कक्षा में किया जाता था हालांकि जरूरत पड़ने पर एक और कमरे का प्रयोग भी किया जाता था। अध्यापिका के पास नार्मल स्कूल का प्रमाण-पत्र होता था और वह बगोता विश्वविद्यालय की रात्रिकालीन कक्षाओं में भी जाती थी। इस कारण वह शहर में ही रहती थी और रोज बस से विद्यालय जाती थी। उसे परंपरागत विद्यालय में पढ़ाने का भी अनुभव था मगर वह एस्क्यूला नोएवा प्रणाली को वरीयता देती थी।

बगोता से कोई 20 किमी. उत्तर चीया नगरपालिका 3100 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। यहां चौथा विद्यालय स्थित था जिसे हमने अपने अध्ययन के लिए चुना था। जाड़े में यहां पहुंचने के लिए घंटे भर पैदल चलना पड़ता था; मोटर-गाड़ी का प्रयोग केवल गर्मियों में संभव था। इस इलाके के लोग म्यूइस्का इंडियन मूल के हैं। ये लोग छोटे किसान या मजदूर हैं। आलू उनकी मुख्य फसल है क्योंकि फल, सब्जियां और अनाज जैसी दूसरी फसलें समुचित प्रौद्योगिकी के अभाव में बाजार में नहीं लाई जा सकतीं। पशुपालन और दूध का उत्पादन भी अहम गतिविधियां हैं। पर फूलों की बागबानी के भी कुछ संकेत मिले। गर्मियों में पानी दुर्लभ होता है, इससे कृषि और पेयजल की आपूर्ति प्रभावित होती है। यहां नालियों की कोई सुविधा नहीं थी। विद्यालय-भवन की छत अच्छी थी मगर उसका पलस्तर अच्छा नहीं था। इसमें दो खूब प्रकाशदार कमरे थे। यह भी एस्क्यूला नोएवा कार्यक्रम के तहत चलता था और इसमें 65 छात्र थे। कक्षा में हर छात्र की एक डेस्क थी और हर कमरे में छात्र शेल्फ पर रखी किताबों का इस्तेमाल करते थे। बड़े से सभागार का उपयोग विद्यालय ही नहीं, स्थानीय सामुदायिक संघ भी करता था। एक अन्य छोटे कमरे का उपयोग अध्यापकगण स्टाफ रूम के तौर पर करते थे और यहां अध्यापन सामग्री भी रखते थे। शौचालय आदि की सुविधाएं अपर्याप्त थीं, खासकर गर्मियों में तो पानी भी नहीं होता था। विद्यालय-भवन के इर्दगिर्द के मैदान बागों का और फुटबाल के कामचलाऊ मैदान का काम करते थे। सभी छात्र इस इलाके में ही रहते थे और इसलिए किसी को ज्यादा से ज्यादा तीस मिनट पैदल चलना पड़ता था। दोनों अध्यापकों के पास नार्मल स्कूल के प्रमाणपत्र थे और ग्रामीण विद्यालयों का कुछ अनुभव भी था। अध्ययन के समय दोनों अध्यापक पिछले कोई चार बरस से इसी विद्यालय में थे।

कोलंबिया का अंतिम अध्ययनाधीन विद्यालय जिपाक्विरा में स्थित एक अर्धग्रामीण विद्यालय था। अतीत में यह इलाका नमक-उत्पादन के लिए मशहूर था। इसके म्यूइस्का इंडियन मूलवाले लोग नमक के लिए प्रयुक्त बड़ी-बड़ी भट्ठियों को याद करते थे। नमक की बाजारकारी के कारण अतीत में प्राप्त सांस्कृतिक-राजनीतिक स्वायत्तता तब जाकर काफी-कुछ खत्म हो गई जब सरकार ने इस उद्योग का राष्ट्रीकरण कर लिया और इलाके को संघीय राजधानी के नियंत्रण में ले लिया। यह कभी का खूबसूरत इलाका अब औद्योगिक प्रदूषण से ग्रस्त हो चुका था। जिपाक्विरा नगर की रूपरेखा खास स्पेनी शैली की है। जिसमें एक केंद्रीय चौक होता है और इसके इर्दगिर्द स्थानीय सत्ता के वास्तुकलात्मक प्रतीक जैसे चर्च और टाउनहाल भवन होते हैं। जनता छोटे उद्यमियों के पास या यातायात सेवाओं में काम करती थी। विद्यालय एक ऐसी इमारत में स्थित थे जो पहले कैथलिक सेमिनरी (धार्मिक पाठशाला) थी। छोटे आकार और अंधेरे कमरों के कारण यह इमारत अपर्याप्त थी और इसमें साजसामान भी पर्याप्त न थे; खासकर डेस्कों की कमी थी। प्राथमिक स्तर की पांचों कक्षाओं के कुल कोई 120 बच्चे पंद्रह कमरों में बंटे थे। 14 अध्यापकों में अधिकांश के पास नार्मल स्कूल के प्रमाणपत्र थे तथा उन्हें संगीत और तकनीकी प्रशिक्षण में विशेष योग्यता हासिल थी।

विद्यालय की दिनचर्या और कक्षाओं की गतिविधियां

जिन विद्यालयों का प्रेक्षण किया गया उन सभी विद्यालयों में बच्चों का दिन सामान्यतः प्रातः आठ बजे शुरू होता और दोपहर एक बजे से ठीक पहले खत्म होता था। बीच में एक या दो मध्यावकाश होते थे। मगर खासकर ग्रामीण और अर्धग्रामीण विद्यालय इस व्यवस्था का हमेशा पालन नहीं करते थे। मसलन एक विद्यालय के अध्यापक यातायात की कठिनाइयों के कारण रोजाना कोई 30 मिनट देर से पहुंचते थे। फिर भी बच्चों को आदेश था कि इस स्थिति से वे स्वयं निबटें, समय पर कक्षा में जाएं और पिछले रोज दिए गए काम करना शुरू करें। एक और विद्यालय में प्रेक्षकों ने देखा कि अध्यापक अकसर धूप में बैठकर गप्पबाजी करते थे जबकि बच्चे कमरों में अपना काम करते रहते थे। इन विद्यालयों में माह में एक बार एक समय विशेष पर अध्यापन-कार्य रोक दिए जाते थे ताकि अध्यापक अपने वेतन के चेक लेकर भुना सकें।

आगे अध्याय 4 में हमने इन कक्षाओं की अध्यापन-शैली का पर्याप्त वर्णन किया है। इससे आम तौर पर वह टकराव उभरकर सामने आता है जिसका अध्यापक अनुभव करते हैं। एक ओर तो दिया गया पाठ्य-विवरण होता है जिसे उनको सत्र के दौरान पूरा करना होता है तथा दूसरी ओर बच्चों की स्थिति और क्षमताओं के अनुसार अध्यापन की गति घटाने-बढ़ाने की आवश्यकता होती है। केंद्रीय नौकरशाही बड़ी तादाद में जो फार्म भेजती थी, वे अध्यापकों पर एक अतिरिक्त बोझ जैसे होते थे। कारण कि अध्यापकों की तैयारी

और मूल्यांकन के समय का एक बड़ा भाग उनको भरने में ही निकल जाता था। अनेक कक्षाओं में प्राप्य और आगे के अध्यायों में वर्णित दुरूह अध्यापन-शैलियों का अंशतः यही कारण था। फिर कक्षा के कार्यों के संपादन की बेजान पद्धति भी उन्हीं बातों से जुड़ी थी जिन्हें अध्यापकों को व्यवस्था में उनके अधिकारियों ने सौंपा था। जिला निरीक्षक के साथ अध्यापकों की एक बैठक में इसका एक उदाहरण देखने को मिला। उस समय अध्यापकों को जो भाषण पिलाया गया वह कुछ-कुछ इस तरह था :

निरीक्षक : मुझे इस नगरपालिका में शिक्षा मंत्रालय ने नियुक्त किया है। बच्चे कैसे कुछ सीखते हैं, अध्यापकों के साथ मिलकर यह देखना भी मेरा काम है। मेरा मतलब सिर्फ पाठ की तैयारी से नहीं बल्कि अधिगम-प्रक्रिया के साथ चलनेवाली मानसिक परिघटना से भी है। अधिगम की यह प्रक्रिया संपन्न हो, इसके लिए इसमें निम्नलिखित विशेषताओं का होना जरूरी है। इस मानसिक प्रक्रिया में निम्नलिखित तत्व होने चाहिए। (श्यामपट पर लिखता है।)

(अ) संवदेना होनी चाहिए;

(ब) प्रत्यक्ष होना चाहिए;

(स) अमूर्तीकरण होना चाहिए;

(अपनी बात जारी रखता है।)

जो कुछ सीखा जा रहा है उसके बारे में कोई विवेक सम्मत निर्णय होना चाहिए (!) पांचवीं बात। अभिव्यक्ति और सामान्यीकरण भी होना चाहिए और अंतिम चरण में, जहां हम सभी असफल रहे हैं, व्यावहारिक उपयोग होना चाहिए।

इसी तरह वह अपनी बात कोई 30 मिनट तक जारी रखता है। बीच में कुछ अध्यापकों ने दबे लहजे में मगर नाकाम ढंग से कुछ कहने की कोशिश की।

(अंततः उसका ध्यान भूगोल की तरफ जाता है।)

निरीक्षक : ये प्रत्येक भौगोलिक तथ्य के पहलू होते हैं। दूसरे, मानचित्रों के बारे में तो उन्हें उसी संबंध में रखना चाहिए जिसमें वे सचमुच हों, अर्थात उत्तर की ओर उत्तर। नक्शा फर्श पर प्रधान बिंदुओं के अनुसार फैलाना चाहिए।

(बोर्ड पर लिखता है।)

मानचित्र

विश्व मानचित्र

लिथोग्राफिक मानचित्र

वैयक्तिक मानचित्र

इस बारे में मेरा एक सुझाव (!) है कि बच्चा इसे खुद करे या इसकी नकल उतारे है : अगर वह इसे खुद करता है तो देश का नक्शा बिगड़ेगा और अगर वह इसे नकल करता है तो नक्शा नहीं बिगड़ेगा।

अध्यापकगण : बिगड़ेगा ?

निरीक्षक (कोलंबिया और वेनेजुएला के सीमा-विवाद का हवाला देते हुए) : वेनेजुएला के साथ हमारी समस्या के बारे में हमारे देश के नक्शे के बिगड़ने की ओर मुश्किल से ही ध्यान दिया गया है।
अध्यापक (प्रेक्षक से फुसफुसाकर) : अब वह बातें बना रहा है।
निरीक्षक : यह शुद्ध मेरी कल्पना है कि इसे नकल करने पर हमारे देश का नक्शा नहीं बिगड़ेगा।
अध्यापक (पीछे पीछे) : वह तो नक्शा खींचना भी नहीं जानता।

इस बैठक में अवधारणा संबंधी जो भ्रम फैले और संदेश के संप्रेषण के लिए जिस निरंकुश विधि का उपयोग किया गया, अध्यापकों ने साफ तौर पर उसका मखौल उड़ाया। मगर ऐन इन्हीं अध्यापकों ने ऐसे ही भ्रामक और कठमुल्लाई ढंग से अपने पाठ पढ़ाए।

छात्र, अभिभावक और समुदाय

बैठकें विद्यालयों और अभिभावकों के बीच संचार की सामान्य विधि थीं। इन बैठकों में अभिभावकों को उनके बच्चों की रिपोर्टें दी जाती थीं और समस्याग्रस्त बच्चों पर विचारविमर्श होता था। अधिकांश अध्यापक स्थानीय स्थिति को समझने तथा स्थानीय संस्कृति और इतिहास का बोध करने में कठिनाई महसूस करते थे; शायद इसलिए कि वे खुद विद्यालय से जुड़े समुदाय के नहीं थे। इसलिए वे बाहरी पेशेवरों की तरह बातें करते और ऐसी मांगें रखते थे जो उनकी राय में विद्यालय के हित में थीं मगर जरूरी नहीं कि अभिभावकों की आवश्यकताओं या इच्छाओं से जुड़ी हों। जैसे पैसा, विद्यालय की बागबानी में मदद, विद्यालय के सहकारी स्टोर में बेची जानेवाली वस्तुएं जिन्हें फिर दान करनेवाले खरीदें।

अभिभावकों को राज्य द्वारा प्रवर्तित 'प्रगतिशील' शिक्षानीतियों के महत्व का विश्वास दिलाना उनके और विद्यालयों के पारस्परिक संवाद की सबसे कठिन स्थितियों में एक था, खासकर एस्क्यूला नोएवा की तरह के विद्यालयों में। बैठकों और साक्षात्कारों में व्यक्त मतों से लगता था कि जिन अभिभावकों के बच्चे किसी ग्रामीण विद्यालय में जाते थे, वे विद्यालय में समुदाय के रोजमर्रा के जीवन का पुनरुत्पादन करने के विचार का विरोध करते थे (जैसे सिंचाई और फसलों के बारे में व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने का)। उनकी राय में विद्यालय का काम बच्चों को किताब पढ़ना और जोड़-घटाना, गुणा-भाग करना सिखाना था। इसलिए उनकी राय में पठन-तत्परता के अभ्यासों जैसी विधियां जो इस काम के लिए कारगर न थीं उन पर वे आपत्ति करते थे। कुछ मामलों में अभिभावकों ने बच्चों का इसलिए विद्यालय से नाम कटा दिया कि वे गिनती नहीं सीख सके थे। ऐसी स्थिति को देखते हुए कुछ अध्यापकों ने यही बेहतर समझा कि तथाकथित 'प्रगतिशील' शिक्षा के कुछ कम गोचर उद्देश्यों को छोड़ दें तथा गणित और पुस्तक पढ़ना सिखाने की परंपरागत विधियों पर ध्यान केंद्रित करें।

अध्ययन में शामिल ग्रामीण विद्यालय इस बात से काफी हद तक अनभिज्ञ लगते थे कि वे जिस समुदाय के बीच काम करते हैं, वह कैसा है। इस कारण वे उससे संबंध बनाने की सार्थक तरीके भी नहीं निकाल सके। मिसाल के लिए एक समुदाय में अधिकांश स्त्रियां बुनाई करती थीं मगर अध्यापक बच्चों को यह सिखाने पर आमादा थे कि जमीन कैसे जोती जाती है। कुल मिलाकर यह लगता था कि समुदाय कैसा होना चाहिए, इस बारे में परंपरागत विचारों का ही बोलबाला था तथा देशांतरण या ट्रांजिस्टर रेडियो से पैदा परिवर्तनों पर कम ही ध्यान दिया जाता था।

विद्यालय के बाहर स्थितियों के अनुसार बच्चों का जीवन अलग-अलग प्रकार का था। नगरों के बच्चे आसानी से नगर की अपराध-संस्कृति के शिकार हो जाते थे। अनेक ऐसे बच्चे जिनके परिवारों का ढांचा दृढ़ न था, विद्यालय आना जारी रखते हुए भी 'गेमाइंस' का जीवन बिताने के लिए भाग खड़े हुए। ग्रामीण बच्चा सुबह को बच्चा और छात्र होता था मगर घर लौटकर खेतों में या पैसा कमाने के लिए कुछ और करने चला जाता था। बाजार के दिन अनेक बच्चों को घर पर रोक लिया जाता था ताकि वे अपना सामान बेचने में माता-पिता की कुछ सहायता करें।

बच्चों ने जब अपने अनुभवों पर मनन किया तो विद्यालय की भूमिका पर उनकी समझ अलग-अलग रही। कुछ बच्चों की राय में 'कुछ सीखने और बेहतर बनने के लिए विद्यालय जाना महत्वपूर्ण' था। दूसरों के नजदीक विद्यालय 'सिर्फ अमीरों का नौकर बनने में मदद देता है' लेकिन अनेक बच्चों की राय में विद्यालय ऐसी जगह था जहां बच्चा रहा जा सकता था।

प्रश्नकर्त्री (रामों से बातें करते हुए) : विद्यालय जाना पसंद है?
रामों : जी मादाम।
प्रश्नकर्त्री : विद्यालय क्यों पसंद है?
रामों : इसलिए कि वहां बहुत से बच्चे हैं। और हम खेलते हैं और दोस्त बनाते हैं और खेलते हैं और तोहफे पाते हैं....।
प्रश्नकर्त्री : हां, और ये तोहफे देता कौन है?
रामों : दूसरे बच्चे।
प्रश्नकर्त्री : और उन्होंने तुम्हें दिया क्या ?
रामों : मिठाई-नमकीन और तान (एक पेय)।
प्रश्नकर्त्री : ये चीजें तुम्हें घर पर नहीं मिलतीं ?
रामों : उंह ?
प्रश्नकर्त्री : घर पर तुम्हें नाश्ता नहीं मिलता ?
रामों : नहीं।
प्रश्नकर्त्री : घर पर क्या पीती हो ?
रामों : 'आगुआ दे पनेला' (शकर से कुछ बनाने की प्रक्रिया में बचा अवशेष) और दूध।

इस अध्ययन में शामिल बच्चे ज्यादातर उन घरों में पले-बढ़े थे जिनमें परंपरागत मध्यवर्गीय परिवारों से कुछ अधिक ही निरंकुश संबंधों का व्यवहार किया जाता था।[1] अधिकतर कड़ी मेहनत और जीवन-संघर्ष के कारण इन अभिभावकों के लिए बच्चों की बुनियादी जरूरतें पूरा करने को छोड़ किसी और ढंग का संबंध रखना कठिन होता है। लेकिन विद्यालय में ये बच्चे अपने अध्यापकों से कुछ अधिक निजी देखभाल और ध्यान पाते हैं। इस सिलसिले में हमें सचमुच ऐसा लगता था कि इन बच्चों के लिए विद्यालय का जो अर्थ था वह उनके पाठों की खुश्क बातों और नीरस अध्यापन-पद्धतियों से नजर आनेवाले अर्थ के मुकाबले कहीं ज्यादा गहरा था।

टिप्पणियां

1. जैसा कि दे तेजानो आदि (1983 : 122) ने घरों का दौरा करने और अभिभावकों से साक्षात्कार लेने के बाद उसके आधार पर स्पष्ट किया है : इन सामाजिक समूहों में बच्चों पर हुक्म चलाने के अलावा संवाद का कोई अन्य उपाय लगभग नहीं होता. माता-पिता के आगे खामोशी रखना उनकी सत्ता का आदर करना समझा जाता है ... इसी तरह माता-पिता और बच्चों के बीच बहुत सीमित रागात्मक संबंध होता है. इन अभिभावकों के पास उनकी आर्थिक स्थिति के कारण साथ होने पर बच्चों को देने के लिए कम ही समय होता है, समय काम करने के लिए होता है, फुरसत मनाने के लिए नहीं.

संदर्भ

दे तेजानो, ए ; मुनोज, जी; रोमेरो, ई (1983) : *एस्क्यूला या कमिदाद : उन प्राब्लेमा दे सैतिदो,* अनुसंधान केंद्र, राष्ट्रीय शिक्षाशास्त्र विश्वविद्यालय, बगोता, कोलंबिया.

मोरा, जे (1981) : *केरेक्तेरिस्तिकास क्यूरिक्यूलरिस देल प्रोग्रामा दे एजुकेशियों प्राइमारिया एन कोलंबिया,* शिक्षाशास्त्र संकाय, वैले विश्वविद्यालय, केली, कोलंबिया.

4. कोलंबिया की कक्षा में अध्यापनशैलियां

एरासेली दे तेजानो

यह एक आम समझ है कि शैक्षिक असफलता की धारणा के पीछे काफी सशक्त सांस्कृतिक अंतर्वस्तु सक्रिय होती है।

विद्यालय में बच्चों की असफलता से जुड़े मुद्दों की समझ पाने के लिए हमने अध्ययनाधीन कोलंबियाई विद्यालयों में अध्यापन[1] के लिए प्रयुक्त शैलियों का वर्णन आवश्यक समझा। इस अध्यापन में हमने अध्यापन की प्रयुक्त शैली को दर्शाने के लिए तीसरी कक्षा में पढ़ाए गए एक पाठ के प्रेक्षण में लिए गए विस्तृत ब्योरों को प्रस्तुत किया है। दूसरे, हमने दो दृष्टिकोण से प्रथम स्तर पर इन ब्योरों का विश्लेषण कया है। ये दृष्टिकोण पाठ की विषयवस्तु और अध्यापक-छात्र अंतःक्रिया स संबद्ध हैं। तीसरे, प्रस्तुत अध्ययन में उठाए गए प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए हमने इन निष्कर्षों की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रेक्षण

निम्नलिखित पाठ की संरचना पांच सुस्पष्ट चरणों पर आधारित है : कक्षा के परिवेश का निर्धारण, गृहकार्य की जांच, मुख्य विषय का विकास, बच्चों का नोट्स लेना, और मुख्य विषय की समीक्षा। अध्यापनकर्म की दृष्टि से इनमें से प्रत्येक चरण का एक विशिष्ट लक्ष्य है। इसके अलावा पाठ का समग्र उद्देश्य ही प्रत्येक चरण को उसका अर्थ प्रदान करता है और फिर यह अर्थ स्वयं पाठ को उसकी एकता से विभूषित करता है।

कक्षा के परिवेश का निर्धारण

अध्यापिका : सभी खड़े हों! हाथ ऊपर !! नीचे ! गाओ !

छात्रगण (गीतों के सुझाव देते हुए) : 'कनारी चिड़ियां, पागल चुड़ैल !

अध्यापिका : कनारी चिड़ियां।

(बच्चे खड़े होकर तालियां बजाते हुए गाते हैं।)

गृहकार्य की जांच

निवेदन

अध्यापिका : हमें करने के लिए कुछ गृहकार्य दिया गया था, कि नहीं ? आज हमें कौन सा गृह कार्य करना था ?
छात्रगण (एक साथ) : गणित .... आं, संख्याएं।

जबानी सुधार

लड़का : एक सौ से दस हजार तक।
अध्यापिका : एक सौ में कितनी इकाइयां होती हैं ?
लड़की : एक।
अध्यापिका : इकाइयां...कितनी इकाइयां ?
लड़की : एक।
लड़का : दस।
छात्रगण (एक साथ) : एक सौ।
अध्यापिका : एक सौ क्या ?
छात्रगण (एक साथ) : इकाइयां।
अध्यापिका : हां, एक सौ इकाइयां, तो फिर सैकड़े में कितनी इकाइयां हुईं ?
लड़का : दस।
एक और लड़का : सौ।
अध्यापिका : सौ क्या ?
छात्रगण : इकाइयां।
छात्रगण : सैकड़े।
अध्यापिका : तो यूं होती हैं सौ इकाइयां। अब इसमें सौ और जोड़ें तो कितना हुआ ?
अध्यापिका : देखते हैं पहले कौन आकर यह संख्या लिखता है। पहली संख्या। आओ...
लड़का (जो पीछे बैठा हुआ है) : मैं, मैं आऊं ...
अध्यापिका : (श्यामपट साफ करते हुए) : आओगे ... तो आओ। देखते हैं। (लड़का आगे जाकर श्यामपट पर '100' लिखता है।)

कापियां जांचना

अध्यापिका : अब तुम सब अपनी-अपनी कापी खोलो। हम तुम्हारा गृहकार्य देखकर पता करेंगे कि किया कैसे है।
लड़की : मुझे दस हजार तक मिला था।
अध्यापिका : देखेंगे। देखते हैं, इसलिए कि तुम्हें इस कार्य पर नंबर मिलने थे, कि नहीं ?
सभी छात्र (एक साथ) : जी मादाम।
अध्यापिका : मुझे लाल स्याहीवाला कलम दो।
(अध्यापिका बच्चों की कतारों के बीच घूमफिरकर गृहकार्य देखती है।)

मुख्य विषय का विकास

अध्यापिका : तो मैं कह रही थी ...
अध्यापिका : हो तो आओ, देखें तो सही ...
छात्रगण (पुकार कर) : मुझे मादाम एल्विरा, मुझे।
अध्यापिका : अब इकाई को चित्र से दिखाओ; दिखा सकोगे ?
छात्रगण : मैं, मादाम एल्विरा, मैं।
(एक लड़का उठकर श्यामपट तक जाता है।)
एक और लड़का (पुकारकर) : उसके बाद मैं।
(बच्चों की तरफ से शोर उठता है)
अध्यापिका : हूं, अब इस छोटे से चित्र को देखो, तो देखें।
लड़का : एक लड़की।
अध्यापिका : तो ये तुम्हें क्या लगता है ?
छात्रगण (एक साथ) : लड़की।
अध्यापिका : लड़की, गुड़िया, या कुछ और ?
छात्रगण : एक तत्व।
अध्यापिका : तो गणित में इस लड़की का, इस गुड़िया का क्या मतलब है ?
छात्रगण (एक साथ) : एक तत्व।
अध्यापिका : क्या ?
छात्र (एक साथ) : एक तत्व।
अध्यापिका : एक तत्व, एक क्या ?
छात्र (एक साथ) : एक इकाई।
अध्यापिका : और यह सिर्फ एक है, क्या है ?

छात्र (एक साथ) : सिर्फ एक वस्तु।
अध्यापिका : नहीं, यह कोई वस्तु है क्या ? इंसान भी वस्तु हो सकता है क्या ?
छात्र (एक साथ) : नहीं, सिर्फ एक इकाई।
अध्यापिका : सिर्फ एक चित्र, कि नहीं ?
लड़का : यह एक अकेली गुड़िया है।
अध्यापिका : अगर केवल एक गुड़िया है तो यह दिखाती क्या है ?
छात्र (एक साथ) : एक तत्व को।
अध्यापिका : तो देखते हैं। कार्लोस, यह चित्र क्या दर्शाता है ?
कार्लोस : एक तत्व।
अध्यापिका (स्वीकार भाव से) एक तत्व। इसे दूसरे रूप में बताओ।
(बच्चे संशयग्रस्त दिखाई देते हैं।)
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय।
अध्यापिका : एक क्या ? क्या एक ?
छात्र (एक साथ) : एक इकाई
अध्यापिका : इकाई। तो यह इकाई है क्योंकि यह सिर्फ एक...वस्तु है।
अध्यापिका (पेन दिखाकर) : अगर ये हो...यह मेरे हाथ में क्या है ?
छात्र (एक साथ) : दो पेन।
अध्यापिका : देखते हैं। इनको गिनो। (पहले एक, फिर दूसरा दिखाती है।)
छात्र (एक साथ) : एक, दो।
(अध्यापिका मेज पर रखे हुए पेन उठाती है और बच्चों को दिखाती है जिन्हें वे गिनते जाते हैं।)
छात्र (एक साथ) : तीन, चार, पांच।
लड़का (जो पीछे बैठा है) : तीन तत्व, चार तत्व, पांच तत्व।
अध्यापिका : अब इनको दोबारा गिनोगे ?
छात्र (एक साथ) : एक, दो, तीन, चार और पांच।
अध्यापिका : मेरे पास पांच हैं, क्या ?
छात्र (एक साथ) : तत्व।
अध्यापिका : नहीं, ये हैं क्या ?
छात्र (एक साथ) : पेन।
अध्यापिका : पेन। इनका क्या इस्तेमाल हम करते हैं ?
छात्र (एक साथ) : लिखते हैं ?
अध्यापिका : हां, लिखते हैं। समुच्चयों पर आओ। तो मेरे पास क्या है ?
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय।
अध्यापिका : एक समूह, किसका ?

कुछ छात्र : तत्वों का।
कुछ छात्र : पेन का।
अध्यापिका : एक समूह, किसका ?
छात्र (एक साथ) : कई तत्वों का।
अध्यापिका : बहुत अच्छे। तो यह समूह है कई...?
छात्र (एक साथ) : तत्वों का।
अध्यापिका (पेन दिखाकर) : तो यहां कितने तत्व हैं ?
छात्र (एक साथ) : पांच।
अध्यापिका : पांच। और ये पांच छोटे-छोटे पेन सूचक हैं एक...?
छात्र (एक साथ) : समुच्चय का।
लड़का : तत्व का।
अध्यापिका : एक क्या ?
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय। एक समुच्चय।
अध्यापिका : खैर, देखते हैं। और पीछेवाली लड़की, समुच्चय क्या होता है ?
(पीछे बैठी लड़की जवाब देने लगती है, मगर आवाज सुनाई नहीं देती।)
अध्यापिका : खामोश। सिर्फ एक बोलेगा।
लड़की (पीछेवाली) : समुच्चय तत्वों का एक समूह होता है।
अध्यापिका : अनेक तत्वों का। बस ?
लड़की (पीछेवाली) : नहीं।
अध्यापिका (एक और लड़की से) : तो महारानी जी, आइए देखें कि समुच्चय क्या होता है।
लड़की : समुच्चय अनेक तत्वों का एक समूह होता है।
अध्यापिका : अनेक तत्वों का। और यहां कितने तत्व हैं ?
छात्र (एक साथ) : पांच।
अध्यापिका : तो इन्हें तत्व मत कहो। किसी और ढंग से कहो।
छात्र (एक साथ) : इकाइयां।
अध्यापिका : क्या ?
छात्र (एक साथ) : इकाइयां।
अध्यापिका : इकाइयों का, एक समूह अनेक...?
छात्र : इकाइयों का।
अध्यापिका : यहां हमारे पास कितनी इकाइयां हैं ?
छात्र : पांच।
अध्यापिका : पांच। इसलिए कि इनमें से हर कोई एक इकाई का सूचक है ?
छात्र : पेन।

अध्यापिका : पेन। हर पेन एक इकाई का सूचक है। सो अगर हमारे पास पांच पेन हैं तो कितनी इकाइयां हुईं ?
छात्र (एक साथ) : पांच।
अध्यापिका : पांच क्या ?
छात्र (एक साथ) : इकाइयां।
अध्यापिका : तो एस्पेरोजा, यहां आओ और एक चित्र...
छात्र (चिल्लाकर) पैट्रीशिया, पैट्रीशिया।
अध्यापिका (यह समझे बिना कि उसने लड़की को किसी और नाम से पुकारा था) : ... समुच्चय का खींचो। जैसा भी तुम चाहो।
लड़की (विरोध के स्वर में) : मेरा नाम एस्पेरोजा नहीं, पैट्रीशिया है।
अध्यापिका : तुमने कितने छातों के चित्र बनाए हैं ?
छात्र (एक साथ) : चार के।
अध्यापिका : तो इन चार छातों को हम क्या कहेंगे ?
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय।
अध्यापिका : एक... ?
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय।
अध्यापिका : कितने छातों का समुच्चय ?
छात्र (एक साथ) : चार का।
अध्यापिका : तो अब श्यामपट तक जाओ।
छात्र (चिल्लाकर) : मादाम, मैं।
अध्यापिका : नूबिया, तुम जाओ और उसके नीचे लिखो। (नूबिया श्यामपट तक जाती है और छातों के चित्र के नीचे लिखती है : 'छातों का समुच्चय।' जो कुछ नूबिया ने लिखा है उसे फिर पढ़ती है।)
अध्यापिका (छात्रों से) : बहुत अच्छा। उसने जो कुछ श्यामपट पर लिखा है उसे पढ़ो। धीरे-धीरे, भागे बिना।
अध्यापिका : बहुत अच्छा। तो फिर यह क्या है ?
छात्र (एक साथ) : चार छातों का समुच्चय।
अध्यापिका : तो अब महाराज को देखते हैं। (वह कमरे में पीछे बैठे एक छात्र की ओर बढ़ती है।) महाराज कोई मिसाल देंगे ? जो भी चाहें।
लड़का : मकान।
अध्यापिका : लेकिन छोटे-छोटे मकान कितने ? देखना है।
लड़का : पां...च।
अध्यापिका : एक समुच्चय पांच...
छात्र (एक साथ) : मकानों का।

अध्यापिका (एक और लड़के से) : आप किसी और समुच्चय का उदाहरण दें महाराज।
लड़का : दवाओं के दो डब्बे।
अध्यापिका : ठीक। तो दवाओं के दो डब्बे। और आप महाराज ?
एक और लड़का : चार संतरे।
अध्यापिका : चार संतेरे।
एक और लड़का : छह केले।
अध्यापिका : छह केलों का समुच्चय। बहुत अच्छा। और आगे ?
एक और लड़का : आठ नर्तकियां।
लड़की : पांच सेबों का समुच्चय।
(बच्चे उदाहरण देते जाते हैं और अध्यापिका उन्हें दोहराती जाती है।)
अध्यापिका (पीछे बैठे एक लड़के की ओर इशारा करके) : और आप महाराज ?
छात्र : चार पेड़।

नोट्स लेना

अध्यापिका : अब अपनी-अपनी अभ्यास पुस्तिका बाहर निकालो।
लड़का (जो पीछे बैठा है) : गणित की ?
अध्यापिका : हां श्रीमान, गणीत की।
(बच्चे अपनी अभ्यास पुस्तिकाएं बाहर निकालते हैं।)
लड़की : साफ वाली ?
(वह जो रफ गणनाओं वाली कापी से अलग है।)
अध्यपिका : हां, साफवाली।
लड़का : मादाम एल्विरा, नए पन्ने से शुरू करें ?
अध्यापिका : मैं अब यही तो देखना चाहती हूं कि तुम सब करते क्या हो।
(बच्चे शोर मचाते हैं। अध्यापिका ने जो पेन जमा कराए थे उन्हें वापस करती है।)
लड़की (पास की लड़की की ओर इशारा करके) : मादाम एल्विरा, इसका पेन वापस नहीं मिला।
(अध्यापिका इस बात को नजरअंदाज करती है।)
अध्यापिका : साफ लाइनोंवाली अभ्यास पुस्तिका में पहले चार लाइनें छोड़ो, चार...
(अध्यापिका कतारों के बीच घूमती है और पहली कतार में बैठे एक लड़के की अभ्यास पुस्तिका उठाकर उदाहरणस्वरूप दिखाती है।)
अध्यापिका : अगर थोड़ी सी जगह ही बची हो तो नए पन्न से शुरू करो।

मुख्य विषय की समीक्षा

अध्यापिका : तो जैसाकि हमने पहले कहा, ये अनेक प्रकार के होते हैं...क्या होते हैं ?
छात्र (एक साथ) : समुच्चय।
अध्यापिका : समुच्चय होते हैं। तो समुच्चय बनता कैसे है ?
छात्र (एक साथ) : इकाइयों से।
अध्यापिका : इ... ?
छात्र (शब्द पूरा करते हैं) : काइयों से।
अध्यापिका : तो फिर कितने तत्व इसे दर्शाते हैं ?
कुछ छात्र : तीन।
दूसरे छात्र : चार।
एक छात्र : एक।
अध्यापिका : एकल समुच्चय क्या है ?
छात्र : एक इकाई।
अध्यापिका : वह जो सिर्फ एक से दर्शाया जाए ?
छात्र (एक साथ) : इकाई।
अध्यापिका : तो उस समुच्चय का नाम क्या है ?
लड़का : समांग !
छात्र (एक साथ) : समांग!
अध्यापिका : समांग ! और दूसरे का ?
छात्र (एक साथ) : और दूसरे का ?
अध्यापिका : समांग समुच्चय वह है जो अनेक सजातीय तत्वों से बनता है।
लड़की : आठ फूल।
अध्यापिका : मसलन, आठ...
छात्र (एक साथ) : आठ फूल।
अध्यापिका : वे सभी सजातीय है क्योंकि सभी फूल हैं, हैं कि नहीं ?
अध्यापिका : कोई और समुच्चय ?
लड़का : सात रबर।
अध्यापिका (एक और लड़के से) : और आप महाराज !
लड़का : नौ पेंसिलें।
अध्यापिका : नौ पेंसिलें।
छात्र (एक साथ) : पांच चित्र।
अध्यापिका : पांच चित्र। तो पांच चित्रों का यह समुच्चय, इसमें सभी तत्व एक ही...।

छात्र (एक साथ) : श्रेणी के हैं।
अध्यापिका : सजातीय हैं। और चूंकि वे सभी सजातीय हैं, इसलिए उस समुच्चय को क्या कहते हैं ?
(छात्र कुछ कहते हैं मगर क्या कहते हैं, यह सुनना मुश्किल है।)
अध्यापिका : सजा... ?
छात्र (एक साथ) : ...तीय
अध्यापिका : सजातीय। तो सजातीय समुच्चय वह हुआ जिसके सभी तत्व एक ही... ?
छात्र (एक साथ) : श्रेणी के हैं।
(अध्यापिका छात्रों की ओर पीठ करके श्यामपट पर लिखती है।)
अध्यापिका : तो अब शीर्षक के रूप में लिखो...
(अध्यापिका जो लिखती है उसे कुछ बच्चे पढ़ते हैं।)
अध्यापिका : पढ़ो कि क्या लिखा है। धीरे-धीरे, सभी... वो, बच्चे क्या लिख रहे हैं ?
छात्र (एक साथ पढ़ते हैं) : विषमांग समुच्चय।

विश्लेषण का काम

परंपरागत संरचनावादी विश्लेषण को आधार बनाकर हमने सभी प्रेक्षित पाठों के ब्योरों की जांच पड़ताल की ताकि हम यह जान सकें कि उनके विकास के कौन-कौन से चरण हैं और किस सीमा तक ये चरण केंद्रीय विषय से सुसंगत रूप से जुड़े हुए हैं। फिर भी हमारी यह कतई अपेक्षा नहीं थी कि इस सुसंगति का अर्थ एक विशेष प्रकार की विषयवस्तु की विवेचना ही होनी चाहिए। मसलन भूगोल के पाठ में भौतिकी की अवधारणाएं भी आ सकती हैं और भाषा के पाठ में गणित की संकल्पनाओं का उल्लेख भी किया जा सकता है।

विषय की इकाई

ऊपर दर्ज पाठ की छानबीन करके उसके विषय का पता लगाना मुश्किल नहीं है। गृहकार्य से संबंधित पूछताछ संख्याओं के विषय में है। पाठ का विकास समुच्चय सिद्धांत के बारे में है और इसका आरंभ इकाइयों के उल्लेख से होता है जिससे छात्र परिचित लगते थे। उसके बाद अध्यापिका 'समांग' और 'विषमांग' समुच्चयों की धारणा पर आती है जिसका निर्देश पाठ्य-विवरण और अध्यापक-मार्गदर्शिका में मिलता है। पाठ्यपुस्तक में लिखे जाने का निर्देश उन समुच्चयों के बारे में है जिनकी चर्चा वह करती रही है, और यही बात पाठ के अंत में की गई समीक्षा के बारे में है। कुछ जगहों पर भाषाई सटीकता के अभाव के

बाद (उसने इकाइयों और समुच्चय के तत्वों का उल्लेख गड्ड-मड्ड ढंग से किया है), अगर उपयुक्त उदाहरण देने की योग्यता के आधार पर परखें तो बच्चे भ्रम के शिकार नहीं लगते।

पाठ की संरचना साफ तौर पर 'प्रस्तावना', 'विकास' और 'उपसंहार' जैसे निबंधीय चरणों में आगे बढ़ती है। दूसरे पाठों में भी यही संरचना नजर आती है। मसलन कक्षा 5 के एक वर्ग में हमने ये चरण देखे : प्रारंभिक बातें (पुस्तकें देना, पैसा वसूल करना), मुख्य विषय का विकास, और गृहकार्य देना। हड्डियों के विषय पर केंद्रित इस पाठ में विषय की सुसंगति भी मौजूद थी। यह पाठ विषय से केवल अंत में ही भटका, जब गृहकार्य के लिए एक बिलकुल भिन्न विषय (भाषा से जुड़ा कार्य) दिया गया।

लेकिन एक अन्य प्रेक्षित पाठ में स्थिति इससे बहुत कम स्पष्ट थी (दे ते जानो आदि 1983 ने इसका भरपूर वर्णन किया है)। यह पहली कक्षा का एक वर्ग था और जब प्रेक्षक कमरे में पहुंचा, पाठ शुरू हो चुका था। उस समय उसने घटनाओं का निम्नलिखित क्रम देखा : व्यायाम का अभ्यास जिसमें बच्चे उंगलियों के नाम दोहरा रहे थे; उंगलियों के उपयोग पर आधारित मुख्य विषय का विकास; जो कुछ अभी-अभी पढ़ाया गया था उसकी समीक्षा; मानव-काया के दूसरे अंगों के बारे में कुछ और विषय विकास; खेल का निमंत्रण; खेल; एक नए विषय (सूरज, आकाश, चांद, और रात) का आरंभ।

पाठ के पहले भाग में एक केंद्रीय विषय मौजूद था। लेकिन खेल (जिसे शायद इसलिए खिलाया गया कि बच्चे निढाल लग रहे थे) के बाद यह विषय छोड़कर एक नया विषय शुरू किया गया। दूसरा विषय भी पूरा नहीं किया गया। इस तरह एक ही पाठ में तीन छोटे-छोटे पाठ देखने को मिले। पहले छोटे पाठ में प्रस्तावना, विषय विकास और उपसंहार मौजूद रहे और विषय की एकता भी बनी रही। शरीर के दूसरे अंगों के विषय को विकसित करनेवाला दूसरा छोटा पाठ कहीं बहुत अधिक अराजक था और उसकी विषयवस्तु में भी विकृतियां थीं। इसके बाद फिर खेल रूपी मध्यांतर हुआ और फिर तीसरा पाठ पढ़ाया गया जो प्रस्तावना और उपसंहार, दोनों से वंचित था।

हमने पाठ के संगठन का एक और रूप पांचवीं कक्षा के एक वर्ग में देखा जहां मुख्य विषय के विकास से एक नया विषय आरंभ हुआ। अध्यापिका ने इस पाठ का आरंभ गृहकार्य की जांच से किया और फिर केंद्रीय विषय पर आने के मकसद से बच्चों को प्रेरित करने के लिए एक गीत का उपयोग किया।

> *अध्यापिका* : इस गीत ने तुम सबमें थोड़ा सा जोश पैदा किया है। तुमने गाने के अलावा और क्या किया है ?
> *छात्र* : गति की है।
> *अध्यापिका* : उन गतियों के लिए तुमने किस चीज का उपयोग किया है ?
> *छात्र* (अस्पष्ट उत्तर देते हुए) : अपने सर का, शरीर का, अंगों का।

इस संवाद के बाद अध्यापिका प्रासंगिक ढंग से बोली, 'आज हम किन-किन हड्डियों पर

विचार करेंगे ?' लेकिन यह जाहिर था कि यह विषय बच्चों के लिए पूरी तरह नया नहीं था। इसलिए कि बच्चों के जवाब में कोई कठिनाई महसूस किए बगैर अध्यापिका प्रश्नों का क्रम आगे बढ़ाने में सफल रही। पाठ की एकता और संरचना तब तक बनी रहीं जब तक बच्चों से अभ्याय पुस्तिका में लिखने को नहीं कहा गया। फिर एक व्यवधान आया और कमरे से बाहर जाने के निर्देश से कक्षा की गतिविधियों में बदलाव आ गया।

> *अध्यापिका* : ठहरो जरा, मैं तुम्हें कुछ काम देती हूं। हां, तो भाषाज्ञान का कुछ काम बेहतर रहेगा !
> (इस तरह शरीर-विज्ञान की कक्षा एकाएक भाषा की कक्षा में बदल गई।)
> *अध्यापिका* (श्यामपट पर लिखते हुए) : इन शब्दों का वाक्यों में प्रयोग करो और एक-दूसरे से इन्हें जोड़कर छोटी सी कहानी तैयार करो।
> *अध्यापिका* (जब 'गांव' शब्द लिखती है) : तुम सब चूंकि गांव में रहते हो, इसलिए यह आसान रहेगा।
> *अध्यापिका* (लिखना जारी रखती है) : गांव, मवेशी, नदी, छोटा सा मकान, दादा, बच्चे, पेड़, नीला आसमान, पृथ्वी का दृश्य।

एक और पाठ में तीसरी कक्षा के कुछ बच्चों को भिन्न संबंधी कार्य कराए गए। यहां दूसरी कक्षाओं की अपेक्षा लड़कों और लड़कियों के वितरण में अधिक समानता थी। पाठ की संरचना में कक्षा को दिखाए गए एक खीरे के रूप में अभिप्रेरण कार्य भी शामिल था। फिर बच्चों से कहा गया कि एक सुघड़ गृहिणी इस खीरे को बांटना चाहती है : 'आज के लिए तीन हिस्सा, और एक हिस्सा कल के लिए।'

इस कक्षा में मुख्य पाठ के विकास का आरंभ इस प्रश्न से किया गया : 'अगर हम पूरे का इस्तेमाल न करें तो उसके भागों को क्या कहेंगे ?' इसके बाद सम और विषम भिन्न की अवधारणाएं विकसित की गईं। फिर श्यामपट पर अभ्यास कराया गया जिसमें बच्चों को बुलाकर विभिन्न प्रकार के भिन्न लिखने को कहा गया।

> *अध्यापिका* : राउल, यहां मेरे पास आओ।
> (राउल श्यामपट के पास जाकर उसे साफ करता है।)
> *अध्यापिका* : अब सिल्विया, उसे एक सम भिन्न बताओ।
> *सिल्विया* : चार-चौथाई।
> *अध्यापिका* : सम। मेरीना ?
> *मेरीना* : तीन बटा पांच।
> *अध्यापिका* : यहां इकाई को कितने भागों में बांटेंगे, राउल ?
> *छात्र* (हाथ उठाकर पुकार लगाते हैं) : मादाम, मैं।
> *अध्यापिका* (राउल से जो जवाब नहीं दे पाता) : जाकर बैठो।
> *एक और छात्र* (श्यामपट तक आकर जवाब देता है) : पांच भागों में।

(घंटी की आवाज अध्यापिकाओं को एक मीटिंग के लिए बुलाती है जिससे पाठ समाप्त करना पड़ता है और अध्यापिका जल्दी-जल्दी थोड़ा सा गृहकार्य देती है।)

अंत में हम पहली कक्षा का एक पाठ देखेंगे जो नकल पर आधारित है। इसके भागों में बच्चों को करने के लिए कुछ प्रारंभिक टिप्पणियां शामिल थीं और यह घोषणा भी कि वे पाठ नकल करके उतारें जबकि अध्यापिका नंबर देने का काम करेगी। इस काम के पूरा होने पर अध्यापिका ने घूम-घूम कर कापियां देखीं, किए हुए को सुधारा और कुछ छात्रों से लिखे हुए को बोलकर पढ़ने को भी कहा। खेलने के लिए बाहर जाने से ठीक पहले बच्चों से दोनों हाथों की कसरत भी कराई गई।

पहली कक्षा के इस पाठ के ब्योरों को शुरू में पढ़कर हमें लगा कि अध्यापिका का मुख्य सरोकार कापी जांचने का काम पूरा करना था। लेकिन अपने ब्योरों को हमने और ध्यान से देखा तो पाठ में एक ढांचा ही नहीं दिखाई पड़ा बल्कि लगा कि अध्यापिका ने कापी-जंचाई को अध्यापन के उद्देश्य से इस्तेमाल किया था।

अध्यापिका (छात्रों से) : नकल-कार्य क्यों ? इसलिए कि पिछले महीने हम ठीक से पढ़ने और लिखने का कार्य नहीं कर सके थे। अगर किसी शब्द को 'व' से लिखना हो तो उसे 'व' से सिर्फ इसलिए मत लिखो कि यह अक्षर तुम्हें ज्यादा पसंद है। (बोलचाल की स्पेनी में 'ब' और 'व' आसानी से गड्डमड्ड हो जाते हैं।)

सामान्यत : हमने जिन पाठों का प्रेक्षण किया उनमें से ज्यादातर पाठ हरबर्ट के शिक्षाशास्त्र से प्रेरित परंपरागत शिक्षाशास्त्रीय ग्रंथों के सिद्धांतों का अनुसरण करते हैं। फिर भी इसमें शक है कि अध्यापिकाएं अपनी पाठ-शैलियों के सैद्धांतिक औचित्य के प्रति सजग थीं। इस तरह हम उनकी अध्यापन-शैली को अनुभवजन्य मान सकते हैं।

अध्यापक-छात्र अंतःक्रिया

पाठ-सामग्री जांच-पड़ताल का दूसरा दृष्टिकोण प्रश्न की प्रक्रिया पर केंद्रित है। इसे हम किसी पाठ के दौरान छात्रों की भागीदारी के सूचक रूप में तथा ज्ञान-ग्रहण प्रक्रिया में मध्यवर्ती तत्व के रूप में भी देखते हैं।

पहले हमने अध्यापिका के प्रश्नों पर विचार किया। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित प्रश्नक्रम प्रस्तुत है :

अध्यापिका (कक्षा से) : संख्या क्या है ?
छात्र (एक साथ) : एक सौ।
अध्यापिका : दस इकाइयां, या नहीं ?
छात्र : हां।

अध्यापिका : इसमें सौ और जोड़ें तो क्या आएगा ?
छात्र (एक साथ) : दो सौ।
अध्यापिका (एक और छात्र की ओर इशारा करके) : आप आइए महाराज और दो सौ लिखिए।
अध्यापिका (लड़का जब श्यामपट पर लिखता है) : जमा सौ और इकाइयां।
छात्र (एक साथ) : तीन सौ।
अध्यापिका (श्यामपट वाले लड़के से जल्दी में) : तीन सौ, और अगर हम और सौ इकाइयां जोड़ें तो।
छात्र (एक साथ) : चार सौ।
अध्यापिका (एक और लड़के से) : आप बताइए महाराज...जमा ?
छात्र (एक साथ) : पांच सौ।
छात्र : ऊपर बढ़ता है ?
अध्यापिका : बिलकुल दुरुस्त। जमा सौ और ?
छात्र (एक साथ) : छह सौ।
अध्यापिका : छह सौ लिखिए तो श्रीमान, देखें तो !
(छात्र कुछ बुदबुदाने लगते हैं।)
अध्यापिका : यह संख्या दूसरों के ऊपर जो है ?
अध्यापिका : जमा सौ और ?
छात्र (एक साथ) : सात सौ।
अध्यापिका : इसमें सौ और जोड़ें तो ?
छात्र (एक साथ) : आठ सौ।
अध्यापिका : तो हमने शुरू कहां से किया था ?
छात्र (एक साथ) : एक सौ से।
अध्यापिका : जमा सौ ?
छात्र (एक साथ) : दो सौ।
अध्यापिका : जमा सौ ?
छात्र (एक साथ) : तीन सौ।
अध्यापिका : जमा सौ ?
छात्र (एक साथ) : चार सौ।
(अध्यापिका इसी तरह आठ सौ तक पहुंचती है।)
अध्यापिका : और अगर आठ सौ में से सौ निकालें तो क्या बचा ?
छात्र (एक साथ) : सात सौ।
अध्यापिका : अब सौ और निकालें तो ?
छात्र (एक साथ) : छह सौ।

अध्यापिका : सौ और कम ?
छात्र (एक साथ) : पांच सौ।
(अध्यापिका इसी तरह सौ तक वापस आती है।)
अध्यापिका : सौ और कम ?
छात्र (एक साथ) : शून्य।
अध्यापिका : शून्य...आं ? बहुत अच्छे !

कोई दस मिनट तक जारी यह पूरा प्रश्नक्रम एक पाठ के दूसरे खंड का अंश था और गृहकार्य-सुधार पर केंद्रित था। प्रश्न की शैली पुनरोक्तिमूलक थी क्योंकि वही प्रश्न यानी 'जोड़ा' या 'घटाया' सौ बार-बार पूछा गया था। अध्यापन में ऐसा कोई संवाद नहीं था जहां छात्र किसी कमी को पूरा करें या अपने विचार सामने रख सकें।

निम्नलिखित क्रम उसी पाठ के तीसरे भाग या मुख्य विकास के दौरान आया।

अध्यापिका : तो बताओ, यह लड़की, यह गुड़िया गणित में क्या दर्शाती है ?
छात्र (एक साथ) : एक तत्व।
अध्यापिका : एक तत्व। क्या ?
छात्र (एक साथ) : एक इकाई।
अध्यापिका : मगर सिर्फ एक इकाई क्यों ?
छात्र (एक साथ) : इसलिए कि यह सिर्फ एक तत्व है।
अध्यापिका : इसलिए कि यह केवल एक... ?
छात्र (एक साथ) : तत्व है।
अध्यापिका : और यह केवल एक... ?
छात्र (एक साथ) : तत्व है। सिर्फ एक वस्तु।
अध्यापिका : नहीं। यह कोई वस्तु है ? कोई व्यक्ति वस्तु होता है ?
छात्र (एक साथ) : नहीं, केवल एक इकाई।
अध्यापिका : केवल एक छोटा सा चित्र। नहीं ?
छात्र (एक साथ) : केवल एक गुड़िया।
अध्यापिका : हां, केवल एक गुड़िया है। तो यह गुड़िया दर्शाती क्या है ?
छात्र (एक साथ) : एक तत्व।
अध्यापिका : तुम बताओ कार्लोस, यह चित्र क्या दिखाता है ?
कार्लोस : एक तत्व।
अध्यापिका (स्वीकार के स्वर में) : एक तत्व। इसी को दूसरे ढंग से कहो। (छात्र हैरान दिखाई देते हैं।)
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय।
अध्यापिका : क्या ? एक क्या ?

छात्र (थोड़ा डरते हुए) : एक इकाई ?
अध्यापिका : तो यह एक इकाई है क्योंकि केवल एक वस्तु है।

प्रश्न की यह शैली यहां आकर पुनरोक्तिमूलक नहीं रही। अध्यापिका यहां एक प्रकार से सुकराती ज्ञान-प्राप्ति में रत है। लेकिन प्रश्नों पर विचार करें तो यह जानना मुश्किल नहीं कि सुकराती उद्देश्य का उल्लंघन किस प्रकार हुआ है : 'यह कोई वस्तु है ?', 'कोई व्यक्ति वस्तु होता है ?', 'केवल एक छोटा सा चित्र। नहीं,' ? 'हां, केवल एक गुड़िया है। तो यह गुड़िया दर्शाती क्या है ?' इस प्रश्नक्रम का संदर्भ बिंदु क्या है ? यह कोई वस्तु है, व्यक्ति है, चित्र है, या गुड़िया है ? अगर सुकराती संवाद का निहित उद्देश्य स्मृति और प्रयास के द्वारा कुछ स्पष्ट करना या सूचित करना है तो उपरोक्त प्रकार का संवाद सुकराती पद्धति का वास्तव में विकृत रूप या उसका क्षुद्रीकरण है।

बच्चों के प्रश्नों की शैली भी अध्यापिका की शैली से भिन्न नहीं थी।

छात्र : अब हम क्या लिखें ?
छात्र (अपनी अभ्यास पुस्तिका दिखाकर) : मादाम एल्विरा, इस तरह ?
छात्र : कितनी लाइनें ?
छात्र : एक लाइन छोड़कर लिखें ?

अपने किसी भी प्रेक्षण के ब्योरों में इनसे भिन्न छात्रों के कोई प्रश्न तलाश पाना हमारे लिए मुश्किल था। ये प्रश्न लगभग हमेशा ही दिए गए कार्यों या कक्षा में व्यवहार के मानदंडों के औपचारिक पक्ष के बारे में होते थे। ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया गया जो पाठ के मुख्य विषयों से या अधिगम की गतिविधियों से संबंधित हो। इस तरह हम न तो अध्यापिकाओं और न ही छात्रों की प्रश्न की शैली को अधिगम-प्रक्रिया में सार्थक भागीदारी का सूचक मान सकते हैं। अध्यापिकाएं शायद ही कभी 'क्यों' वाले प्रश्न पूछती थीं और छात्र भी कभी अपने पाठ की विषय वस्तु के बारे में नहीं पूछते थे।[2]

छात्रों के उत्तर के प्रति अध्यापिकाओं का व्यवहार कैसा था ? कुल मिलाकर अध्यापिकाएं उन शब्दों को स्वीकार करती थीं जिन्हें वे उपयुक्त मानती थीं। हम जोर देकर कह रहे हैं कि स्वीकार सिर्फ शब्दों के लिए था; संप्रेषित होनेवाले अवधारणात्मक अर्थ पर मुश्किल से ही कभी ध्यान दिया जाता था। इसके अलावा अध्यापिकाएं शायद ही कभी रुककर यह बतलातीं या स्पष्ट करती थीं कि दूसरे शब्द स्वीकार्य क्यों नहीं थे।

अध्यापिका : मेरे पास पांच क्या हैं ?
छात्र (एक साथ) : तत्व।
अध्यापिका : नहीं। यह क्या है ?
छात्र (एक साथ) : पेन।
अध्यापिका : पेन ! तो हम पेन से करते क्या हैं ?
छात्र : इनसे हम लिखते हैं।

अध्यापिका : लिखते हैं, ठीक ! तो समुच्चयों के बारे में हमारे पास क्या है ?
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय।
अध्यापिका : समूह किसका ?
छात्र : तत्वों का।
छात्र : पेनों का।
अध्यापिका : समूह किसका ?
छात्र (एक साथ) : अनेक तत्वों का।
अध्यापिका : बहुत ठीक !

इस प्रश्नक्रम में इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं किया गया है कि एक संदर्भ में शब्द 'पेन' तो दूसरे संदर्भ में शब्द 'तत्व' क्यों स्वीकार्य है। इस प्रकार के प्रश्नक्रम में मनन-वृत्ति के संकेत के लिए कोई गुंजाइश है ही नहीं। उत्तर अनुमान-प्रक्रिया का एक अंग है जिसमें बच्चा रत हो जाता है जब कभी सवाल उससे पूछा जाता है।

कक्षा में हमें एक भिन्न प्रकार का संवाद भी देखने को मिला। यह उनके काम के औपचारिक पक्षों के बारे में अलग-अलग करके या सामूहिक रूप से छात्रों को दिए गए निर्देशों के बारे में था।

अध्यापिका : जिन कापियों में कोई हाशिया नहीं, उनमें हाशिया खींच लेना। हाशिया खींचने के लिए कितने छोटेवाले वर्ग छोड़े जाएंगे ?
छात्र (एक साथ) : चार।
अध्यापिका : बड़े-बड़े अक्षर लिखो। बड़े-बड़े अक्षर इसलिए जरूरी हैं कि यह शीर्षक है और यह मत भूलो कि शीर्षक के अक्षर बड़े होने चाहिए ताकि शीर्षक और बाकी लिखाई में अंतर साफ पता चले।
अध्यापिका (एक लड़के से) : ये अक्षर नीचे की ओर बढ़ाए गए हैं और ये ऊपर की ओर बढ़े हुए हैं। इनको इसी रूप में लिखा जाएगा क्योंकि सारे अक्षर एक जैसे नहीं होते। अक्षर दिखाई पड़ रहे हैं ?
छात्र : हां, मादाम !
अध्यापिका : एक शब्द के अक्षर पास-पास लिखने चाहिए। देखते नहीं कि ये श्यामपट पर कैसे लिखे हुए हैं ? जो कुछ श्यामपट पर लिखा है उसे उतार भी नहीं सकते ? अब दूसरी पंक्ति को छोड़कर वहां नीचे एक पंक्ति खींचो ताकि शीर्षक बहुत सुंदर दिखाई पड़े।
अध्यापिका : तुम सबने पंक्तियां गिन लीं कि नहीं ?
छात्र (एक साथ) : हां, मादाम !
अध्यापिका : अब सब नीली स्याही से लिखो। सुंदर, धीरे-धीरे, जल्दबाजी किए बिना। अक्षर लिख रहे हो, कोई टेढ़ी लकीर नहीं खींच रहे !

सारांश

अभी तक हमने पाठ की सरंचना और भागीदारी की विधियों की दृष्टि से प्रेक्षित कक्षाओं के वर्णन का प्रयास किया है। तात्पर्य यह है कि, जैसा हमने शुरू में कहा था, हमने पाठक के सामने कक्षा के यथार्थ को लाने का प्रयास किया है। फिर भी वर्णित घटनाओं के महत्व को समझाना अनिवार्य है। जो कुछ हमने देखा उसकी व्याख्या की इस आवश्यकता के अधीन हमने विद्यालय शिक्षा, अध्यापन, तथा अध्यापन-अधिगम की विषयवस्तु संबंधी प्रश्नों से अपने प्रेक्षण का संबंध जोड़ना आवश्यक समझा।

कक्षा की घटनाएं वास्तव में विद्यालय की गतिविधियों में सबसे अहम होती हैं। विद्यालय की परंपरागत भूमिका कक्षा में ही निभाई जाती है, अर्थात ज्ञान और स्वीकृत सामाजिक आचारों का संप्रेषण यहीं होता है। हम अपने प्रेक्षण के बल पर कामचलाऊ तौर पर कह सकते हैं कि विद्यालय की गतिविधियां ज्ञान के संप्रेषण पर केंद्रित होती हैं। अध्यापकों का सरोकार महज उन चीजों को पढ़ाना होता है जिनको वे अपने बच्चों के लिए उपयोगी और मूल्यवान समझते हैं। इसके लिए अध्यापक वे स्थितियां पैदा करते हैं जो कुल मिलाकर उनके छात्रावस्था के अनुभवों का ही पुनरुत्पादन करती हैं। दूसरे शब्दों में अध्यापक बच्चों के एक समूह की स्मृतियों को परखकर ऐसे शब्द ढूंढ़कर निकालता है जो उनको 'भविष्य के उत्तम नागरिक' बनाने के लिए उपयुक्त समझे जाते हैं। इस प्रकार यह कहना उचित ही है कि कोलंबियाई विद्यालयों के अध्यापक शिक्षाशास्त्रीय परंपरा के कुछ सारवान विषयवस्तु को जरूर लागू करते हैं, लेकिन अचेत रूप से, अपनी प्रशिक्षण-पाठ्यचर्या के माध्यम से उनके बारे में सचमुच जाने बिना लागू करते हैं।

लोंबार्दो-रेदिस (1933) का कथन था कि कोई पाठ हमारे द्वारा प्रस्तुत वस्तुओं पर नहीं बल्कि बच्चे के मन में पहले से मौजूद धारणाओं पर आधारित होता है और बच्चा उन्हें देखते हुए उन्हें रूपांतरित भी करता है (एक आंतरिक समस्या के हल के लिए एक अवधारणा को स्वीकार करना, सटीक बनाना और उसमें गहराई लाना अर्थात उसे रूपांतरित भी करना पड़ता है)। अब अगर हम इस कथन में समन्वित शिक्षाशास्त्रीय परंपरा के गहनतर अर्थ पर विचार करें तो हमें कहना होगा कि अध्यापकों के प्रयास मात्र औपचारिक होते हैं। लगता है कि उनका एकमात्र सरोकार कुछ दिखाना, प्रश्न पूछना, उत्तर देना और इसी ढर्रे को अनंत बार दोहराना होता है। तथा अध्यापक को इससे कोई खास सरोकार नहीं होता कि वे क्या पढ़ा रहे हैं।

अध्यापन के इस ढर्रे की लाक्षणिक संरचना 'व्यवहारगत उद्देश्यों' वाले अनुदेश के उस प्रतिरूप के प्रभाव को दर्शाती है जिन्हें अध्यापक अपने प्रशिक्षण तथा सरकारी पाठ्यचर्या की रूपरेखा के कारण सचेत या अचेत रूप से लागू करते हैं। यह प्रतिरूप सूचनाओं के सोपानिक संगठन पर जोर देता है और उसे ऐसे पूर्वस्थापित उद्देश्यों से जोड़ता है जो गोचर और परिमाणीकरण योग्य व्यवहारों में व्यक्त होते हैं जिनसे यह जानने की उम्मीद की जाती

है कि जो कुछ पढ़ाया गया है उसे छात्रों ने सीखा है या नहीं। उद्दीपन-प्रत्युत्तर प्रतिमान इस प्रतिरूप की जान है क्योंकि इसमें सूचनाओं के संप्रेषण के लिए उपयुक्त कार्यपद्धति पर जोर दिया जाता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार कक्षा की गतिविधियों के भौतिक खांचे के रूप में विद्यालय, छात्रों और अध्यापकों से समय-कार्य अनुपात में सुधार की मांग करके सूचना-संप्रेषण की प्रक्रिया का संचालन करने को अपना उद्देश्य मानता है।

व्याख्या

जो कुछ हमने देखा उसके पूरे-पूरे अर्थ को हम अभी तक पाठक तक नहीं पहुंचा सके हैं और इसलिए अभी तक शैक्षिक असफलता के गहरे पैठे कारणों की खोज नहीं कर सके हैं : इस आशंका के चलते हमने व्याख्या के एक और चरण को अपनाया (इसके सैद्धांतिक औचित्य के लिए परिशिष्ट एक देखें)।

इसके लिए हमने प्रेक्षण के ब्योरों को दोबारा पढ़ा और उन आवर्ती घटनाओं की पहचान की जो अध्यापन-प्रक्रिया की समझ के लिए विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत हुईं। इनको हमने 'प्रमुख घटनाएं' कहा है। फिर और आगे बढ़कर हमने इन प्रमुख घटनाओं को उनकी प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत किया। इन समूहों को हमने 'सार्थक क्षण' (सिग्निफिकेंट मोमेंट्स) कहा है, अर्थात ऐसी प्रक्रियाएं जो कक्षा के सामाजिक संबंधों के प्रतिमान की विशेषता हैं (परिशिष्ट एक देखें)।

अध्यापन की प्रक्रियाओं से जुड़े सबसे महत्वपूर्ण सार्थक क्षण वे थे जिनको हमने व्यंग्योक्ति (आयरनी), बारंबारी वधिरता (इंटरमिटेंट डेफनेस), पुनरावृत्तिक नामवाद (रिपिटिटीव नामिनलिज्म), अध्यापक के प्रश्नों के मनमाने प्रत्युत्तर, तथा अनुशासन की पद्धति रूपी व्यायाम (जिम्नास्टिक्स) कहा है। आगे के पृष्ठों में इनमें से हर समूह के अर्थ स्पष्ट करनेवाले उद्धरण दिए जा रहे हैं।

व्यंग्योक्ति और बारंबारी वधिरता

पहली कक्षा

छात्र : उन्हें खाने के लिए।
अध्यापिका (व्यंग्योक्ति के स्वर में) : वह खाने की चीज है ? तुम इन्हें खाते हो ? हां तो शायद इसीलिए तुम इतने नाटे हो ?
(दूसरे बच्चे हंस पड़ते हैं।)

तीसरी कक्षा

अध्यापिका (व्यंग्योक्ति के स्वर में) : बहुत बढ़िया ! मैं तुम्हें गृहकार्य न करके लाने पर बधाई देती हूं।

पांचवीं कक्षा

अध्यापिका (खांस रहे एक छात्र से) : आज हरेक को खांसी का दौरा पड़ा है।
अध्यापिका : चपटी ! क्या कहने ! क्या कुछ ऐसी हड्डियां भी होती हैं जो चपटी न हों ?
छात्र : टेढ़ी हड्डियां !
(अध्यापिका उत्तर अनसुना कर देती है।)
अध्यापिका : वह क्या ?
छात्र (एक साथ) : जंभिका !
अध्यापिका : एक क्या ?
छात्र (एक साथ) : नासिका...
(अध्यापिका उत्तर को अनसुना करती है।)

इन सभी मिसालों का साझा तत्व यह है कि अध्यापिका के व्यंग्यमय स्वर या कटाक्ष पर बच्चे खामोश हो जाते थे और उनके चेहरों पर भय छा जाता था। हमको यह लगा कि ये स्थितियां बच्चों को अधीन बनाने की कोशिश के प्रमाण हैं। अकसर ज्ञान के अभाव में, ज्ञान का दिखावा करने की आवश्यकता के ही कारण अध्यापकगण इस प्रकार की प्रतीकात्मक हिंसा का रवैया अपनाते थे। जिस छात्रा ने 'उन्हें खाने के लिए' कहकर अध्यापिका के प्रश्न का उत्तर दिया था, वह अपने हाथों की बात कर रही थी। वैसे तो उसकी अध्यापिका ने उंगलियों के उपयोग के बारे में ढेर सारे गलत जवाबों को सहा था, मगर इस बार उसने छात्र के उत्तर को ठुकराने के लिए व्यंग्योक्ति का सहरा लिया। मगर कक्षा के सामने कहा हुआ उसका अगला वाक्य खुद ही व्याकरण की दृष्टि से गलत था : 'अब उंगलियों के बारे में वह छोटी सी कहानी चलो।' इस तरह इस अध्यापिका ने इतनी बौद्धिक सामर्थ्य भी नहीं दिखाई जो उस उत्तर विशेष के ठुकराए जाने को उचित ठहरा सके।

हमने छात्रों के उत्तर की अनदेखी होते अकसर देखा। ऐसा बहुत भिन्न-भिन्न संदर्भों में भी हुआ : गलत जवाब पर ध्यान नहीं देना, एक छात्र की पहचान में हुई गलती के प्रति लापरवाही वरतना, या दिए गए कार्य के औपचारिक पहलुओं से संबंधित प्रश्नों के उत्तर न देना। हमारी राय में यह रवैया छात्रों को अधीन बनाने की एक और मनमानी पद्धति का सूचक था। अध्यापिका तभी सुनती या जवाब देती थी जब उसका मन करता था। जाहिर है कि बहुत से बच्चे इसे ठुकराए जाने का एक तरीका समझते थे और ध्यान दिए जाने का इच्छुक बच्चा तब ऐसे ही प्रत्युत्तर देने लगता था जो अध्यापिका को पसंद हों।

पुनरावृत्तिक नामवाद

अध्यापिका : इसे कितने भागों में बांटा गया ?

छात्र : चार।
अध्यापिका : चार !

शब्दों की पुनरावृत्ति आम बात थी। इस अध्याय में पहले दिए गए उद्धरणों से यह एकदम स्पष्ट है। इसके अलावा जो कुछ दोहराया जाता था उसके अर्थ को स्पष्ट करने की मंशा को अपने क्षेत्रकार्य के ब्योरों में कहीं देख पाना हमारे लिए मुश्किल साबित हुआ। हम लक्ष्य को स्मृति में बिठाने की जरूरत से इनकार नहीं करते। मसलन, हड्डियों के नामों को तो याद ही करना होता है। लेकिन स्मृति के शैक्षिक उपयोग में कल्पनाशीलता और रचनाशीलता से उसके संबंध भी शामिल होने चाहिए क्योंकि ये ही चीजें सांस्कृतिक रूपांतरण की बुनियाद हैं। इस तरह देखें तो स्मृति अर्थों के अभ्यंतरीकरण की क्षमता का सहारा लेती है और तभी वह ज्ञान के विकास में सहायक होती है। हमने जिस व्यवहार के दर्शन किए उनमें निहित स्मृति की धारणा पुनरोक्ति पर आधारित थी जिसमें अर्थ आंतरिक रूप से रचे नहीं गए थे, बाहर से आरोपित किए जाते थे। शब्दों का निरर्थक पुनरुत्पादन इसका एकमात्र उद्देश्य था। ऊपर के उदाहरण में शब्द 'चार' की पुनरोक्ति से बच्चे को भिन्न की धारणा समझने में संभवतः कोई मदद नहीं मिली जबकि यही उसका मकसद था। मगर बाद में अध्यापिका ने जब श्यामपट पर बांटी जानेवाली वस्तु की तस्वीर खींची तो संभवतः बच्चे ने उसे समझा (पयागे और इनहेल्डर 1967 देखें)।

मनमाने प्रत्युत्तर

पहली कक्षा

अध्यापिका : और अगर मैं कहूं कि इस कक्षा के सभी बच्चे एक समुच्चय हैं, तो उसके तत्व कौन-कौन से हुए ?
छात्रगण (एक साथ, पहले के एक उदाहरण का हवाला देते हुए) : सारे सेब।

तीसरी कक्षा

अध्यापिका : कल मैंने तुम्हें संयम के बारे में बताया था।
छात्र : संयम का मतलब है कि आदमी काफी खा लेता है।

पांचवीं कक्षा

अध्यापिका : और क्या ? आओ, देखते हैं, कौन सी बातें हैं जो नाक का निर्माण करती है ? फिर कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम्हें जुकाम लग जाता है और जब तुम रात को सोने जाते हो तो सो नहीं पाते क्योंकि वे बंद होती हैं...और तुम बेसुरे ढंग से बातें करते हो। इन दोनों को क्या कहते हैं ? ये तुम (कक्षा के पिछले भाग की ओर इशारा करके) तुम... सुन रहे हो ? घर पर, जब उनमें जलन होती है, तो...।

छात्रगण : नाक बहती है।
अध्यापिका : नहीं, वह तो तुम तब करते हो जब तुम उस जलन को दूर करना चाहते हो। लेकिन जब तुमको जुकाम होता है और तुम सोने जाते हो तो सो नहीं पाते कि तुम्हारी...बंद हैं ? क्या ? देखें ?
छात्र : सांसनलियां।

लगता है ये उत्तर बच्चों की कुछ कहने की, कक्षा में जो कुछ हो रहा है उसमें भाग लेने की जरूरत व्यक्त कर रहे हों। बच्चे जब चीखकर जवाब देते हैं तो सोचते नहीं, बस यह बताना चाहते हैं कि 'हां,' वे भी 'जानते' हैं; जो कुछ हो रहा है या जिस चीज पर बात की जा रही है, उसे वे भी 'समझते' हैं। फिर भी, ये उत्तर क्या सचमुच मनमाने हैं, इस पर संदेह किया जा सकता है। वास्तव में अधिकांश उत्तर बच्चों की तर्कबुद्धि के, जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में, उनकी समझ के अनुसार होते हैं। इन उदाहरणों में बहती नाक के हवाले का संबंध जुकाम होने और नींद न आने से संबंधित एक प्रश्न को लेकर उनकी व्याख्या से है। तत्वों वाले प्रश्न में जो बच्चा उत्तर देता है 'सारे सेब', वह ऐसा उत्तर इसलिए देता है कि प्रश्न का संदर्भ एकाएक बदल चुका है और इस बदलाव के बारे में किसी महत्वपूर्ण सुराग का अभाव है। ऐसे उदाहरण भी हैं जिनमें किसी प्रश्न का मनमानापन मनमाने उत्तर का कारण बनता है।

इन स्थितियों पर हम और भी व्यापक दृष्टि से विचार करें तो कह सकते हैं कि वास्तव में यहां दो भाषा-सूत्र कार्यरत हैं : एक वह जो सामान्य बुद्धि पर (बल्कि लोकपरंपरा पर भी) आधारित है और दूसरा जो विषय की अंतर्वस्तुओं पर आधारित है। ये सूत्र लगातार गड्डमड्ड होते रहते हैं। इस तरह अध्यापक अपने दैनिक अनुभव के सामन्य बुद्धि वाले सूत्र के अनुसार प्रश्न करते हैं जबकि छात्रों से आशा करते हैं कि वे वैज्ञानिक सूत्र के अनुसार उत्तर दें।

व्यायाम अनुशासन पद्धति के रूप में

पहली कक्षा

(कक्षा में शोर मचा हुआ है।)
अध्यापिका : पेंसिल नीचे रखो ! हाथ ऊपर उठाओ ! ऐसे (अध्यापिका कक्षा की ओर मुंह करके हाथ ऊपर उठाती है)। खड़े हो जाओ !
(छात्र हाथ उठाते हुए उंगलियां नचाते हैं.)
छात्र : मेरे हाथ थके हुए नहीं हैं।
अध्यापिका : मैंने कहा कि पेंसिल नीचे रखकर खड़े हो जाओ और मेरी देखादेखी हरकत करो !

(अध्यापिका जो कुछ करती है, बच्चे भी वैसा ही करते हैं।)
अध्यापिका : ताली बजाओ और उंगलियां जो आवाज करती हैं उसे सुनो ! पहले दाहिना हाथ, फिर बायां। बैठो, उठो। हाथ ऊपर। बायां हाथ नीचे करो और फिर दाहिने हाथ से घूम-घूम कर गोला बनाओ। अब उलटी तरफ से। कोई शोर नहीं, दिएगो ! अब तुम्हारे हाथ रुक गए हैं और तुम सब भी। अब फिर काम शुरू करो !
(बच्चे बैठकर फिर अपना काम शुरू करते हैं.)

तीसरी कक्षा

(लड़के और लड़कियां अलग-अलग कतारें बनाकर मनबहलाव के लिए दरवाजे की ओर बढ़ते हैं। अध्यापिका उनके सामने खड़ी है।)
अध्यापिका : बांहों का अभ्यास, दस तक।
(अध्यापिका गिनती गिन रही है और बच्चे शरीर के विभिन्न अंगों जैसे सर, कंधों आदि को छूते हैं।)
अध्यापिका : फिर से। सही समय पर। कुछ बच्चे अभी भी ध्यान नहीं दे रहे हैं।
(बच्चे अभ्यास को दोहराते हैं।)
अध्यापिका : अब सब पूरी खामोशी से वापस जाएं। मनोरंजन के दौरान कैसे व्यवहार किया जाए, तुम सब जानते हो। हाथ पीछे मोड़कर। लड़कियों, पीछे-पीछे आओ।

बच्चे जब खेलकर लौटे, अपना दिन शुरू किया या डेस्क कार्य करते रहे तो हमने अकसर ऐसी स्थितियां देखीं। ये आकस्मिक, अपूर्वानुमान व्यायाम बच्चों की गतिविधियों में विघ्न डालते हैं और इस व्यायाम को परंपरागत मकसदवाला अर्थात छात्रों के स्वस्थ शारीरिक विकास हेतु नहीं माना जा सकता। इसके अलावा अगर हम यह सोचें कि समय-सारणी में व्यायाम का एक विशेष समय निर्धारित होता है तो उनका अतार्किक चरित्र स्पष्ट हो जाता है। ये व्यायाम वास्तव में हमारे सामने कक्षा में अनुशासन और व्यवस्था के बिंबों के रूप में आते हैं और अध्यापिका की सत्ता के वाहक दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष

'अध्यापन-शैलियों' के घटक तत्वों को अर्थ प्रदान करने के लिए पहले हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि ये शिक्षाशास्त्रीय परंपरा के सारवान अंतर्वस्तु में नहीं आते। इस कारण हम ऐसी व्याख्या तलाश करने पर मजबूर हो जाते हैं जो कोलंबियाई विद्यालयों में अध्यापक-छात्र संबंधों की समझ में वृद्धि करे। यह व्याख्या निम्न प्रश्न पर आधारित है : ये तत्व सामने कैसे आते हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर का पहला प्रयास इस मान्यता पर आधारित है कि कोलंबियाई अध्यापक की छवि अपने-आपमें अंतर्विरोधपूर्ण है। इस अंतर्विरोध के तत्व एक ओर 'ज्ञान का साक्षात

आगार नजर आने' से लेकर दूसरी ओर 'अध्यापक की भूमिका के प्रति नगण्य सामाजिक समर्थन' तक फैले हुए हैं। इस अंतर्विरोधपूर्ण छवि की सीमाओं में कार्य करने के कारण एक अध्यापक की रोजमर्रा की गतिविधि ऐसे व्यवहारगत मानदंडों की तलाश तक सीमित होती है जो इस अंतर्विरोध के पहले तत्व की पुष्टि करे। इस तरह व्यंग्योक्ति अध्यापक के संवाद के बाद आ सकने वाली बातों का दमन करके उसकी सत्ता जताने की एक विधि बन जाती है।

लेकिन हमने जिस चीज को 'बारंबारी वधिरता' कहा है उसे एक अन्य दशा से भी जोड़ा जा सकता है। इसकी एक संभावित व्याख्या यह हो सकती है कि अध्यापकों के लिए 30-40 बच्चों द्वारा एक साथ और अलग-अलग प्रकार के उत्तर दिए जाने पर सबको सुनना कठिन हो जाता है। अगर अध्यापक अलग-अलग छात्रों से उत्तर सुनने पर जोर देते हैं तो उसका एक कारण यह भी है। फिर ऐसा भी लगता है कि अध्यापक पाठ का जो विषय तय कर लेते हैं उसी पर कायम रहने की मजबूरी होती है और इसलिए शायद अवचेतन रूप से वे उन्हीं प्रत्युत्तरों या संभावित प्रश्नों को चुनते हैं जो उनके संवाद में विघ्न न डालें। अध्यापक बच्चों के मनमाने उत्तरों को कैसे निबटाते हैं, उनकी बारंबारी वधिरता का संबंध इससे भी होता है। अध्यापक गलत उत्तरों को एक दिशा देने में असमर्थ लगते हैं और इसलिए बच्चों की गलतियों पर मनन को बढ़ावा नहीं देते। अध्यापक अपने विषय के बारे में तथा ज्ञान के संप्रेषण की संवाहक शिक्षाशास्त्रीय तकनीक के बारे में जिस सतही ज्ञान से संपन्न लगते हैं, यह अंशतः उसी का सूचक है। इस तरह अध्यापक परिणाम संबंधी सूचनाओं के वाहक मात्र बन जाते हैं और यह नहीं जानते हैं कि ये परिणाम सामने कैसे आए। 'पुनरोक्तिक नामवाद' के उपयोग का यही कारण है। यह नामवाद वस्तुओं और शब्दों के संबंध को उपेक्षित करता है और इस बात को भुला देता है कि शब्द 'अपने-आपमें ज्ञान या भावनाओं के वाहक नहीं होते (और यह कि) वस्तुएं अपने-आपमें संबंधों की समझ या उनमें अंतरंगता पैदा नहीं करतीं। शिक्षा के संपन्न होने के लिए आवश्यक है कि अध्यापन-कर्म में शब्दों और वस्तुओं, दोनों का समन्वय हो' (स्टोकर 1964 देखें)।

शब्दों और वस्तुओं के संबंध का अज्ञान अध्यापकों द्वारा प्रयुक्त मूल्यांकन-पद्धतियों में भी निहित होता है। ये पद्धतियां इस बात पर केंद्रित होती हैं कि बच्चा कितनी बार किसी शब्द को दोहरा सकता है। फिर इन शब्दों को भी बच्चे 'अनुशासन,' 'व्यवस्था' और 'एकाग्रता' के वातावरण में सीखते हैं। इसके लिए अध्यापक अंग संचालन की शक्ति का उपयोग करता है जहां महत्व व्यायाम के निहित उद्देश्य का नहीं बल्कि उसकी अनुशासक-क्षमता का होता है। अध्यापन की इस शैली को हमने हर कक्षा में देखा है और यहां जो कुछ पढ़ाना है उसके बारे में अध्यापकों की समझ के संकेत देती है।

कर्शेंस्टाइनर ने परंपरागत शिक्षाशास्त्र की प्रस्थापनाओं को इस तरह व्यक्त किया है : 'अध्यापन सांस्कृतिक अर्थ-संरचनाओं के सुसंगत और सुव्यवस्थित परिचय को कहते हैं' (स्टोकर 1964 देखें)। अब अगर हम इस पर विचार करें तो प्रेक्षित कक्षाओं में सही

अर्थों में कोई अध्यापन-कार्य नहीं हो रहा था।

विद्यालय के प्रमुख प्रकार्यों में एक है छात्रों को ऐसे सुसंस्कृत मानव अर्थात प्रजा बनने की प्रेरणा देना जो 'खुद को जानो' के सुकराती उद्देश्य को पा चुके हों और इसकी जड़ें ऐतिहासिक रूप से उनकी अपनी वैयक्तिकता में तथा सामाजिक प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी में (ग्राम्शी 1970) निहित होती हैं। इस उद्देश्य को पाने के लिए आवश्यक है कि अध्यापकगण अध्यापन-कर्म को व्यापक और सुसंगत क्षेत्रों के ऐसे ज्ञान पर आधारित समझें जिसे उनके परिणामों से नहीं बल्कि संरचना की विधियों के परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया जाता है (स्टोकर 1964 देखें)। इसके बिना विद्यालय अपने रचनाकारी उद्देश्य और सामाजिक अवलंब, दोनों से वंचित हो जाता है। विद्यालय का रचनाकारी उद्देश्य इस बात को स्वीकार करता है कि किसी भी प्रकार का ज्ञान संप्रेषित ज्ञान के अंतर्तत्वों का समूह मात्र नहीं होता बल्कि इसमें ज्ञाता को इस प्रकार से बदलने की शक्ति भी होती है कि उसका मानव-गुण घट या बढ़ जाए। सामाजिक अवलंब से तात्पर्य सामान्य बुद्धि पर आधारित उस ज्ञान से है जो बच्चे के पास पहले से होता है तथा वह विधि भी है जिससे इसे वैध वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति से जोड़ा जा सकता है। यहां हम यह भी कह दें कि यह वैज्ञानिक ज्ञान समाज की जरूरतों के अनुसार ऐतिहासिक रूप से सर्जित होता है और अपनी बारी में यह ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है जो समाज को प्रभावित करें।

इसलिए अगर कोई अध्यापक-अध्यापिका एक पाठ तैयार और विकसित करे तो उसे नीचे दी गई बातों पर स्पष्ट विचार करना चाहिए :

- बच्चों की सामान्य बुद्धि पर आधारित ज्ञान;
- यथार्थ के सांस्कृतिक अधिग्रहण की वे विधियां जो बच्चों को पहले से प्राप्त हैं;
- बच्चों की ठोस स्थिति;
- बुनियादी शिक्षाशास्त्रीय संरचना (शैक्षिक तत्व);
- विषयों के बुनियादी अंतःतत्व; और
- ऐसे अंतःतत्वों की रचनात्मक महत्ता।

ज्ञान प्राप्त करने की विधि के बारे में दिग्भ्रमित अध्यापक के लिए बच्चों के सामान्य बुद्धि पर आधारित ज्ञान को संभालना मुश्किल होता है। इस तरह का दिग्भ्रम अध्यापक को 'अध्यापन को ठोस स्थितियों से' जोड़ने से भी वंचित करता है जबकि यही शिक्षाशास्त्र की मांग है। 'ठोस स्थितियों' का अर्थ सामग्री या शिक्षा की सहायक सामग्री नहीं समझना चाहिए जैसा कि अकसर समझा जाता है : ठोस स्थितियों का संबंध यथार्थ संबंधी उस ज्ञान से है जो बच्चे के पास पहले से है। कोई अध्यापक अपनी शैक्षिक गतिविधियों को सामाजिक संदर्भ प्रदान करने में तभी सफल होगा, जब वह ठोस स्थिति के बारे में बच्चों के ज्ञान को उनके ज्ञान के अधिग्रहण के विकासमूलक चरणों से जोड़ सके। इसके लिए जरूरी है कि अध्यापक पढ़ाए जा रहे विषयों की अंतर्वस्तु के बारे में प्रभावी ज्ञान की वृद्धि करे।

स्वयं और समाज के प्रति ऐतिहासिक रूप से चेतन एक व्यक्ति के विकास के लिए विषय के ज्ञान की जो रचनात्मक महत्ता होती है, उसे एक अध्यापक केवल इसी ढंग से वास्तव में समझ सकता है।

इस तरह शैक्षिक असफलता का अर्थ केवल विद्यालय-शिक्षा के लिए निश्चित वर्षों की पूर्ति या उतने वर्षों के बाद भी विद्यालय जाना मानना सही नहीं है। अगर बच्चे ने मात्र कुछ दोहराना और सफलता के साथ रट्टा मारने को ही ज्ञान समझ लेना सीखा है तो जहां सफलता की बात स्वीकार की गई हो, वहां भी एक और प्रकार की असफलता मौजूद मानी जा सकती है। विद्यालय प्रक्रिया से बच्चे के गुजरने संबंधी इस दृष्टिकोण को चुनौती देते हैं और इसलिए सफलता और असफलता के उन प्रकारों में संदेह व्यक्त करते हैं जो कोलंबिया के प्राथमिक विद्यालयों में उपजती हैं।

टिप्पणियां

1. इस विवरण की 'प्रदाय के स्वरूपों' के रूप में एक अवधारणा का रूप दिया गया है. इसे दे तेजानो आदि (1983) के अध्ययन की विस्तृत रिपोर्ट में विकसित किया गया है. इसका संबंध एक नृजातिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रेक्षित अध्यापक-छात्र अंतःक्रियाओं के कुछ आवर्ती प्रतिमानों से है.
2. कुल मिलाकर विस्तृत ब्योरों के 60 सेटों का हमने विश्लेषण किया. इनमें से किसी में भी छात्रों ने 'क्यों' का सवाल नहीं किया था (दे तेजानो आदि 1983 देखें.).
3. प्रकाशन के लिए इस अवधारणा को और आगे विकसित किया जा रहा है.

संदर्भ

ग्राम्शी, ए (1970) : एन बुस्क्वेदा देल प्रिंसिपियो एजुकेतिवो, *क्वादेर्नो दे ला कार्सेल (प्रिजन नोट बुक्स)*, युवान पाब्लो संस्करण, मेक्सिको सिटी, मेक्सिको में संकलित.

दे तेजानो, ए; मुनोज, जी; और रोमेरो, ई (1983) : *एस्क्यूला दे कम्युनिदाद*. उन प्राब्लेमा दे सेंतिदो, राष्ट्रीय शिक्षाशास्त्र विश्वविद्यालय, अनुसंधान केंद्र, बगोता, कोलंबिया.

पयागे, जे और इनहेल्डर, बी (1967) : जेनीज देस स्त्रक्चरेज लाजिक्वेस एलिमेंतायर्स, देलाशो एत नीस्तले एस.ए. संस्करण, नायशातेल, फ्रांस.

लोंबार्दो-रेदिस, जी (1833) : *लेक्सि योने दे दिदाक्तिका*, एडिटोरियल लेबर, बर्सिलोना, स्पेन.

स्टोकर, के (1964) : *दिदाक्तिका जनरल*, कापेलुस्ज एस ए, एडिटोरियल, ब्यूनस आयर्स, अर्जेंटीना.

5. वेनेजुएला के विद्यालयों में अध्यापन

इरमा हर्नांडीज़

इस अध्याय में हमने विद्यालय के विभिन्न प्रकार के ढांचों की विशेषताओं तथा उनके अंदर जारी शिक्षाप्रक्रिया की विशिष्ट शैली के संबंधों की छानबीन की है। वेनेजुएला वाले अध्ययन में शामिल विद्यालय एक प्रकार से वहां के शैक्षिक विकास के विभिन्न चरणों की उपज हैं तथा पिछले 50 वर्षों में एक के बाद एक आनेवाली परस्पर विरोधी सरकारों के शैक्षिक दर्शन को प्रतिबिंबित करते हैं।

राजधानी कराकास के उपनगरों में हमने तीन प्राथमिक विद्यालयों का अध्ययन किया : नगरीय बुनियादी विद्यालय, रचनात्मक बुनियादी विद्यालय, और नगरीय परंपरागत विद्यालय। अरागुआ राज्य में तुमेंरो के आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों में हमने ग्रामीण परंपरागत और ग्रामीण बुनियादी, दो प्राथमिक विद्यालयों का अध्ययन किया। हमारा प्रेक्षण प्रत्येक विद्यालय की पहली और चौथी कक्षाओं तक सीमित रहा।

इन विद्यालयों में जो प्रमुख अंतर हैं उनका संबंध विद्यालयों के ढांचे से तथा 1970 के बाद के आंरभिक वर्षों में वेनेजुएला में लागू की गई सुधार-प्रणाली के सिलसिले में उनकी प्रगति से है। इस तरह हमने जिन विद्यालयों को 'बुनियादी' (बेसिक) कहा है, वे वही हैं जिनको अंतिम चरण में नौ-वर्षीय प्राथमिक विद्यालय बन जाना है, जिनमें 6 से 15 वर्ष तक के बच्चे शिक्षा पाएंगे। सारे लातीनी अमरीकी देशों में शिक्षा का बुनियादी चरण यही है। वेनेजुएला के शिक्षा मंत्रालय के उपनियमों में की गई परिभाषा के अनुसार बुनियादी विद्यालय वे संस्थाएं हैं जहां :

> सभी नागरिकों को न्यूनतम अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। इसका उद्देश्य है व्यक्तित्व के सुचारु विकास में योगदान देना, उन्हें अपनी ऐतिहासिक धरोहर का महत्व समझने और समुदाय में ऐसे उपायों से भाग लेने के लिए तैयार करना जो कारगर कामकाज और भावी शिक्षा की सफल प्राप्ति संभव बनाएं।

बुनियादी विद्यालयों के तीन चरण हैं। 'साधक' (इंस्ट्रूमेंटल) चरण में पहली से चौथी कक्षाएं शामिल हैं। 'समेकित' (कंसालिडेटेड) चरण पांचवीं से छठी कक्षा तक चलता है तथा 'स्वतंत्र'

चरण में सातवीं से नवीं कक्षाएं आती हैं। हमारा अध्ययन केवल 'साधक' चरण तक सीमित था जहां पाठ्यचर्या साक्षरता और अंकज्ञान तक सीमित होती है। इस प्रकार यहां भी परंपरागत विद्यालयों जैसी ही पाठ्यचर्या चलन में हैं।

अध्ययन में शामिल दो परंपरागत विद्यालय उस समूह में आते हैं जो अभी भी छह वर्षीय संरचना की परंपरा में है। परंपरागत और बुनियादी के बीच इस अंतर के अलावा हमने पाया कि दो बुनियादी विद्यालयों में भी अंतर थे। रचनात्मक बुनियादी विद्यालय राष्ट्रीय प्रयोग का अंग था जिसका मकसद आलोचनात्मक दृष्टि तथा संज्ञानात्मक, भावात्मक और शारीरिक प्रकृति की मुक्त अभिव्यक्ति वाली गतिविधियों को प्रोत्साहित करना है (शिक्षा मंत्रालय 1981 देखें)। वैसे तो ग्रामीण बुनियादी विद्यालय भी बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों का पालन करता है मगर 'सामुदायिक' विद्यालय के रूप में उसका भी अपना एक इतिहास है।[1] हमने जिन विद्यालयों का अध्ययन किया, यह उनमें सबसे पुराने विद्यालयों में एक था और संरचना के अनेक चरणों से गुजर चुका था। आरंभ में, 1946 में यह एक अध्यापक वाला विद्यालय था मगर 1950 तक एक 'एस्क्यूला कंसेत्रादा' बन चुका था जिसमें एक ही क्षेत्र के एक अध्यापक वाली अनेक संस्थाओं को आपस में मिला दिया गया था। 1961 में इसे एक उपयुक्त इमारत मिली और साथ में प्राथमिक विद्यालय का पूरा दर्जा भी मिला। तब यह स्थानीय-क्षेत्रीय विकास से संबंधित व्यावसायिक प्रशिक्षण संबंधी एक प्रयोग के लिए केंद्र बना। इस परियोजना का मकसद ग्रामीण बुनियादी विद्यालय को उत्पादक विद्यालय में रूपांतरित करना भी था। इसमें यह सोचा गया था कि छात्र जो अनाज उगाएंगे, उनका उपयोग अंशतः विद्यालय के रखरखाव और शैक्षिक सामग्रियों पर किया जाएगा और अंशतः स्वयं छात्रों की निजी बचत में डाला जाएगा। इस तरह यह शिक्षा एक औपचारिक कार्यक्रम पर आधारित थी। यह पहले तीन वर्षों में पूरी की जाती थी तथा इसका मकसद छात्रों को साक्षरता और अंक ज्ञान के कौशल तथा कृषि, धातुकर्म, काष्ठकर्म, निर्माण और बिजली संबंधी तथा छात्राओं के सिलसिले में विशेष रूप से विकसित घरेलू कामकाज के क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना था। ऐसी विभिन्न गतिविधियों की योजनाएं बनाने में छात्रों की सक्रिय भागीदारी की बात सोची गई और यह भी सोचा गया कि ये गतिविधियां समुदाय की आवश्कताओं से जुड़ी होंगी। एक सामुदायिक विद्यालय के रूप में इस विद्यालय की विशिष्टता आज भी बनी हुई है, मगर यह बुनियादी शिक्षा की नौवर्षीय संरचना की ओर बढ़ रहा है।

इस अध्याय में हमने इन विद्यालयों और उनकी दिनचर्या का और फिर उनके अध्यापकों, छात्रों और वातावरण का वर्णन किया है। फिर हमने कक्षा में प्रेक्षित अध्यापन-शैलियों की विशेषताओं का वर्णनात्मक और व्याख्यात्मक विवेचन किया है और यह भी बताया है कि ये शैलियां किस प्रकार बच्चों की सफलता और असफलता की धारणाओं के विकास से जुड़ी हुई हो सकती हैं।

विद्यालय और उनकी दिनचर्या

भौतिक दृष्टि से सभी विद्यालय शिक्षा कार्य के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए भवनों में चल रहे थे। फिर भी हर मामले में उनकी विशेषताएं उस दौर को प्रतिबिंबित करती थीं जिसमें उनका निर्माण हुआ था। उस समय की शिक्षाप्रणाली के प्रसार की स्थिति भी इनसे परिलक्षित होती थी। दो तरह के विद्यालयों के भवन यानी ग्रामीण बुनियादी और नगरीय परंपरागत विद्यालयों के भवन तब बने थे जब परिमाणात्मक प्रसार (1940-65) की मुहिम अपने चरम पर नहीं पहुंची थी। उस समय शिक्षाप्रक्रिया के केंद्र में बच्चा था जो प्रचलित शिक्षा दर्शन का मुख्य सरोकार था। क्रमशः एक मंजिली और दो मंजिली इमारतों वाले इन विद्यालयों में खेल के लंबे-चौड़े मैदान थे, पर्याप्त संख्या में कमरे, प्रयोगशाला के स्थान और पुस्तकालय थे। उनके पास अच्छे-भले बरामदे थे। इनमें पर्याप्त रोशनी और ताजी हवा प्राप्त होती थी।

दो अन्य नगरीय विद्यालयों (बुनियादी और रचनात्मक) में अध्यापन और प्रशासन कार्यों के लिए पर्याप्त स्थान मौजूद था मगर दौड़भाग, खेलकूद और ऐसी ही दूसरी गतिविधियों के लिए स्थान या अवकाश बहुत कम था। इनका निर्माण सुधार के काल (1973-75) में हुआ था जब सरकारी नीतियां व्यवस्था के स्वरूप पर तथा हर जरूरतमंद को शैक्षिक सेवाएं प्रदान करने पर जोर देती थीं।

1967 में स्थापित ग्रामीण परंपरागत विद्यालय अपने ही ढंग के पहले से बने एक मामूली से मकान में चल रहा था। अधिकांश ग्रामीण विद्यालयों द्वारा प्रयोग किए जा रहे पुराने देहाती मकानों की जगह इन मकानों को बनाया गया था।

इन विद्यालयों में हमने आम तौर पर जो वातावरण पाया, वह अंशतः उनकी अलग-अलग भौतिक सुविधाओं का फलन था। पर्याप्त जगह वाले विद्यालय में छात्र खेल के मैदान के केंद्र में अधिक आसानी से जमा हो सकते थे। इस कारण वे संवाद में अधिक समर्थ और मिलनसार थे तथा विभिन्न आयुवर्गों से मेलजोल और बातचीत की प्रवृत्ति भी उनमें अधिक थी। इसके विपरीत कम जगह वाले, तर-ऊपर (भीड़वाले) चल रहे विद्यालयों में हमने छोटे-छोटे बंद समूह देखे। यहां हमको मध्यावकाश के दौरान दुर्व्यवहार की मिसालें भी अधिक देखने को मिलीं।

कुल मिलाकर इन विद्यालयों में फर्नीचर (पहली कक्षा के लिए मेज, चौथी के लिए डेस्क), हरे बोर्डों, सामान रखने की जगह, आलमारियों और प्रदर्शन-स्थलों की पर्याप्त व्यवस्था थी। लेकिन सुविधाहीन मुहल्लों में स्थित होने के कारण नगरीय विद्यालयों के निर्माण का स्वरूप इलाके के बाकी मकानों से एक सिरे से भिन्न था। यह तथ्य समुदाय के सदस्यों के बीच चिढ़ का कारण बन गया था।

कक्षाएं

परंपरागत ढर्रे पर चल रहे दो विद्यालयों में पहली और चौथी कक्षा के कमरों की रूपरेखा मुश्किल से ही भिन्न रही होंगी। नगरीय विद्यालय के पहली कक्षा के बच्चे एक आरामदेह कमरे में मेज पर बैठते थे तथा एक 'होम कार्नर', एक 'ट्वायज कार्नर' और एक रंगबिरंगी प्रदर्शन-पट के मजे लेते थे। ग्रामीण बच्चे भी ऐसे कमरे में डेस्कों और मेजों पर बैठते थे जहां चमकदार रंगोंवाली वस्तुएं प्रदर्शित की गई थीं। सभी कमरों में अध्यापक की डेस्क सामने की ओर, कमरे में एक तरफ थी जो इस पर निर्भर था कि दरवाजा कहां पर है। उस तरह अध्यापक को देखा तो जा सकता था मगर उस तरह नहीं जिस तरह डेस्क के लिए एक चबूतरा बने होने पर संभव था।

तीनों बुनियादी विद्यालयों में कक्षाएं परंपरागत विद्यालयों के कमरों से बहुत मिलती-जुलती थीं। इनमें छोटे बच्चों के लिए मेजें और चौथी कक्षा के बच्चों के लिए डेस्कें थीं। अधिकांश कमरों में एक समान आकर्षक प्रदर्शनस्थल और किताबें रखने के ढेरों शेल्फ बने हुए थे।

दैनिक गतिविधियां

अधिकांश इमारतों में (अलग-अलग संख्या वाले) दो अलग-अलग विद्यालय चलते थे। इनमें से एक सुबह की पारी में, 7 से 12 बजे तक चलता था और दूसरा दोपहर की पारी में, 1 से 6 बजे तक। घंटी की आवाज सुनकर नगर वाले विद्यालय के बच्चे दौड़कर लिंग और कक्षा के अनुसार कतारें लगाते थे। कुछ विद्यालयों में वेनेजुएला का राष्ट्रगीत गाए जाने के बाद झंडा लहराया जाता था। ग्रामीण विद्यालय के ढर्रे थोड़े-बहुत अलग थे। मसलन ग्रामीण बुनियादी विद्यालय में बच्चे 7 बजे के आसपास आते थे और धीरे-धीरे एकजुट होकर विभिन्न काम पूरा करते थे । इस तरह कोई 20 मिनट तक चलता था। इनके पूरा होने पर अध्यापक उनको बुलाकर राष्ट्रगीत गवाता था। फिर वे किसी विषय पर वार्ता और विभिन्न घोषणाएं सुनते थे। दूसरे ग्रामीण विद्यालय में बच्चों को सबसे पहले आनेवाले अध्यापक के कहने पर बिना कतार बनाए सीधा कमरों में जाने की छूट थी। हमने देखा कि इस विद्यालय के अध्यापक अकसर 'दूरी' और 'यातायात' की समस्याओं का रोना रोकर 5 मिनट से लेकर एक घंटा देर से विद्यालय पहुंचते थे।

एक को छोड़ कर सभी विद्यालय 30 मिनट का मध्यावकाश देते थे। आमतौर पर घंटी के बजते ही बच्चे दौड़कर मैदान में पहुंच जाते थे। नगरीय विद्यालयों में एक कैंटीन भी होता था जहां बच्चे कोई पेय और एक 'आरपा' (पनीर या गोश्त भरी, एक तरह की तिकोनी पेठी) खरीद सकते थे। ग्रामीण बच्चे आम तौर पर अपना नाश्ता साथ लाते थे। सुबह की पारी में मध्यावकाश सामान्यतः 9 से 9.30 तक होता था। केवल ग्रामीण बुनियादी विद्यालय 90 मिनट के हर 'घंटे' के बाद 10 मिनट का अवकाश देता था। अध्यापक लोग

बारी-बारी से खेल के मैदान को संभालते थे और उनका ध्यान ज्यादातर बच्चों के झगड़े रोकने पर केंद्रित होता था।

अधिकांश विद्यालयों में पाठशाला-समाप्ति की घंटी बाहर जाने के निर्धारित समय से 15-30 मिनट पहले बजती थी। सुबह की पारी वाले दो (ग्रामीण बुनियादी और नगरीय परंपरागत) विद्यालयों में बच्चे लंच के लिए ले जाए जाते थे, मगर केवल ग्रामीण बुनियादी विद्यालय में बच्चे सचमुच लंच पाते थे। नगरीय विद्यालय में जिन बच्चों के बारे में पता होता था कि वे शरीर से कमजोर या बहुत गरीब हैं, उन्हें मुफ्त में लंच दिया जाता था।

अध्यापक

जिन अध्यापकों से हमारा साबका पड़ा उनमें ग्रामीण परंपरागत विद्यालय वालों को छोड़ बाकी सभी नार्मल स्कूल (अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय) में प्रशिक्षित थे।

नगर के परंपरागत विद्यालय की पहली कक्षा की एक अध्यापिका ने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया कि उसने मां के दबाव के कारण अध्यापिका का पेशा अपनाया था। फिर भी लगता था कि वह अपने काम में दिलचस्पी लेती है और सरोकार रखती है और लगता था कि उसके छात्र भी उसे पसंद करते हैं। वह 37 साल की थी और 5 साल से इसी कक्षा को पढ़ा रही थी। लेकिन चौथे दर्जे की अध्यापिका अब अपने पेशे से संतुष्ट न थी। उसने अध्यापिका का पेशा खुद अपनाया था और अनेक सेवाकालीन पाठ्यक्रम पूरा करके अपनी स्थिति सुधारने की कोशिश की थी, मगर इसमें 23 साल रहकर और 6 साल इसी एक कक्षा को पढ़ाते रहने के बाद उसने हमसे कहा था : 'मुझे अपना काम पसंद है मगर मैं थक चुकी हूं।' उसके इस कथन के बावजूद उसके छात्र उसके बारे में अच्छा ही राय रखते थे : 'अच्छी हैं। सुंदर कपड़े पहनती हैं। अच्छी तरह समझाती हैं। 'शिवियर' (अच्छी खिलाड़ी) है। हमारा ध्यान रखती हैं। श्यामपट पर जो कुछ लिखती हैं उसे समझाती हैं।'

ग्रामीण परंपरागत विद्यालय के अध्यापक उम्र में कम भी थे और हरेक ने एक अलग किस्म का प्रशिक्षण भी पाया था। पहली कक्षा की अध्यापिका 30 साल की थी मगर उसने कुल 3 साल पहले माध्यमिक शिक्षा पूरी की थी। अध्यापन-प्रमाणपत्र पाने के लिए उसने एक स्थानीय प्रशिक्षण-संस्था में साल भर गुजारे थे। हमारे अध्ययन के वक्त अंग्रेजी की छात्रा के रूप में विश्वविद्यालय में उसने नामांकन करा रखा था (इस पाठ्यक्रम से माध्यमिक अध्यापन-प्रमाणपत्र मिलता है)। वह एक गरीब परिवार की लड़की थी और रात्रि-विद्यालय में अध्ययन कर वह अपनी मौजूदा शैक्षिक स्थिति पर पहुंच सकी थी। जब हमसे अपने शैक्षिक दृष्टिकोण पर वह बातें कर रही थी तो हमने उसमें थोड़ी-सी असुरक्षा की भावना पाई। इसकी अभिव्यक्ति 'बंधे-बंधाए' जुमलों में जवाब देने की आवश्यक्ता में होती थी जिनसे शिक्षा संबंधी सरकारी दृष्टि जाहिर होती थी; खयाल है कि ये जुमले उसने अपने प्रशिक्षण के दौरान सीखे होंगे। चौथे दर्जे की अध्यापिका 25 साल की थी। हमसे मिलने

के दो साल पहले उसने माध्यमिक शिक्षा पूरी की थी और फिलहाल एक अध्यापक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में नामांकित थी। अध्यापिका होने को लेकर वह यकीनन दुखी थी। 'पढ़ाना मुझे पसंद है, मगर काश कि मैंने किसी और पेशे की तैयारी की होती। इस पेशे में तनख्वाह तो बहुत मामूली है। मन से अध्यापिका तो मैं यकीनन नहीं हूं।'

आम तौर पर ऐसा लगता था कि इन दोनों परंपरागत विद्यालयों की अध्यापिकाएं अध्यापन के ऐसे दर्शन से संचालित थीं जिसमें उनकी स्थिति कुछ-कुछ मसीहाई थी अर्थात उन्हें बच्चों को बोध प्रदान करनेवालों का दर्जा प्राप्त था : 'मैंने इस पेशे को इसलिए चुना कि मुझे लगता था कि इसमें मेरी रुचि थी और शुभकार्य करके एक पैगंबर का कर्तव्य निभाने की मेरी इच्छा थी।' लेकिन लगता था ऐन यही दर्शन बच्चों में मात्र ग्राहकवाली और निष्क्रिय वृत्ति पैदा कर रहा था जो अपेक्षाकृत निरंकुश अंतःक्रिया से उपजी पद्धतियों की देन थी।

> *अध्यापिका* : तुमने वह काम किया है जो पहले कभी नहीं किया था। तुम सभी बिना इजाजत मांगे पेंसिलें छीलने के लिए उठ खड़े हुए।
> (एक और अवसर पर।)
> *अध्यापिका* : किताब पर कुछ मत लिखो।
> *अध्यापिका* : यह किस तरह से बैठे हुए हो ? तुम्हें सीधा बैठना चाहिए।
> (अध्यापिका का ध्यान खींचने के लिए एक छात्र हाथ उठाता है।)
> *अध्यापिका* : मैं सभी कतारों में आ रही हूं। थोड़ा इंतजार करो, मैं गलतियां सुधारकर अभी तुम्हारे पास आ रही हूं।
> (एक और अवसर पर।)
> *अध्यापिका* : तुम एक होशियार लड़के हो, विनम्र, खामोश, लेकिन तुम्हारा व्यवहार ठीक नहीं और यह नहीं चलनेवाला है। तुम्हारी कमीज बहुत फटी हुई है; इसे सिल लेना। अपनी दादी से कहो कि कल पाठशाला में आकर मिलें।

जिन तीन बुनियादी विद्यालयों का हमने अध्ययन किया उनमें सभी अध्यापिकाएं नार्मल स्कूलों में प्रशिक्षित थीं और कम से कम एक और सेवाकालीन पाठ्यक्रम पूरा कर चुकी थीं। दो ने तो विश्वविद्यालय में शिक्षाशास्त्र की उपाधि दिलानेवाले पाठ्यक्रमों में नाम दर्ज करा रखे थे। उनके पास 12 से 22 वर्ष तक के अनुभव थे।

नगर के बुनियादी विद्यालय में हमने पहली कक्षा की जिस अध्यापिका का साक्षात्कार लिया उसने माना कि वह अपने पेशे से कुछ ज्यादा खुश नहीं थी :

> मैं खुद को अच्छी अध्यापिका नहीं समझती। सोचती हूं कि मुझे और अच्छी बनना चाहिए। मैंने यह पेशा खुद चुना था मगर समय बीतने के साथ लगता है हमारी दिलचस्पी खत्म होती जा रही है। ऐसा इसलिए तो नहीं कि अब वैसे नतीजे सामने नहीं आते जैसे हमारी युवावस्था में आते थे। मुझे नहीं पता मेरा 22 साल का अनुभव है।

इस कथन के बावजूद कक्षा में इस अध्यापिका का बच्चों के प्रति व्यवहार स्नेहपूर्ण था, वह उन्हें प्रोत्साहित करती थी और उन्हें पाठ में सक्रिय भागीदार बनाने के प्रयास करती थी। इसके विपरीत चौथी कक्षा की अध्यापिका ने खुद को संतुष्ट तथा बच्चों के सापेक्ष 'आग्रही' अवश्य बतलाया मगर व्यवहार में बच्चों को हीन बताने की प्रवृत्ति उसमें अवश्य देखी गई।

अध्यापिका : अब हम अभ्यास आरंभ करेंगे।
छात्र : मिस, अध्याय तो अभी खत्म ही नहीं हुआ।
अध्यापिका : मुझे पता है साल्वातिएरा का काम खत्म नहीं हुआ। इसलिए कि जब मैं कमरे के बारह थी तो वह कुछ और कर रहा था।
साल्वातिएरा (खड़े होकर) : जी, मिस।
अध्यापिका : तुम क्या नकल कर रहे थे ?
साल्वातिएरा : अनुच्छेदों की टिप्पणियां।
अध्यापिका : तो क्या सारी टिप्पणियां नकल करना जरूरी था ? जब मैं हिदायत दे रही थी तब कहां थे ?
साल्वातिएरा : यहीं था मिस।
अध्यापिका : लगता तो नहीं। जो कुछ मैंने करने को कहा था उसे तुमने समझा ही नहीं। तुम बताओ पेरेज, हमें करना क्या था ?
पेरेज : हमें ये और ये अनुच्छेद पढ़ने थे। (किताब में उन अनुच्छेदों को दिखाता है।) हमें इन पर टिप्पणियां लिखनीं थीं और तीसरे अनुच्छेद और उसकी टिप्पणियों को उतारना था।

शहरी रचनात्मक विद्यालय में पहली कक्षा में एक तेज-तर्रार अध्यापिका थी जो अपने पेशे से खुश थी और जिसने खुद को 'एक अच्छी अध्यापिका' कहा था। जाहिर है कि उसके छात्र दूसरी अध्यापिकाओं के मुकाबले उसे मददगार और हौसला बढ़ानेवाली समझते थे। अपने प्रेक्षण के दौरान हमने देखा कि यह अध्यापिका इस प्रकार विद्यालय के लिए अध्यापन की अनुशंसित विधियों को अमल में लाने की गंभीरता से कोशिश कर रही थी। चौथी कक्षा की अध्यापिका ने भी कहा कि जिन बच्चों को उसे पढ़ाना पड़ता था, वे छात्र अक्सर परेशानी पैदा करते रहते थे किंतु तमाम कठिन स्थितियों का सामना करने के बावजूद वह अध्यापन का काम पसंद करती थी। उसके छात्रों ने भी कहा कि वे उसे चाहते थे और उससे संतुष्ट थे। प्रेक्षक के रूप में हम पर प्रभाव यह पड़ा कि अध्यापिका होने के महत्व को स्वीकार करते हुए भी वह थोड़ी-बहुत दुखी और संभवतः कुंठित थी। उसकी अध्यापन-शैली में भी, बच्चों में रचनात्मकता के विकास के लिए समर्पित विद्यालय में जिस प्रकार के व्यक्तिगत प्रोत्साहन की आशा की जा सकती थी, उससे कम प्रोत्साहन वहां देखने को मिला :

अध्यापिका : तुम्हें पता है कि यहां मेरे पास क्या है ?
छात्र : मिल्क टाप।
अध्यापिका : आम तौर पर तुम लोग इसका क्या करते हो ?
छात्र : फेंक देते हैं।
अध्यापिका : खैर, हम इनका इस्तेमाल करेंगे ! इनका इस्तेमाल कैसे कर सकते हैं?
छात्र : चित्र खींचने के लिए।
अध्यापिका : और क्या कर सकते हैं ?
छात्र : उस पर सिक्का रखें तो निशान उभर आता है।
अध्यापिका : यह चित्र से किस प्रकार भिन्न है ?
छात्र : इस पर निशान बना होगा—उभरा हुआ।
अध्यापिका : हां, उभरा हुआ होगा, उत्कीर्ण होगा।

ग्रामीण सामुदायिक विद्यालय में पहली कक्षा की अध्यापिका 38 वर्ष की थी। इस विद्यालय में उसका अध्यापन-काल किसी एक स्थान पर बिताया हुआ सबसे लंबा समय था :

> शिक्षा के लिए मैं जो कुछ कर सकती थी, मैंने किया है। इसे मैंने अपने रुझान, अपना प्रशिक्षण, अपनी रुचि सौंपी है। मैं अपने पेशे को पसंद करती हूं। मैं 21 साल से पढ़ा रही हूं जिनमें दस साल पहली कक्षा में पढ़ाए हैं। मैंने यह पेशा इसलिए चुना कि मैं हमेशा से अध्यापिका बनना चाहती थी।

उसके छात्रों ने उसके बारे में कई अच्छी बातें कहीं : 'हमारी अध्यापिका अच्छी हैं और बहुत सुंदर हैं;' 'हमें पढ़ना-लिखना सीखने में मदद देती हैं, हमारी गलतियां सुधारने में मदद देती हैं, हमारी गलतियां सुधारती हैं'; 'मुझे अपनी अध्यापिका अच्छी लगती है; वह भली और सुंदर है'; 'जब हमें सबसे ज्यादा जरूरत होती है, वे हमारी मदद करती हैं; मुश्किल जगहों पर जो गलती होती है उसे सुधारती हैं और यह अच्छी बात है; वे हमें कुछ सीखने में मदद देती हैं।'

उनके अध्यापन के प्रेक्षण से हमें पता चला कि वे ऐसी व्यक्ति हैं जो बच्चों को कुछ सीखने के लिए प्रेरित करती हैं और साथ ही वह खुशदिल और प्रेरणा की स्रोत लगती थीं।

अध्यापिका : सबसे ज्यादा जो चीज तुम्हें पसंद आएगी वह है एक सुंदर विद्यालय और कमरे।
एक छात्र (खड़े होकर) : हम भी अपनी कक्षा को सुंदर बनाकर दिखा सकते हैं।
अध्यापिका : ठीक ! अब हम यह वाक्य लिखेंगे। (श्यामपट की ओर बढ़ती है।)
अध्यापिका (श्यामपट पर लिखते हुए) : अपनी कक्षा को सुंदर बनाकर दिखाएं।
अध्यापिका : अब इसे पढ़ो तो सही।
छात्रगण (पढ़ते हैं) : अपनी कक्षा को सुंदर बनाकर दिखाएं।
इगोर (खड़े होकर बोलता है) : यही तो मेरे मन में था।

इसी विद्यालय की चौथी कक्षा की अध्यापिकाएं ने भी एक नार्मल स्कूल मे प्रशिक्षण पाया था। बाद में वह अध्यापन की विधियों और मूल्यांकन की तकनीकों पर अनेक सेवाकालीन पाठ्यक्रमों में भी शामिल हुई थी। वह 39 साल की थी। अपनी बात करते हुए उसने कहा : 'मैंने यह पेशा इसलिए चुना कि मुझे पसंद है; मैं 21 साल से पढ़ा रही हूं और हमेशा मैंने अपने पेशे के सिलसिले में यथासंभव काम करने की कोशिश की है।' उसके छात्र भी उससे संतुष्ट थे : 'मुझे ये अध्यापिका बहुत अच्छी लगती हैं क्योंकि मैं जिस दूसरे विद्यालय में था वहां वो लोग हमें कुछ करने ही नहीं देते थे'; 'वह एक अच्छी खिलाड़ी हैं'; 'वे कल्पना करने में हमारी मदद करती हैं।'

जैसा कि हम देखेगें, इस विद्यालय की सभी अध्यापिकाएं कुल मिलाकर 'सामुदायिक' विद्यालय के दर्शन की भारी समर्थक थीं और उसके अंदर बच्चों के लिए सक्रिय और रचनाशील बनने के अवसर सुनिश्चित करने के लिए कड़ी मेहनत करती थीं।

बच्चे

छात्रों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के हिसाब से विद्यालय भिन्न-भिन्न थे। दो अर्थात शहरी रचनात्मक और ग्रामीण परंपरागत विद्यालयों में अधिकांश बच्चे बहुत गरीब और अस्थिर स्थिति वाले परिवारों के थे। इन सभी बच्चों में बेचैनी और आक्रामकता के लक्षण नजर आते थे और छूटते ही शोर मचाने लगते थे। रचनात्मक विद्यालय में उनको अपनी स्फूर्त प्रतिभा को दर्शाने की छूट थी। पहली कक्षा के बच्चे अभी भी काफी बेकाबू थे, मगर चौथी कक्षा के छात्र सुग्राही और मिलनसार बन चुके थे, हालांकि उनमें सवाल करने की जबरदस्त प्रवृत्ति दिखाई देती थी। ग्रामीण परंपरागत विद्यालय में बच्चे अध्यापन के दौरान दब्बू और भोंदू लगते थे लेकिन आक्रामक थे और छूट मिलते ही असम्मान तक का प्रदर्शन करने लगते थे।

नगरीय रचनात्मक विद्यालय में पढ़ रही इदालिया को उसकी अध्यापिकाओं ने 'बेचैन' और दूसरे बच्चों के मामले में 'जबरदस्त लड़ाकू' घोषित कर रखा था। मगर चौथी कक्षा की 11 वर्षीय इदालिया ने कहा कि वह विद्यालय आकर प्रसन्न है और अध्यापिकाओं को पसंद करती है। तीसरी कक्षा में उसे जिस बोर्डिंग स्कूल[2] में भेजा गया था उसके मुकाबले उसने इस स्थिति को बेहतर कहा : 'उस विद्यालय में तो बहुत सी समस्याएं थीं और अध्यापिका कभी उन्हें रोकती नहीं थी। बच्चे बहुत ही अक्खड़ थे।'

ग्रामीण परंपरागत विद्यालय का छात्र फर्नादो एक टूटे हुए परिवार का बच्चा था। बाप गलत धंधे के कारण जेल में था; मां किसी और के साथ रह रही थी। दिन के समय जब फर्नादो की मां काम पर जाती तो एरिवार के तीन बच्चे अपनी दादी के पास रह जाते। फर्नादो विद्यालय को, अपने साथियों को और अपनी अध्यापिका को चाहता था मगर प्रधानाध्यापिका को नापसंद करता था जिसे वह 'खराब' बतलाता था : 'बच्चों को डांटती

ही रहती है'; 'स्कूल तो आती नहीं।'

दूसरे विद्यालयों के बच्चे सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से एक जैसे नहीं थे। कुछ बच्चे निम्न-मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि के थे, कुछ के पारिवारिक जीवन में स्थायित्व था और कुछ घोर निर्धनता में एक ही अभिभावक के साथ या किसी दादी-चाची की निगरानी में रहते थे। नगरीय बुनियादी विद्यालय के कुछ छात्रों का निम्नलिखित विवरण हमें एक अध्यापिका ने दिया जो बच्चों के प्रति खास दयालु थी और चिंतित भी थी :

- *नेरियो* (मुहल्ले के एक टावर ब्लाक में रहता है) : मां-बाप उसका ध्यान रखते हैं। व्यवहार अच्छा है, बहुत बुद्धिमान, फुर्तीला, भावात्मक रूप से स्थिर, काम में चुस्त है। हमेशा अच्छी तरह कपड़े पहनता है, अच्छा बनने की कोशिश करता है, मुस्कुराता रहता है, एक तरह की आंतरिक शांति से भरपूर है।
- *युआन अलबर्तो* : दूसरे छोर से आता है। 'बैरियो' में रहता है मगर मां-बाप उसका ध्यान रखते हैं। यह और इसका भाई अच्छे नर्तक हैं और इसका प्रदर्शन करना पसंद करते हैं। दोनों का व्यवहार अच्छा है; गलती हो तो डांट-फटकार पर एतराज नहीं करते। पर गलती न हों तो पलट कर तर्क करते हैं। बागी नहीं है।
- *बोलिवार* : बोलिवार इसका मजाक का नाम है क्योंकि हमेशा किसी चीज के बदले में बोलिवार (स्थानीय मुद्रा) देता है। 'बैरियो' में रहता है। दुखी बच्चा है; बाप नहीं है। घर जाता है तो खाना गर्म करना पड़ता है। ज्यादातर तनहा रहता है; कुछ-कुछ बीमार है।
- *अल्फ्रेदो* : पान-अमेरिकन (पूरे अमरीकी महाद्वीप में गुजरनेवाली सड़क) पर रहता है। कभी-कभी सड़क से मोटरों के गुजरने के लिए घंटे भर से अधिक इंतजार करना पड़ता है और तब विद्यालय आता है। सुबह 5 बजे उठता है। आठ साल का है। विद्यालय में आकर नाश्ता करता है। कैंटीन से 'आरपा' और एक गिलास दूध ले लेता है। संजीदा बच्चा है।

ग्रामीण सामुदायिक विद्यालय के बच्चों की पृष्ठभूमि अलग-अलग थी। कुछ अभिभावकों के पास जमीन थी मगर ज्यादातर अभिभावक कुशल या अकुशल देहाती मजदूर थे। हमने पहली कक्षा के बच्चों को चौथी कक्षा वालों से अधिक उन्मुक्त और स्फूर्त पाया। चौथी कक्षा के बच्चों को जो काम करने को दिया जाए, लगता है उस पर वे ध्यान देते हैं और अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। लगता था, वे विद्यालय को पसंद करते हैं और जिनका हमने साक्षात्कार लिया उन सभी ने अध्यापकों के बारे में अच्छी बातें कहीं। लेकिन कुछ बच्चों का जीवन समस्याओं से रहित न था। लिस्बेथ की मां 'पागलखाने में' थी; 'उसको दिमागी परेशानी है और बाप शराबी है।' वह अपनी दादी और अपनी चाची ब्लांका के साथ रहती थी; विद्यालय में उसकी जिम्मेदारी चाची पर ही थी। 13 साल का कार्लोस विद्यालय को इसलिए पसंद करता था कि यहां 'कुछ सीखता है।' वह एक अनाथ बच्चा था जो अपनी दादी के पास

रहता था। पांच बच्चों में वह सबसे बड़ा था। दोपहर बाद वह खेत पर काम करने जाता था, मुर्गे-मुर्गियों की देखभाल करता था और कभी-कभी उन्हें बेचने भी जाता था। हफ्ते में साठ बोलिवार कमाता था (बेनेजुएला के 20 बोलिवार एक अमरीकी डालर के बराबर थे)। इनमें से दस बोलिवार पास रखकर वह बाकी दादी को दे देता था। साथियों को चाहता था क्योंकि उसका कहना था कि 'वो मेरे साथ अच्छा सुलूक करते हैं' और 'मेरी मदद भी करते हैं।'

अध्यापन की शैलियां और सफलता-असफलता का निर्धारण

वेनेजुएला के जिन विद्यालयों में हम लोग गए, वे सभी कम से कम भौतिक सुविधाओं से पर्याप्त लैस अवश्य थे हालांकि अधिक सुविधा संपन्न स्थितियों में जिसे एक बुद्धिसंगत औसत कहा जा सकता है, उसके मुकाबले यहां अध्यापक-छात्र अनुपात अधिक था (तालिका 10 देखें)। इसलिए अपने अच्छे प्रशिक्षण और अपनी तमाम सदाशयता के बावजूद अध्यापिकाएं 30-40 बच्चों की कक्षा में सीमित प्रयत्न ही कर पाती थीं।

विद्यालयों में अध्यापन के उद्देश्य को लेकर ज्यादातर कोई अंतर नहीं था। इसलिए कि यह व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के क्रम पर निर्भर था। मसलन : 'कल हमने और क्या सीखा ?', 'बहुभुज की कितनी भुजाएं होती हैं ?', 'पहला क्या... ?'; 'इस पाठ में कितने अनुच्छेद हैं ?' 'जान, इस गैस का क्या नाम है ?', 'अपना पाठ दोहरा लिया कि नहीं ?' अधिकतर अध्यापिका ही प्रश्नोत्तर क्रम का आरंभ करती है जिन पर बदतरीन हालात में एक शब्द में उत्तर देना पड़ता था। मसलन : 'पांच,' 'पहला,' 'यह वृत्तांत है,' 'हां।' जाहिर है कि अध्यापन की दूसरी विधियां भी प्रयुक्त होती थीं। जैसे श्यामपट या सीटों पर अभ्यास के लिए कुछ देना या गलती का सुधार करवाना, नाटक, समूह में उन्मुक्त गतिविधियां और वादविवाद। लेकिन जैसाकि हम देखेंगे, पाठों के दौरान दोहराव के साथ रटंत की खुराकें कितनी ज्यादा थीं, इसका निर्धारण विद्यालय के प्रकार और अध्यापिका विशेष की खूबियों से ही हो जाता था। सफलता-असफलता के अनुभवों में अध्यापन के योगदान की दृष्टि से उसके विश्लेषण का सरोकार इस बात से होता है कि अध्यापक किस प्रकार बच्चों को संबोधित करते हैं और उन्हें कैसे संदेश देते हैं—मात्र प्रगट और अंतःतत्व से संबंधित संदेश ही नहीं बल्कि वे भी जो कक्षा में बच्चे की स्थिति के बारे में कुछ कहते हैं तथा जिनमें प्रोत्साहन या हतोत्साहित करने की विधियों का उपयोग होता है। अगले पृष्ठों में हम इन्हीं पहलुओं की चर्चा करेंगे।

सभी विद्यालयों में पहली कक्षा में अध्यापन की सबसे अधिक प्रयुक्त विधि एकसमान थी। यह इस बात पर केंद्रित थी कि बच्चा पढ़ना और लिखना कैसे सीखता है। पढ़वाने और अध्यापक के बोलने में शब्दांश विधि का प्रयोग होता था जबकि अध्यापन के ढर्रों पर

तालिका 10 : वेनेजुएला के अध्ययनाधीन विद्यालयों, अध्यापकों और छात्रों की विशेषताएं

	नगरीय बुनियादी	रचनात्मक बुनियादी	ग्रामीण बुनियादी	ग्रामीण परंपरागत	नगरीय परंपरागत
स्थान	नगरीय	नगरीय	ग्रामीण	ग्रामीण	नगरीय
श्रेणी (स्थान, प्रकाश, सुविधाएं)	उत्तम	उत्तम	उत्तम	औसत	औसत
आकार (छात्रों की संख्या)	850	1292	414	436	1021
छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति	निम्न-मध्य	निम्न	निम्न	निम्न-मध्य	निम्न-मध्य
प्रेक्षित वर्गों की संख्या					
पहली कक्षा	1	3	1	1	3
चौथी कक्षा	1	3	1	1	3
अध्यापक-छात्र अनुपात					
पहली कक्षा	38	37	40	42	39
चौथी कक्षा	40	38	35	38	38
अध्यापकों की योग्यताएं	नार्मल स्कूल* और विश्वविद्यालय	नार्मल स्कूल और अन्य	नार्मल स्कूल	विश्वविद्यालय	नार्मल स्कूल

*अध्यापक-छात्र महाविद्यालय

ज्यादातर तथ्यात्मक बातों से जुड़े प्रश्न और उत्तर हावी होते थे। अध्यापन और अधिगम के सुस्पष्ट उद्देश्यों में दूसरे इरादों के प्रमाण भी घुले-मिले नजर आते थे—मूल्यों के संप्रेषण के बारे में, विद्यालय में अनुशासन के मानदंडों की शिक्षा के बारे में तथा घर पर व्यवहार के मानदंडों की शिक्षा के बारे में :

अध्यापिका : अब इमला की बारी है; अपनी-अपनी कापी में अपना नाम और नीचे तारीख लिखो।
(अध्यापिका कमरे में घूम कर देखती है कि बच्चे क्या कर रहे हैं।)
अध्यापिका : मा, मे, मी, मो, मी।
एक छात्र : मिस, 'म'।
अध्यापिका : हां, 'म', मेरी मां। (इसे दो बार बोलती है।) पहला है 'मेरी मां'। दूसरा है 'मुझे अपनी मां से प्रेम है।' (वह इसे तीन बार बोलती है।)
(अध्यापिका कुछ बात कर रहे बच्चों की ओर मुड़ती है। एक लड़की दूसरी की ओर इशारा करती है।)
लड़की : वह, उसे कुछ नहीं आता।
अध्यापिका : उसकी तरफ ध्यान मत दो !
(लड़की अध्यापिका को अपनी कापी दिखाती है।)
लड़की : इस तरह लिक्खें, मिस ?
अध्यापिका (सकारात्मक स्वर में) : हूं।
अध्यापिका (कुछ लड़कों से) : प्रेम है, प्रेम है।
अध्यापिका : मुझे अपनी मां से प्रेम है।
(एक लड़का उठकर अध्यापिका को अपनी कापी दिखाता है।)
अध्यापिका : हूं, ठीक है।
(अध्यापिका एक और लड़के की ओर घूमती है।)
अध्यापिका : अपनी पेंसिल क्यों नहीं लाए ? परेशानी खड़ी कर रहे हो। खामोश।
(अध्यापिका उस लड़के की कापी देखती है और पाती है कि वह अभी भी तारीख ही लिख रहा है।)
अध्यापिका : तारीख बाद में लिख लेना। मुझे अपनी मां से प्रेम है। तीसरी लाइन : मेरा पिता मुझसे प्रेम करता है।
बच्चे (एक साथ) : मेरा पिता मुझसे प्रेम करता है।
(अध्यापिका बार-बार यही वाक्य दोहराते हुए कक्षा में घूमती है।)

परंपरागत विद्यालयों में कक्षा में होने वाली अंतःक्रिया का जब विश्लेषण किया गया तो पता चला कि व्यवहार-सुधार से संबंधित उद्देश्य किस प्रकार शक्तिशाली नियंत्रण के रूप ले सकते हैं।

अध्यापिका (चौथी कक्षा के एक छात्र से विद्यालय-कार्य के बारे में पूछते हुए) : तुमने अपनी प्रश्नावली पूरी कर ली ?
छात्र : नहीं।
अध्यापिका : तो इसे पूरा करो !
अध्यापिका (एक और छात्र से) : तुमने अपना काम पूरा किया ? यह सुस्ती छोड़ो। यहां बैठना है तो काम करो। मेरी बात सुन रहे हो, माइक ? काम करो !

इस उद्धरण का अंतिम भाग एक खासे प्रचलित व्यवहार का भी दृष्टांत है जिसे हमने 'एकल अध्यापक-संवाद' कहा है। नीचे के उदाहरण इसे और अच्छी तरह दर्शाते हैं। वास्तव में यह व्यवहार पाठ में छात्रों के संभावित योगदान के अस्वीकार का एक और रूप है।

अध्यापिका (बोलकर पढ़ने का प्रयास कर रहे चौथी कक्षा के एक छात्र से) : जोर से पढ़ो ! मैं तुम्हारी आवाज नहीं सुन पा रही हूं। मुझे नहीं पता कि तुम पढ़ भी सकते हो या नहीं। विराम चिह्नों को नहीं पढ़ना है। मैं तुमसे साफ कहती हूं : एक, मैं तुम्हारी आवाज नहीं सुन पा रही; दूसरे, तुम धीमी गाड़ी की तरह बढ़ रहे हो; तीसरे, विराम चिह्नों पर भी नहीं रुकते।
अध्यापिका (दूसरे छात्रों की तरफ मुड़कर) : तुम्हें खयाल भी है कि जो कुछ मैं कर रही हूं, तुम्हारे भले के लिए कह रही हूं ?
अध्यापिका (जो लड़का पढ़ रहा था उससे) : बैठो।

कहा जा सकता है कि 'एकल संवाद' बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार हों, यह जरूरी नहीं है, बल्कि यह बच्चों से प्रत्युत्तर न पाने पर अध्यापक की कुंठा का संकेत अधिक है। मगर वास्तव में यह भोंदूपन से पुष्ट सरोकारहीनता उन मामलों में भी दिखाई देती थी जिनमें अध्यापक कक्षा में घटने वाली घटनाओं के प्रति निर्लिप्त लगते थे और उन बातों की उपेक्षा करते थे जिन पर उनको ध्यान देना चाहिए था। इसी रवैए को हमने यहां पर मुक्त कार्यकलाप की शैली कहा है।

छात्र : मिस, मिस, इसने मेरी पेंसिल ले ली है।
(अध्यापिका इस पुकार की उपेक्षा करती है।)
अध्यापिका : मागली, इसे करके दिखाओ।
मागली (बैठे रहकर) : नहीं, नहीं।
अध्यापिका : यह है 'ला' और यह 'लो' है।
(बच्चे बातें तथा दूसरे काम करते रहते हैं।)
(एक और अवसर पर।)
(श्यामपट पर बहुत सारे सवाल लिखे हुए हैं कि बच्चे उन्हें नकल करके हल करें। लेकिन सभी बच्चे ऐसा नहीं कर रहे। उनमें से कुछ कहानियां और लतीफे सुन-सुना रहे हैं। इसी दौरान अध्यापिका इस व्यवधान की उपेक्षा करके एक बच्चे को पढ़ना

सिखा रही है।)

छात्र (चिल्लाकर अध्यापिका से) : मिस, मिस ! इसने मेरी पेंसिल ले ली है।

अध्यापिका (पुकार को अनसुना करके कक्षा की एक और लड़की से कहती है) : मागली, इसे हल्ल करने की कोशिश करो।

मागली : नहीं, नहीं। (बैठी रहती है।)

(अध्यापिका मागली के उत्तर की उपेक्षा करके उसी बच्चे को पढ़ना सिखाती रहती है।)

ऐसी स्थितियों में कक्षा का माहौल तनाव से भरा होता था तथा बच्चे थके और कुंठित लगते थे। इस कारण अध्यापिका की अपनी कुंठा और उद्देश्यहीनता की भावना में वृद्धि होती थी। अकसर जब अध्यापिका विशेष प्रश्नों के उत्तर निकलवाने की कोशिश करती थी तो बच्चों की खामोशी जारी रहने की दशा में उसका एकल संवाद इस खामोशी पर एक तरह की प्रतिक्रिया होता था।

परंपरागत विद्यालयों में निरंकुशता के इन रूपों के विपरीय बुनियादी विद्यालयों के अध्यापकगण पाठ में बच्चों को भागीदार बनाने के बारे में अधिक चिंतित जान पड़ते थे। इन विद्यालयों में कक्षा की गतिविधियों का ढांचा परंपरागत विद्यालयों से बहुत मिलता-जुलता था। मगर लगता था कि विद्यालय के अधिक प्रगतिशील दर्शन तथा शैली और व्यक्तित्व को लेकर अध्यापकगण के बीच मौजूद भेद को ये गतिविधियां प्रतिबिंबित करती थीं।

नगरीय रचनात्मक विद्यालय की पहली कक्षा की तेजतर्रार अध्यापिका विद्यालय के प्रायोगिक कार्यक्रम के पीछे मौजूद सिद्धांतों का पालन करती नजर आई। यहां शब्दांश-विधि से नहीं बल्कि सार्वभौम दृष्टिकोण से किताब पढ़ना सिखाया जाता था। बच्चों की गतिविधियां उनकी पढ़ने-लिखने की योग्यता के आधार पर अलग-अलग निर्धारित की गई थीं। उसकी कक्षा में आम तौर पर एक साथ बच्चों के तीन दल काम कर रहे थे।

अध्यापिका (पहली मेज तक आती है और आठ बच्चों को शब्दों और अक्षरों को दर्शानेवाले खिलौनों से भरा एक थैला देती है) : हम उन शब्दों का पता लगाएंगे जिनसे तुम लोगों के नाम बनते हैं। एक ओर अक्षरों और दूसरी ओर शब्दों को जमा करो। जो मिलता-जुलता है, वह एक साथ रहेगा।

अध्यापिका (दूसरी मेज तक जाती है और वहां बैठे 9 छात्रों से कहती है) : हम एक सूची तैयार करेंगे जिसमें तुम्हारे घर में रहनेवालों के नाम होंगे।

अध्यापिका (बात जारी रखती है) : ठीक ! अब हम उन लोगों को इसमें शामिल करेंगे जो तुम्हारे घर में नहीं रहते, मगर तुम्हारे रिश्तेदार हैं।

अध्यापिका (21 छात्रों वाली तीसरी मेज की ओर बढ़ती है) : अब हम एक कार्य करेंगे जिसके लिए कागज का पन्ना मैं दे रही हूं।

(तीसरी मेज के बच्चे पढ़ना सीख रहे हैं।)

अध्यापिका : हां, तो अब हम 'पेल्यूशी' शब्द लिखेंगे। देखें नेरीदा, 'पेल्यूशी' शब्द तुम्हें कैसा महसूस होता है ?

(नेरीदा शांत रहती है। अध्यापिका एक और छात्र की ओर मुड़ती है।)

अध्यापिका : श्यामपट पर जाओ ऐली, और 'पेल्यूशी' (लिखो !)

अध्यापिका (दूसरे छात्रों से) : देखते जाओ और जो कुछ पास में है उसे मत खुरचो।

अध्यापिका : नेरीदा, देखें तो सही।

नेरीदा (श्यामपट पर जाकर लिखती है) : बूलिया।

अध्यापिका (छात्रों से) : तुम्हारे खयाल से क्या वह इसे किसी और ढंग से लिख सकती थी ?

लड़का (श्यामपट पर जाकर लिखता है) : उश्र।

अध्यापिका : क्या इसे किसी और ढंग से लिखा जा सकता था ?

(लड़का सकारात्मक ढंग से हूं करता है।)

अध्यापिका : क्या तुम समझते हो कि 'पेल्यूशी' शब्द में 'ए' है ?

छात्र (एक साथ) : हां... नहीं।

(एक छात्र श्यामपट पर जाकर 'पुश' लिखता है।)

अध्यापिका : कल हमने शब्द 'कुत्ता' लिखा था। कोई 'कुत्ता' लिख सकता है ?

(स्पेनी में 'कुत्ते' के लिए शब्द है 'पेरो'। यह उस शब्द से मिलता-जुलता है जिसे बच्चे लिखने की कोशिश कर रहे हैं।)

अध्यापिका : जेनीफर, श्यामपट पर जाओ और 'कुत्ता' लिखो।

(जेनीफर श्यामपट पर जाकर 'पेरो' लिखती है।)

अध्यापिका : 'पेरो' शब्द 'पेल्यूशी' की तरह है। (वह श्यामपट पर पहले लिखे गए शब्द 'पुश' की ओर इशारा करती है।) 'प' को 'पे' बनाने के लिए क्या करना चाहिए ?

अध्यापिका : यहां आओ डेविड और 'प' को 'पे' बनाने के लिए जो कुछ चाहिए, उसमें जोड़ो।

डेविड (श्यामपट पर जाकर लिखता है) : पे।

अध्यापिका : 'पे भूश' को 'लुश' बनाने के लिए क्या करना चाहिए ?

डेविड (श्यामपट पर लिखता है) : ल।

अध्यापिका : क्या यह पूरा हो गया ? इसमें क्या कमी है, कौन बताएगा ?

रोजा (उठकर श्यामपट पर जाती है) : पेल्यूशी।

(अध्यापिका एक और लड़की से श्यामपट पर जाने को और उस शब्द को पढ़ने को कहती है। वह उसे सही-सही पढ़ देती है।)

इसी विद्यालय में एक कार्यशाला में चौथी कक्षा की एक अध्यापिका ने कठोर प्रकार के नियंत्रण का व्यवहार किया।

अध्यापिका : कुछ उभारने के लिए तुम क्या इस्तेमाल करते हो ?
(छात्र खामोश रहते हैं।)
अध्यापिका : तुम लोगों के हाथों में क्या है ?
अध्यापिका : आह !
अध्यापिका : मैं तुम्हें एक सादा कागज दूंगी और उस पर तुम्हें अपना चित्र बनाना है।
छात्र : मैं एक बोलिवार (एक सिक्का) बनाना चाहता हूं।
अध्यापिका : ठीक है, तो फिर चित्र बड़ा बनाना। सिक्के के इर्द-गिर्द ही पेंसिल मत चलाना, नहीं तो बहुत छोटा चित्र बनेगा।
एक और लड़का : मैं क्या बनाऊं ?
अध्यापिका : जो भी चाहो।
अध्यापिका (छात्रों से) : अल्यूमिनियम की पन्नी पर कैसे कुछ उभारें, इसका पता तुम लोग खुद लगाओ। मैं कोई मदद नहीं करनेवाली।
लड़का (अध्यापिका की ओर बढ़ते हुए) : देखिए मिस !
अध्यापिका : अच्छा है।
छात्र : मिस, मैं एक जहाज बनाऊं ?
अध्यापिका : जो चाहो, बनाओ।
(बच्चे अपने-अपने चित्र बनाते रहते हैं।)
अध्यापिका : अभी अल्यूमिनियम वाला काम मत करो। पहले कागज के पन्ने पर अपने चित्र बनाओ।
अध्यापिका : जो मुझे अपना चित्र दिखाएंगे और जिनके चित्रों को मैं स्वीकार करूंगी वे ही अल्यूमिनियम पर उसे उभारेंगे।
छात्र : देखिए, मिस !
अध्यापिका : ठीक है। लेकिन मैं अपनी उंगलियों से छूकर देखना चाहूंगी कि यह उभरा हुआ है। इसे कैसे करेंगे ?
छात्र : देखिए, मिस !
अध्यापिका : अच्छा है, मगर इसे उभारने की कोशिश करो।

हमने देखा है कि इस रचनात्मक विद्यालय में गतिविधियां किस प्रकार की हैं, इससे भी छात्रों का व्यवहार प्रभावित होता है। साधारण पाठ की स्थिति में हमेशा शोरगुल सुनाई पड़ता था। बच्चे स्वतःस्फूर्त और थोड़ा-बहुत अव्यवस्थित ढंग से हस्तक्षेप करते रहते थे। मगर कार्यशाला के दौरान वे इसकी तुलना में बहुत अधिक ध्यान देते और खामोशी बरतते थे। ग्रामीण सामुदायिक विद्यालय में विद्यालय का स्वरूप अध्यापन को काफी हद तक प्रभावित करता था। बुनियादी विद्यालयों में जो कक्षा के कार्यकलाप 'रुचि के केंद्रों' पर आधारित होते थे, वे ही यहां विशिष्ट रूप से आसपास के समुदाय की स्थानीय, खेतिहर और दूसरी

व्यवसायगत जरूरतों और मसलों से जुड़े पाए गए। विद्यालय सामुदायिक विकास से जुड़ी बहुत सी गतिविधियां भी चलाता था। मसलन मनोरंजन के अवसर प्रदान करना, परिवार संबंधी परामर्श देना, साक्षरता का प्रशिक्षण और अन्य प्रकार के सांस्कृतिक कार्यों का आयोजन करना। इस विद्यालय के प्रेक्षण की पूरी अवधि में हमने देखा कि ये मोटे-मोटे उद्देश्य कैसे पूरे किए जाते थे और कैसे वे अध्यापन-कार्य को प्रभावित करते थे। इस तरह अध्यापन की विषयवस्तु विद्यालय की विशेष स्वरूप और बच्चों की पृष्ठभूमि से अधिक संबद्ध लगती थी। (श्यामपट पर दिन की गतिविधियां दर्ज है : स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पर्यावरण की दशाएं।)

अध्यापिका : पर्यावरण कैसा होना चाहिए ?
छात्रगण : साफ मक्खियों और खटमलों से पाक।
अध्यापिका : खिड़कियां बंद होनी चाहिए या खुली ?
छात्रगण : बंद।
अध्यापिका : क्या ?
छात्रगण : खुली हुई।
छात्रगण : इसलिए कि हम 'बाहर धकेल दिए जाएंगे।'
(स्पेनी में छात्रों ने चलताऊ बोली का प्रयोग किया : पोर्क्वे तिएंब्ला अल कैशो।)
छात्र : मिस, मेरी मां खिड़कियां खुली नहीं छोड़ती क्योंकि मैड्रक्स की गोलियों (नशीली दवा) वाले बदमाश अंदर आ जाएंगे।
अध्यापिका : हूं।
छात्र : मिस, 'दशाएं' वाली उस बात का मतलब क्या हुआ ?
अध्यापिका : सोने से पहले क्या करना चाहिए ?
छात्र : दांत साफ करना चाहिए।
अध्यापिका : एक दशा यही है।

सामुदायिक विद्यालय में पहली ही नहीं, चौथी कक्षा में भी छोटे-छोटे समूहों में अध्यापन आम बात थी।
(बच्चे कमरे में आते हैं और फिर फौरन तीन गुटों में बंट जाते हैं।)

अध्यापिका : हम भिन्नों को दोहराएंगे। (अध्यापिका तीन वर्ग बनाकर उन्हें रंगती है और ऊपर लिखती है।) 3/3; 2/3; 1/3.
अध्यापिका : युआन रामो, इसका मतलब बतलाओगे ?
युआन रामो : ये तीन तिहाइयां हैं क्योंकि तीन रंगीन वर्ग यहां हैं।
अध्यापिका (दूसरे दल की ओर बढ़ती है) : बतला सकते हो कि इससे तुम किसकी तुलना कर सकते हो ?
छात्र : एक पूरे बिस्कुट और एक टुकड़े से भी कर सकते हैं।

अध्यापिका : पूरा बिस्कुट दिखता कैसा है ? भिन्नों की ही तरह ?
एक और छात्र (उसी दल का) : मैं बताऊं, मिस !
अध्यापिका : हां, बताओ।
छात्र (श्यामपट पर जाता हैं और इंच पटरी से वर्गों की ओर इशारा करता है) : ये रहीं तीन-तिहाइयां, दो-तिहाइयां और एक-तिहाई।
अध्यापिका : गिलबर्तो, श्यामपट पर जो भिन्न लिखे हैं उन्हें दोहरा सकते हो ?
(गिलबर्तो सही-सही दोहराता है।)
अध्यापिका (कुछ खड़िए उठाकर लिखती है) : 3/3.
गिलबर्तो (लिखता है) : 1/3
अध्यापिका : मैंने कहा, तीन तिहाइयां।
गिलबर्तो (लिखता है) : 3/3
अध्यापिका : अब ये रहीं तीन-तिहाइयां।
अध्यापिका : श्यामपट पर तीन-तिहाइयों का पता लगाओ।
(गिलबर्तो पता लगाता है और पढ़ता है।)
अध्यापिका : ये तो शब्दों में लिखें हैं; अंकों में दिखाओ। ध्यान से देखकर ढूंढ़ो और फिर लिखो।
गिलबर्तो (लिखता है) : 3/3 हैं तीन-तिहाइयां।

विद्यालय की दूसरी गतिविधियों की अपेक्षा व्यावहारिक क्रियाकलाप बच्चों और अध्यापिका में कहीं अधिक अंतरंगता लाते थे। मसलन एक सुबह हमने देखा कि चौथी कक्षा पूरे विद्यालय की सफाई में लगी है। कारण यह था कि पिछले दिन, शुक्रवार को उन्होनें यहां गंदगी देखी थी।
(एक लड़का अध्यापिका से पूछता है कि क्या वह बागों और दालानों में पानी डालने के लिए माली से पाइप उधार मांग लाए ?)

अध्यापिका : हां, जाओ।
(लड़का पाइप के पास जाता है, उसे नल में लगाता है और पानी देना शुरू करता है। दूसरे अध्यापक बच्चों को देख रहे हैं।)
अध्यापिका : योस लुई, पौधों को सावधानी से पानी देना और काम खत्म होते ही कक्षा में आ जाना।
(अध्यापिका दो अन्य बच्चों से कहती है कि काम पूरा कर लिया हो तो हाथ धो डालो। कुछ बच्चे जोश-खरोश में झाड़ू लगाते हैं, सूखे पत्तों के ढेर बनाते हैं और फिर बेलचे से उठाकर कूड़ेदान में फेंकते हैं। एक लड़की झाड़ू लाती है और मुख्य दरवाजे के पास के गलियारों की सफाई करती है।)
पहला लड़का (पास के एक लड़के से) : पैराफिन कहां है ?

दूसरा लड़का : क्या जरूरत आ गई है ?
पहला लड़का : मिस को चाहिए।
दूसरा लड़का : नहीं।
अध्यापिका (सुन लेती है) : जो कह रहे हो, सब सुन रही हूं।
(दूसरा छात्र पैराफिन की शीशी पकड़ा देता है।)
अध्यापिका : अब कतार बनाओ क्योंकि सारी कमेटियों ने काम पूरा कर लिया है।
अध्यापिका : मैं चाहती हूं कि मध्यावकाश में जो बच्चे कागज फेंकें उन पर गहरी नजर रखो और उनको समझाओ कि ऐसा न करें। आज इतना काम बहुत है।
(लड़कियां दो कतारें बनाती हैं और लड़के भी। इतना होने के बाद वे संगीत शिक्षक के संकेतों पर राष्ट्रगीत गाना शुरू करते हैं। गाने के बाद जिन बच्चों ने झंडे को सलामी देने के लिए हाथ ऊपर उठा रखे हैं, उनसे एक लड़का कहता है कि अब हाथ गिरा लें। फिर बच्चे अपनी कक्षा में जाते हैं। जाते हुए वे एक तख्ती पर अपनी हाजिरी लगाते जाते हैं। अध्यापिका बतलाती है कि यहां हाजिरी नहीं ली जाती और बच्चे अपना-अपना उपस्थिति कार्ड तख्ती के पास ले जाते हैं।)
अध्यापिका : यहां तो चारों ओर गंदगी है। कपड़े से अपनी-अपनी डेस्कें साफ करो!
(एक लड़का उठकर कपड़ा लेता है और कुछ डेस्कें साफ करता है।)
अध्यापिका : तो सप्ताहांत की छुट्टी कैसी गुजरी ?
छात्रगण : अच्छी गुजरी, मिस।
अध्यापिका : गृहकार्य किया ?
छात्रगण : हां।
(वे अपनी-अपनी कापियां बस्ते से निकालकर डेस्क पर रख लेते हैं।)
अध्यापिका : हर गुट अपना गृहकार्य जांचेगा !
(अध्यापिका हमें बताती है कि यह एक आम कायदा है और बच्चे एक-दूसरे की गलती सुधारते हैं। जिन कापियों में गृहकार्य नहीं किया हुआ हो उन पर वे काली और जिनमें पूरा गृहकार्य किया गया है उन पर नीली लकीर खींचते हैं।)
अध्यापिका : जांचने का काम हो गया ? लुई, तुम्हारा गुट ... कर लिया है ? लिज, पोलीमर ?
(अध्यापिका श्यामपट पर जाकर लिखते हुए बोलती है।)
अध्यापिका : तो ये था गृहकार्य। जो शुक्रवार को गैरहाजिर थे, इसे उतारें और करके कल दिखाएं।

संक्षेप में यह कि वैसे तो पाठ पढ़ाने की सामान्य शैली को लेकर विद्यालयों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं था और उच्चार-विधि स्पष्ट रूप से अध्यापन की पसंदीदा विधि थी, मगर विद्यालय के स्वरूप में परिवर्तन से कुछ अंतर अवश्य पैदा होते थे। नगरीय रचनात्मक और ग्रामीण सामुदायिक विद्यालयों की प्रायोगिक प्रवर्तन की विशेषता अध्यापन-कार्य की संरचना और

उसके रूप में साफ दिखाई देती थी। परंपरागत विद्यालयों के अधिक परंपरागत परिवेश की अपेक्षा इन परिवेशों में उद्दंड छात्र अधिक राहत महसूस करते थे। फिर भी यह नतीजा निकालना मुश्किल है कि विद्यालयों के बीच यहां वर्णित अंतर से कहीं अधिक अंतर थे। यह बात स्पष्ट थी कि अध्यापकों के बीच मौजूद अंतर भी कक्षा की शैलियों के अंतर के एक महत्वपूर्ण कारण थे। फिर शैली के ये अंतर उस कारण को प्रभावित नहीं करते थे जो सबसे प्रगतिशील विद्यालय तक के लिए महत्वपूर्ण था : यह कि अध्यापकगण स्पष्ट रूप से अधिगम की गतिविधियों के स्वरूप और व्याप्ति को नियंत्रित करते थे।

मूल्यांकन और प्रोत्साहन की विधियां

हम शैक्षिक सफलता और असफलता पर विचार आगे करेंगे। मगर इनके स्वीकृत अर्थों के बावजूद अपनी श्रेणी के बारे में छात्र काफी-कुछ जानकारी इससे पाते हैं कि पाठ के दौरान उन्हें किस तरह मान्यता मिलती है, प्रोत्साहित किया जाता और उनकी गलती सुधारी जाती है। इस विषय में हमने अध्यापकों और विद्यालयों के अंतर पर भी ध्यान दिया। परंपरागत विद्यालयों के अध्यापक मूल्यांकन और प्रोत्साहन की अपनी रणनीतियों में बुनियादी विद्यालयों के अध्यापकों से अधिक मनमानी बरतते हैं। छोटे बच्चों के लिए जिम्मेदार अध्यापकों के बारे में यह बात खास तौर पर सही थी। छात्र जो कुछ करता है उसके बारे में हमने मूल्यांकन की जिन विधियों को अवमानानाजनक कहा है, निम्नलिखित उदाहरण उसके दृष्टांत हैं।

अध्यापिका : जोर से पढ़ो ! मैं तुम्हारी आवाज नहीं सुन पा रही। मुझे नहीं पता कि तुम पढ़ भी सकते हो या नहीं। विराम चिह्नों को नहीं पढ़ना है। मैं तुमसे साफ कहती हूं : एक, मैं तुम्हारी आवाज नहीं सुन पा रही; दूसरे, तुम धीमी गाड़ी की तरह बढ़ रहे हो; तीसरे, विराम चिह्नों पर भी नहीं रुकते।

अध्यापिका (दूसरे छात्रों की ओर मुड़कर) : तुम्हें खयाल भी है कि जो कुछ मैं कह रही हूं, तुम्हारे भले के लिए कह रही हूं ?

अध्यापिका (जो लड़का पढ़ रहा था उससे) : बैठो !

(एक और अवसर पर : पाठ पढ़ाई के दौरान)

अध्यापिका : निनोस्का, तुम पढ़ो।

(निनोस्का बहुत धीमी आवाज में पढ़ती है।)

अध्यापिका : तुम लोग निनोस्का की आवाज सुन रहे हो ? मैं नहीं सुन रही। मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता। अगर तुम कभी राष्ट्रपति बन गए और भाषण देना पड़ा तो तुम्हारी आवाज लोग कैसे सुनेंगे ?

एक और छात्र : उसके पास तब माइक्रोफोन होगा।

अध्यापिका : चुप !

(छात्र बेचैन हैं; दो आपस में लड़ रहे हैं; अध्यापिका उन्हें अनदेखा करती है।)

अध्यापिका : ग्रिगोरियो, तुम पढ़ो !

अध्यापिका (ग्रिगोरियो पढ़ता है, तब उससे) : बुरा नहीं पढ़ते। कुछ तो हैं जो और भी खराब पढ़ते हैं। बैठ जाओ !

निर्धन परिवारों के बच्चे जोर से बोलने में जो कठिनाई महसूस करते हैं, उससे निपटने का विपरीत ढंग एक बुनियादी विद्यालय में पढ़ाए जा रहे पाठ के निम्न उद्धरण में मिलता है।

(छात्र घेरे बनाकर बैठे हैं। अध्यापिका उनसे पाठ पढ़ने से संबंधित कठिनाइयों पर विचारविमर्श कर रही है और उनसे सुधार संबंधी सुझाव मांगती है।)

अध्यापिका : एलिजाबेथ, एनरिक दायानीरा से क्या कह रही थी ?

एलिजाबेथ : यही कि उसे कामयाबी के लिए घर पर अपने पाठ का खूब अभ्यास करना चाहिए।

युआन (हाथ उठाकर) : डर दूर करने के लिए उसे चाची या मां को पढ़ कर सुनाना चाहिए।

अध्यापिका : पढ़ाई में सुधार के लिए हमें क्या करना होगा, हम इस पर आलोचनात्मक चर्चा कर रहे थे। तुम्हारे खयाल में वह डरता क्यों है ?

मारियो : इसलिए कि वह बहुत धीमे पढ़ता है।

अध्यापिका (दूसरे बच्चों की ओर मुड़कर) : तुममें से ज्यादातर के खयाल में एनरिक क्यों डरता है ?

छात्र (एक साथ) : इसलिए कि उसने ऐसा कहा था।

अध्यापिका : तो जो कुछ उसने कहा उसके आधार पर क्या हम फैसला कर सकते हैं ?

लुशिन (बोलने की इजाजत मांगता है) : अगर अध्यापिका उसे दूसरों के सामने बोलने को कहे तो मतलब है कि वह चाहती है, दूसरे उसकी मदद करें। अगर वह बतलाता है कि मुश्किल क्या है तो दूसरे उसका मजाक उड़ा सकते हैं।

अध्यापिका : तुम्हारा सुझाव क्या होगा ?

लुशिन : चुप रहें।

मसूया : उसे किसी को तो बताना ही चाहिए।

अध्यापिका (प्रभावित लड़के से) : इस सुझाव से सहमत हो ?

एनरिक : हां।

पेद्रो : मैंने देखा कि जब पाठ शुरू होनेवाला था तो वह डर से कांपने लगा।

(एनरिक अध्यापिका को इशारा करता है और वह उसकी ओर मुड़ती है।)

अध्यापिका : यह सही है ?

एनरिक : ऐसा होता था...

अध्यापिका : पढ़ने के बारे में तुम लोगों ने एनरिक को जो सुझाव दिए, अब हम उस पर सोचेंगे। हेक्तर और एनरिक में तुमने किसको अधिक सुझाव दिए ?

छात्र (एक साथ) : एनरिक को । एनरिक हेक्तर से अच्छा पढ़ता है।

कुछ छात्रों के प्रति अनुग्रह और दूसरों के प्रति रुखाई बरतने से भी किसी छात्र की क्षमताओं के बारे में कुछ संदेश मिलते हैं। पैत्रीशिया एक पसंदीदा छात्रा थी जो कक्षा में कामयाब रही। वह अभावग्रस्त सामाजिक पृष्ठभूमि वाली लड़की थी मगर कक्षा के अन्य छात्रों की अपेक्षा उसका व्यक्तितत्व अधिक सशक्त था। अपने इस जाहिरा आत्मविश्वास के चलते उसने छात्रा के रूप में अपनी भूमिका, जैसे उसकी अध्यापिका ने बताया था, इस तरह थी : 'व्यवसायसमर्थ और पूरी तरह आत्मनिर्भर बनने के लिए कुछ सीखना।' पैत्रीशिया को साफ तौर पर उसकी कक्षा में अग्रणी समझा जाता था और किसी निचली कक्षा में अध्यापिका के गैरहाजिर रहने पर विशेष दायित्व निभाने के लिए उसे ही बुलाया जाता था। उसकी अध्यापिका उसे अपनी छात्रा से अधिक एक सहायिका समझती थी।

(अध्यापिका कुछ सफेद कागज लेकर कमरे के दूसरे छोर तक जाती है और प्रदर्शन पट को ढकने लगती है।)
अध्यापिका (पैत्रीशिया से) : यह कागज गंदा है। क्यों ?
पैत्रीशिया : सुबह की पारी वालों ने किया है।
अध्यापिका : अपनी कैंची लाई ?
पैत्रीशिया : मैं भूल गई।
अध्यापिका : क्यों ? तुम्हें पता था कि आज हम इस तख्ती पर कुछ प्रदर्शित करेंगे?
अध्यापिका (दूसरे छात्रों की ओर मुड़ती है जिन्हें वह अभी तक अनदेखा कर रही थी और पैत्रीशिया के साथ कक्षा से बाहर जाने को तैयार होती है) : तुम लोग ! भाषा का वह पाठ तैयार करो जो इम्तहान में आनेवाला है।
(पैत्रीशिया कमरे में वापस आती है; पीछे-पीछे हाथ में कैंची लिए अध्यापिका भी आती है। पैत्रीशिया अध्यापिका की डेस्क तक जाती है (अब अध्यापिका नीले कागज की कुछ पट्टियां काट रही है)। अध्यापिका और पैत्रीशिया कुछ बातें करती हैं। अध्यापिका पैत्रीशिया को एक नीली पट्टी देती है और वह प्रदर्शनपट पर जाकर सफेद कागज उतारने लगती है।)
अध्यापिका (खड़े हो गए एक लड़के से कहती है) : सारे सवाल दोहरा लिए ?
छात्र : नहीं।
अध्यापिका : तो दोहराओ !
अध्यापिका : वेनेजुएला, तुमने दोहराए ?
वेनेजुएला : जी हां।
अध्यापिका : मेरियाना, तुमने दोहरा लिए ?
मेरियाना : जी हां।
अध्यापिका : तो यहां आकर मेरी मदद करो।
(वेनेजुएला और मेरियाना अध्यापिका की डेस्क तक आती हैं।)

पैत्रीशिया : मेरियाना, इधर आओ। !
(मेरियाना घूमती है मगर जहां है वहां से हिलती नहीं है।)
पैत्रीशिया (नाराज दिखाई देती है) : मेरियाना !
अध्यापिका : मेरियाना, जाकर पैत्रीशिया की मदद करो।
(मेरियाना कहा मानती है और प्रदर्शनपट से सफेद कागज हटाने में पैत्रीशिया की मदद करने लगती है।)

कुछ अध्यापक किसी बच्चे की अभावग्रस्त पृष्ठभूमि या बौद्धिक व्यवहार संबंधी सीमाओं के बारे में प्राप्त जानकारी का उपयोग उसकी संभावित असफलता के सूचक के रूप में करते थे। इस मूल्यांकन का निरायास परिणाम यह होता था कि या तो उससे दया का बर्ताव किया जाता था, मगर कोई प्रोत्साहन दिए बगैर, या फिर उसके कुछ न सीख पाने या दुर्व्यवहार करने पर बराबर लताड़ा जाता था। फिर तो ऐसे बच्चों को असफल होनेवालों की श्रेणी में रख दिया जाता था और फर्नांदो जैसे कुछ दृष्टांतों में यह भविष्यवाणी सच भी हो जाती थी।

पेद्रो

12 साल का है और 13 भाइयों में दसवां है। भाइयों के ही साथ रहता है क्योंकि, जैसा उसका कहना है : 'मेरी मां को कैंसर था। एक दिन वे उसे साथ ले गए और अगले दिन वह मर गई। बाप छोड़कर चला गया, अब अकेले रहता है।' लेकिन बाप के साथ उसका संपर्क बना हुआ है : 'वह खाने के लिए पैसे देता है और जब नहीं देता तो बड़ा भाई खरीदता है।' उसने कहा कि वह एक भद्रपुरुष के यहां काम करता है : 'मैं ब्लाक चिपकाने और मिक्स तैयार करने में उसकी मदद करता हूं। वह मुझे रोज 20 या 30 बोलिवार देता है। मैं पैसा या तो अपने पास रखता हूं या रखने के लिए भाइयों को दे देता हूं।' पेद्रो की राय में यह विद्यालय 'बड़ा है। यहां मेरे दोस्त हैं और मैं हमेशा इसी में पढ़ता रहा।' उसे गणित, भाषा और स्वास्थ्य विज्ञान अच्छे लगते हैं; अध्यापिका 'खयाल रखती हैं

फर्नांदो

इस विद्यालय में दो साल से है। पहले दो साल एक कनसेंट्रटेड स्कूल में गया। फर्नांदो की अध्यापिका का कथन है कि 'वह अपना गृहकार्य नहीं करता;' 'कक्षा में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाता' और 'गायब-दिमाग रहता है।' फर्नांदो एक टूटे हुए परिवार का बालक है। उसकी मां लुई नाम के व्यक्ति के साथ रहती है मगर फर्नांदो उसका कुलनाम नहीं जानता। वह कड़ी मेहनत करती है, सुबह तड़के घर से चली जाती है और रोज रात को 8 बजे लौटती है। वह और उसके तीन सहोदर (दो बहनें, एक भाई) दादी के पास रह जाते हैं। घर लौटकर फर्नांदो मास्क्विता म्वेर्ता (ढाई बजे का कार्यक्रम) आने तक टी वी देखता है। कभी-कभी बाप से मिलने जाता है जो अकेला रहता है और घर साफ करने, कूड़ा बाहर फेंकने और दालान बुहारने में उसकी मदद करता है। फर्नांदो को विद्यालय अच्छा

और श्यामपट पर जो कुछ लिखती हैं, उसे समझाती हैं। पेद्रो की राय में असफलता का मतलब है कभी-कभी किसी चीज का टूटकर बिखर जाना' और सफलता यह है कि 'मुझे अगली कक्षाओं में प्रोन्नति देकर भेज दिया जाता है।' वह खुद से कहता है : 'काम पाने के लिए जरूरी है कि मैं पढ़ाई करूं।' पेद्रो की अध्यापिका की राय है कि वह एक मेहनती लड़का है।

पेद्रो ने 15 अंक लेकर चौथी कक्षा उत्तीर्ण की।

लगता है मगर प्रधानाध्यापिका अच्छी नहीं लगती जिसे वह 'खराब' समझता है : 'वह तो स्कूल भी नहीं आती।' वह अपनी अध्यापिका और सहपाठियों को पसंद करता है : 'वे मेरे साथ भले हैं और मैं उनके साथ भला हूं।' उसका यह भी कहना है : 'मैं अपनी मां का ध्यान रखता हूं; जब वह देर से घर आती है तो मुझे चिंता होने लगती है। वह छह बजे जाती है मगर कभी-कभी आठ बजे घर आती है।' इस लड़के की राय में सफल होने का मतलब है 'कक्षा में उत्तीर्ण होना, भले ही अंक ज्यादा न आएं' और असफलता का मतलब है 'पढ़ाई करना नहीं बल्कि गेंद खेलना और कम अंक लाना।' फर्नांदो बतलाता है कि वह लिखना और गिनती सीखने के लिए विद्यालय जाता है ताकि कुछ काम पा सके।

फर्नांदो 5 अंक लेकर अनुत्तीर्ण रहा था।

किसी बच्चे की पारिवारिक या सामाजिक पृष्ठभूमि पर विचार करने का एक और तरीका था उसकी व्यवहार संबंधी सीमाओं (जिन्हें घर की देन कहा जा सकता था) पर इस तरह ध्यान देना कि उसमें जिस व्यवहार की शिक्षा दी जाती है उसकी व्याख्या भी आ जाए। यह बात नगरीय बुनियादी विद्यालय की एक अध्यापिका के पाठ पढ़ाने से स्पष्ट हुई। हालांकि वह व्यवहार के मानदंडों पर दूसरे अध्यापकों की ही तरह जोर देती थी मगर उनके माध्यम से चिंतन को प्रेरित करने का प्रयास भी करती थी।

अध्यापिका : सबसे पहले हम सुंदर भाषण और एकाग्रता के मानदंड दोहराएंगे।
युआजितो : कोई बात कर रहा हो तो एकाग्र रहना।
लुई : कुछ कहना हो तो सर ऊपर उठाना।
अध्यापिका : कोई तुमसे कुछ कहे तो उस पर ध्यान देना।
(एक और अवसर पर।)
अध्यापिका (सिलाई की कक्षा में) : कई ऐसे लड़के हैं जिनकी माताएं उन्हें बटन टांकने या बखिया लगाने नहीं देंगी क्यों वे इसे 'औरतों का काम' समझती हैं। लेकिन ऐसा है नहीं। सिलाई कोई बुरी बात नहीं।
अध्यापिका : वे लड़कों को रसोई में भी घुसने नहीं देतीं। मगर लड़कों को घर के काम में हाथ बंटाना ही चाहिए।

इसी अध्यापिका को हमने अकसर बच्चों के साथ विचारविमर्श के लिए विषय के तौर पर सामयिक घटनाओं का उपयोग करते देखा और वह इर्द-गिर्द की दुनिया के बारे में बच्चों की धारणा के प्रति सजग दिखाई देती थी।

अध्यापिका : मुझे नहीं पता पिछली रात तुमने सुना या नहीं कि आज स्कूलों को अर्जेंतीना के साथ एकजुटता के छोटे-छोटे आयोजन करने हैं। एकजुटता का मतलब है कि हम उनके समर्थन में खड़े हों।
अध्यापिका : रोजालिया ?
रोजालिया : मेरी मां कहती थी कि वे (अर्जेंतीना वाले) माल्विनास (फाकलैंड द्वीपसमूह) के लिए लड़नेवाले हैं।
अध्यापिका (एक और छात्र की ओर देखते हुए) : देखा, जो कुछ हो रहा है उसके बारे में ये बच्चे कितना जानते हैं !
मारियो : अर्जेंतीना अंग्रेजों से लड़ेगा।
अध्यापिका : मिगुएल, वे लड़ क्यों रहे हैं ?
मिगुएल : वेनेजुएला के एक हिस्से के लिए।
अध्यापिका : नहीं मुन्ना, वेनेजुएला के लिए नहीं; ऐसी जमीन के लिए जो एक द्वीप है। उस द्वीप को कहते क्या हैं ?
छात्र (एक साथ) : माल्विनास।

सफलता और असफलता की अवधारणा

विद्यालयों में चलनेवाली क्रियाएं किस प्रकार सफलता और असफलता की दशाएं निरूपित करती हैं, इसके बारे में विद्यालयों के बीच कुल मिलाकर कोई भारी अंतर दिखाई नहीं पड़ता। प्राप्त अंकों की भाषा में सफलता की सरकारी परिभाषा को इस बात का सूचक माना गया था कि बच्चे एक से दूसरी कक्षा में जा सकते हैं या नहीं। लेकिन दिलचस्पी की चीज तो 'सफलता' और 'असफलता' की वह परिभाषा थी जो अभिभावक, अध्यापक और बच्चे प्रस्तुत करते थे। यह परिभाषा एक से दूसरी कक्षा में संक्रमण से भी परे जाती थी। इतना ही नहीं, इन परिणामों के लिए जिम्मेदार कौन था, इसके बारे में उनकी समझ भी दिलचस्पी की चीज थी।

ये अभिभावक और अध्यापक सफलता को दीर्घकालिक उद्देश्यों की दृष्टि से देखते थे। जैसे 'बच्चों को स्थायी भविष्य पाने में समर्थ बनाने के लिए उनके व्यवहार में परिवर्तन', 'उन्हें भविष्य के गरिमासंपन्न नागरिक बनाने के लिए वांछित उद्देश्यों की पूर्ति' और 'बच्चों को शिक्षित करके आजीविका अर्जित करने और परिवार के योग्य बनाना' जैसे उद्देश्य। स्पष्ट

है कि दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में असफलता को सफलता की विपरीत स्थिति माना जाता था; विशेषकर इसका अर्थ था छात्रों का ऐसा व्यवहार जो आपत्तिजनक हो : 'जब मैं देखती हूं कि एक छात्र मेरी आशा से भिन्न ढंग का व्यवहार कर रहा है तो मैं खुद को असफल, बल्कि निराश महसूस करती हूं।'

फिर भी व्यवहार में अध्यापक लोग असफलता की ऐसी धारणाओं से संचालित थे जो फौरी तकाजों की पूर्ति से कहीं अधिक घनिष्ठ ढंग से जुड़ी थीं। उदाहरण के लिए गृहकार्य न करके लाने की सजा बतलाते समय अध्यापिका अधिगम या व्यवहार में सुधार के बारे में एक छात्र विशेष की योग्यता में अविश्वास भी जता सकती थी। दुर्व्यवहार की स्थिति में यह संदेश भी दिया जा सकता था कि अध्यापिका उसके प्रति अनुग्रही अब नहीं रही : 'तुम एक होशियार बच्चे हो मगर तुम्हारा व्यवहार ठीक नहीं है। मैं तुम्हें माफ नहीं कर सकती।' फौरी असफलता, मसलन लिखना सीखने की असफलता को बच्चे की भावी असफलता का सूचक कहा जाता था : 'तुम नहीं लिख सकते। जब नागरिक अधिकारों के इस्तेमाल का वक्त आएगा तब अपना नाम भी नहीं लिख सकोगे।'

ठीक-ठीक कहें तो वेनेजुएला के प्राथमिक विद्यालयों की पहली चार कक्षाओं में कक्षा दोहराने के रूप में असफलता नजर ही नहीं आनी चाहिए। फिर भी परंपरागत विद्यालयों में हमने कई ऐसे बच्चे देखे जो अपनी उम्र के हिसाब से लगता था कि शायद एक से ज्यादा कक्षाएं दोहरा चुके हैं। कुछ भी हो, विषय के अलग-अलग हिस्सों में ये अभी भी असफलता का सामना कर रहे थे। उनकी असफलता को लेकर जिम्मेदारी का निश्चय अलग-अलग ढंग से किया जाता था, मगर बच्चों ने अकसर हमसे कहा कि इसके लिए उनकी अध्यापिकाएं दोषी हैं। तो भी नीचे दी गई घोषणाएं उनकी समझ की अंतर्विरोधी प्रकृति को सामने लाती हैं : 'मेरा दोष है। अगर मैं गलत व्यवहार करूं तो मेरे माता-पिता को बुलवा लिया जाएगा। अपने लिए जिम्मेदार मैं खुद हूं; जो मैं अपने साथियों के साथ करता हूं उसके लिए भी। हरेक को अपना काम पूरा करने की कोशिश करनी चाहिए और कक्षा दोहराना नहीं चाहिए। मैं कुछ सीखूंगा और जो कुछ वे (अध्यापिका) कहती हैं उस पर ध्यान दूंगा, चाहे जिस तरह दे सकूं।'

अधिकांश बच्चे असफल होने को वही चीज समझते थे : पीछे रह जाना, 'न्यूनतम' प्राप्तांक न पा सकना, और जैसाकि पिछले उदाहरण से स्पष्ट है, यह दुःख कि उन्हें अभिभावक या अध्यापिका की 'बात सुननी पड़ती' है। इसलिए शायद उन्होंने कक्षा में प्राप्त विभिन्न संदेशों से जो नतीजा निकाल रखा था, वह यह था कि अगर उन्होंने कुछ और मेहनत की होती तो उन्हें ऐसे अनुभव से गुजरना नहीं पड़ता।

निष्कर्ष

इस अध्याय का समापन असफलता संबंधी विचारों के साथ हुआ है। फिर भी यह नतीजा

नहीं निकालना चाहिए कि हम जिन विद्यालयों में गए और जिन अध्यापकों से मिले, बच्चों की असफलता के प्रति सरोकारहीनता उनकी प्रमुख विशेषता थी। परंपरागत विद्यालयों में हमने कुछ अधिक खुश्क प्रकार के अधिगम की वस्तुगत स्थितियां भी देखीं। यहां बुनियादी विद्यालयों की अपेक्षा दोहराकर पढ़ाने वाले और कसरत कराने जैसे कार्य कहीं अधिक निरंकुश ढंग से कराए जाते थे। मगर अधिगम के ये रूप काफी हद तक वही थे जिन्हें अध्यापक बच्चों को पढ़ना, लिखना और गिनना सिखाने के लिए उपयुक्त समझते थे। ये न्यूनतम संज्ञानात्मक उद्देश्य बुनियादी विद्यालयों के भी थे हालांकि, मिसाल के लिए, रचनात्मक और सामुदायिक विद्यालयों में दूसरे विषय भी पढ़ाए जाते थे जो बच्चों के लिए अधिक व्यावहारिक तो थे ही आकर्षक भी थे। इसके अलावा हमने अध्यापन की उच्चार शैली में भी अधिक भिन्नताएं देखीं।

अध्यापकों, बच्चों और अभिभावकों से बातचीत करके तथा कक्षा और विद्यालय के जीवन को देखने के बाद जो चिंताजनक विचार हमारे मन में आता है वह यह नहीं कि असफलता के लिए अध्यापक जिम्मेदार हैं, बल्कि यह है कि इस परिणाम में वे किस प्रकार योगदान देते हैं, इसका उन्हें एहसास तक नहीं है। हमने जिन अध्यापकों से बातचीत की उनमें से अधिकांश अध्यापक बच्चों के प्रति चिंतित तथा उनके काम को लेकर कमोबेश कुंठित लगे। लेकिन बच्चों को संबोधित करने और उन्हें सुधारने के विषय में उनके तौरतरीके, तथा इन तरीकों से छात्रों को हतोत्साहित कर सकनेवाले संदेशों का मिलना, ये कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो अभी तक पूरी तरह पड़ताल से बाहर रहे हैं।

टिप्पणियां

1. इस प्रकार के ढांचे का कानूनी आधार ली आर्गेनिका दे एजुकेशियों, 28 जून 1980, तथा छठी राष्ट्रीय विकास योजना (1981-85) में मिलता है. ये दोनों दस्तावेज शिक्षा के नागरिक-सामाजिक उद्देश्यों पर तथा 'सामुदायिक जीवन में सुधार के साधन और राष्ट्रीय विकास की पूर्वदशा' के रूप में उसकी भूमिका पर जोर देते हैं. ये 'कम्यूनिदाद एजुकेतिवा' नाम का एक कानूनी ढांचा खड़ा करते हैं. यह विद्यालय के संचालन के लिए अध्यापकों, अभिभावकों, छात्रों और समुदाय के सदस्यों को लेकर बनाया गया एक संगठन है.
2. लातीनी अमरीका के देहातों के बोर्डिंग स्कूल अकसर गरीब बच्चों के लिए होते हैं तथा अन्यत्र स्थापित निजी बोर्डिंग स्कूलों से बिलकुल मेल नहीं खाते.

6. अध्यापक भिन्न भी हो सकते हैं

(बोलीविया का एक दृष्टांत)

मेरित्जा बी. दे क्रेस्पो

इसे दुनिया के सबसे खूबसूरत स्थानों में गिना जा सकता है, शहर से ऊपर आकाश को लगभग छूता हुआ। यहीं हमें आल्तीप्लेनो के सूबसूरत नजारों के बीच एक विद्यालय मिला जो अन्य विद्यालयों से भिन्न किस्म का था। लेकिन जो अंतर हमने पाया, वह इसकी स्थिति या इमारत के कारण नहीं था; इसलिए कि यह इलाका और विद्यालय दोनों बेहद गरीब थे, जैसाकि हम आगे देखेंगे। उस अंतर का संबंध अध्यापक और छात्र जो कुछ कर रहे थे उससे था और विद्यालय जिस प्रकार आसपास के समुदाय से जुड़ा था, उससे भी था।

पंपाहासी के ये (लगभग 5000) लोग मिट्टी के, अपने हाथों से बनाए, नालीदार टिन की छतों वाले मकानों में रहते हैं। अयमारा और क्वेशुआ मूल के उनके अधिकतर पूर्वज ग्रामीण इलाकों से यह उम्मीद लेकर यहां आए थे कि ला पाज शहर के पास उनकी हालत बेहतर हो जाएगी। अभी हाल तक न यहां बिजली थी और न नल का पानी था। मगर गहन सामुदायिक प्रयासों के फलस्वरूप उन्हें आज ये सुविधाएं प्राप्त हैं। ये लोग जो काम पाते हैं, वे राजमजदूर, खदान मजदूर, नगरपालिका के कर्मचारी अथवा ला पाज के समृद्ध परिवारों में घरेलू नौकर के काम हैं। यह बस्ती संगठन में विश्वास रखती है और यहां चार मुहल्ला समितियां, माताओं के चार क्लब, एक अध्यापक-अभिभावक संगठन, और कई एक फुटबाल क्लब हैं।

विद्यालय की स्थापना कोई पांच साल पहले उसी प्रधानाध्यापक और उन्हीं अध्यापकों ने की थी जो हमारे क्षेत्रकार्य के समय भी यहां काम कर रहे थे। अध्यापकों द्वारा स्वेच्छा से चलाए जा रहे पाठ्यक्रमों समेत तमाम तरह की सामुदायिक गतिविधियों का यह विद्यालय केंद्र है। मसलन हर बुधवार की रात और हर शनिवार की सुबह को विद्यालय उन स्थानीय माताओं के लिए चलता है जो यहां पढ़ना-लिखना सीखने आती हैं। विद्यालय में पढ़ने वाले कुछ बच्चे ही धाराप्रवाह स्पेनी बोल सकते हैं। घर पर वे प्रमुख देसी भाषाएं यानी क्वेशुआ या अयमारा में से कोई एक भाषा बोलते हैं।

प्रस्तुत अध्याय पंपाहासी के विद्यालय और उसके एक अध्यापक-विशेष के बारे में है।

इसके विषय को समझने के लिए हम उस अध्यापन-शैली पर कुछ कहना चाहेंगे जिसे हमने अन्य प्रेक्षित विद्यालयों की अधिकांश कक्षाओं में देखा (विद्यालयों के वर्णन के लिए अध्याय 3 देखें)। उन विद्यालयों में अपने क्षेत्रकार्य के पूरे दो वर्षों के दौरान हमें अलग-अलग पाठों की अध्यापन-शैलियों में बहुत कम अंतर नजर आया। लगभग हर जगह पर शैली यांत्रिक, नीरस और निरंकुशतापूर्ण थी और मुख्य जोर सवाल करने और उत्तर दोहराने पर था। पहली कक्षा के एक वर्ग से लिया गया निम्नलिखित उदाहरण यही दर्शाता है।

अध्यापिका (श्यामपट पर लिखती है) : मा-मा, मा, मे, मि, मो, मू, पा-पा, पा, पे, पि, पो, पू, दे-दो, दि, दो, दा, दु, दे।

अध्यापिका (शब्दों और शब्दांशों की ओर इशारा करके) : अब तुम सब इसे दोहराओ। (श्यामपट पर अध्यापिका की उंगलियों के साथ-साथ बच्चे जोर से दोहराते हैं।)

अध्यापिका : खूब। अब देखना है कि यह कतार क्या उस कतार से बाजी मारती है।

छात्र : (चीख कर दोहराते हैं) : मा-मे...

अध्यापिका : तो हम क्या बातें कर रहे थे ?

छात्र (एक साथ) : वगैरह, वगैरह, वगैरह।

अध्यापिका : वगैरह ? बस ? लिखते जाओ।

अध्यापिका (इमला बोलती है) : 'एक सुखद ध्वनि के माध्यम से...'

अध्यापिका (इमला रोककर) : मैं समझती हूं तुम लोग थोड़ा चित्रकारी करो तो अच्छा है। चाहो तो सारंगी (एक स्थानीय बाजा), प्यानो या गिटार बना सकते हो। (छात्र चित्र बनाने लगते हैं।)

अध्यापिका (थोड़ी देर बाद : कापियां किनारे रख दो। बोलो, ध्वनि किसे कहते हैं ? (अध्यापिका पहले जो इमला बोल रही थी उसी के बारे में बातें करने लगती है।)

अध्यापिका : खामोश ! ध्वनि क्या होती है ?

(छात्र खामोश रहते हैं।)

अध्यापिका : ध्वनि कहते किसे हैं ?

(छात्र आपस में बातें करते हैं मगर जवाब नहीं देते।)

अध्यापिका : शी...शी...मैं तुमसे पूछती हूं।

युआन : एक वस्तु का दूसरे वस्तु द्वारा कंपन।

अध्यापिका : देखते हैं। ध्वनि क्या है, कौन बताएगा ?

(छात्र खामोश रहते हैं।)

अध्यापिका : देखती हूं, कौन बतलाता है कि ध्वनि क्या होती है ?

(छात्र अभी भी खामोश हैं।)

पेद्रो : कंपन...

अध्यापिका (टोककर) : किसका ?

(पेद्रो जवाब नहीं देता।)

राउल : दो वस्तुओं का कंपन।
अध्यापिका : ठीक ! और नाखुशगवार ध्वनियां क्या हैं ?
छात्र : टिन।
अध्यापिका : हां, मगर टिन ही नहीं; रेडियो की चिचियाहट भी शोर होती है...
छात्र : जो सुनने में अच्छा नहीं लगता।
अध्यापिका : बहुत खूब, और खुशगवार ध्वनि क्या है ?
छात्र : एक रिकार्ड।
अध्यापिका : हां। पियानो भी। तो ध्वनि का संप्रेषण कैसे होता है ?

यह उदाहरण प्रश्नोत्तर पर आधारित सिर्फ ऐसे अध्यापन का दृष्टांत नहीं है जिसमें छात्र अभ्यासवश कवायद करते रहते हैं बल्कि प्रायः प्रयुक्त ऐसी निरंकुश अध्यापन-शैली का भी दृष्टांत है जिसमें किसी स्पष्ट उद्देश्य के बिना कक्षा में गतिविधियां बदलती रहती हैं। जैसे इस उदाहरण में इमला से चित्रकला और फिर सवाल की बारी आती है।

अधिकांश प्रेक्षित कक्षाओं की अध्यापन-शैली की स्पष्ट विशेषता यह है कि इसमें उसी प्रकार की अधीनता को बल मिलता है जिस प्रकार इन बच्चों के माता-पिता नगर के (सेवायोजक या सफेदपोश कर्मचारी) 'पेत्रोनेस' के आगे दिखाते हैं। विद्यालय की दैनंदिन गतिविधियों से तथा जिन जुमलों को वे अंतहीन तरीके से दोहराते थे उनमें व्यक्त निश्चित विश्वासों से ही इन बच्चों का परिचय हुआ था। उनको वह संस्कृति सीखनी पड़ती थी जिसे श्रेष्ठतर माना जाता था, मगर अपनी खुद की संस्कृति से कोई सार्थक संबंध स्थापित करने के बारे में उन्हें कोई सहायता नहीं दी जाती थी। यह अधीनता अधिगम की अंतर्वस्तु (कानटेंट) और पद्धति के जरिए ही नहीं उन तक नहीं पहुंचती थी बल्कि पुरस्कार और दंड की व्यवस्था से अनुमोदन भी पाती थी : 'अगर तुम इसे ठीक-ठीक नहीं पढ़ते तो मैं तुम्हें .001 (खराब अंक) दूंगी।'

बच्चों की निष्क्रियता की मुहिम का विरोध करने की कोशिशों को अकसर दबा दिया जाता था।

अध्यापिका (बच्चों से) : मुंह बंद ! मुंह बंद ! एडविन, बातें बंद करो...अब हम लिखेंगे...
छात्र (जोर से इमला में एक शब्द बोलता है) : ऐसो (दिमाग)।
अध्यापिका : नहीं, नहीं। तुम 'टमाटर' लिखोगे, 'टिकटाक' वाले 'ट' से। कभी-कभी बच्चे अपने अधिगम में सुधार की पहलकदमी को बचा भी लेते थे।
(गृहकार्य का सुधार करते हुए अध्यापिका छात्रों से शब्दकोश में एक शब्द ढूंढने को कहती है। हमने एक दल को बातें करते सुना।)
पहला छात्र : जो शब्द ढूंढ ले वही सिकंदर।
दूसरा छात्र : और उसको हम देंगे यह पेंसिल।

छात्र (एक साथ) : ठीक !
दूसरा छात्र : 'प्रधानाध्यापिका' शब्द ढूंढो।
(यह दल तेजी से पन्ने पलटते हुए शब्द ढूंढने लगता है।)
तीसरा छात्र : यह रहा शब्द 'प्रधानाध्यापिका'। मैंने ढूंढा। इनाम मुझे दो।
दूसरा छात्र (पेंसिल देते हुए) : हां, हम इसी तरह खेलेंगे।

हमने जिन अध्यापकों का अध्ययन किया, अधिकांश अध्यापकों की तरह वे भी खुद को अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया के आयोजन का केंद्र समझते थे, हालांकि जरूरी नहीं कि उसके नतीजों की जिम्मेदारी भी वे लेते हों। अध्यापक वहां होने भर की वजह से बच्चों को एक खास तरह से व्यवहार करना सिखाता है। अध्यापक जैसे ही कमरे में आता था, बातचीत, हंसी और हिलना-डुलना सब कुछ एकाएक बंद हो जाता था और छात्र आशा भरी निगाहों से आगामी आदेश की प्रतीक्षा करने लगते थे : 'खामोश, खामोश ! तुम भला अपने-आपको समझते क्या हो ?' यही आवाज तो गतिशीलता को जड़ता और अधीनता में बदल देती है। अध्यापकों की गतिविधियों के अनेक ढंग थे जिनमें निरंकुशता और स्नेह के अनेक मिश्रण भी शामिल थे। लेकिन ज्यादातर वक्त वे कक्षा पर पूर्ण नियंत्रण रखने की कोशिश करते थे और यह तय करते थे कि पाठों में छात्रों को शामिल करें या नहीं, या फिर यह कि छात्र जो कुछ करते थे, उसका अनुमोदन करें या अवमूल्यन करें।

अध्यापिका : सात का पहाड़ा दोहराओ।
(छात्र पहाड़ा दोहराने लगता है।)
अध्यापिका : और जोर से।
(छात्र धीमी आवाज में पढ़ता रहता है।)
अध्यापिका : तबीयत ठीक नहीं है क्या ?
छात्र : जी, गला खराब है।
अध्यापिका (छात्र के और पास आकर) : ठीक है, दोहराते जाओ।

(एक और अवसर पर।)
छात्र : मैं, मैडम ?
अध्यापिका : तुम, खामोश ! चुप्प ! मैं कहती हूं। एलियोदोरो, तुम्हारे कान गंदे हैं!

(एक और अवसर पर।)
अध्यापिका : जूलियो, क्या हो रहा है ? तुम्हें नहीं पता ? मैं श्यामपट पर कुछ नहीं लिखूंगी। मैं इमला बोलने जा रही हूं।
(अध्यापिका श्यामपट पर शब्द 'यान' लिखती है।)
अध्यापिका : यह एक उपशीर्षक है। (इसे वह तीन बार दोहराती है।) क्लादिया, हैट उतारो, इससे तुम्हारा चेहरा ढंक जाता है। इससे तुम कुछ देख भी नहीं सकती। मिगुएल एंजिल, तुम्हें क्या परेशानी है ? दायोनीसियो, तुम क्या सलाह-मश्विरा कर रही हो ?

मेरिएला, वो तुम्हारे दोस्त ! तो यह है उपशीर्षक। बेर्था, एक उपशीर्षक बेर्था...यह एक शीर्षक है। यही वक्त है कि तुम इसे समझो...।

कक्षा में अपने इस अपार वर्चस्व के बावजूद और बच्चों को लगभग मजबूर करके अधीनता स्वीकार कराने के बावजूद अध्यापकगण सिद्धांततः यह मानते थे कि नेक छात्र चुस्त होता है, प्रश्न पूछता है, और रचनात्मक अधिगम का उदाहरण होता है। इस छवि को दिमाग में रखकर वे अपने आदर्श छात्र और वास्तविक छात्र के अंतर को उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि की सीमाओं से उत्पन्न बतलाने लगते थे।

अध्यापिका (कुछ सीखने में दिक्कत महसूस कर रहे छात्र का हवाला देती है) : इस बच्चे के साथ घर पर कुछ परेशानी है, परिवार में। मदद नहीं पाता तो लगता है उसे कुछ बुरे सपने आते हैं। दूसरा मामला उस लड़के का है जो पहली कक्षा में ही दोबारा रह गया...और अब, वह है तो दूसरी में मगर पढ़ना-लिखना सीख नहीं पाया। मेरा खयाल है, उसके घर में कोई परेशानी है।

हमें काफी हद तक ऐसा लगता रहा कि अध्यापक किसी छात्र की अस्वस्थकर पृष्ठभूमि को उसकी असफलता का कारण मानते थे, मगर जो कुछ विद्यालय में पढ़ाया जाता था, उससे छात्र अपने पारिवारिक और निजी अनुभवों को जोड़ सकें, इसमें वे मदद देने की कम ही कोशिश करते थे। कुछ ही छात्रों ने प्यानो देखा होगा और इस कारण प्यानो का उदाहरण देना असंगत लगता था। हजार पेसो (स्थानीय मुद्रा) के नोट के हवाले के साथ भी यही बात थी।

मेरिया : हमारी दुकान पर कोई खरीददारी के लिए हजार पेसो का नोट नहीं लाता।
युवान : क्या हजार पेसो के नोट भी होते हैं ?
अध्यापिका ने कहा, 'लुई पढ़ने में सिफर है और लिखने में सिफर है।' फिर भी लुई का जीवन ऐसा था कि उसमें दायित्वपूर्ण विद्यालयेतर कार्यकलाप शामिल थे और उसने बाहरी दुनिया की घटनाओं में दिलचस्पी का परिचय भी दिया।
प्रश्नकर्ता : पढ़ना चाहते हो न, कि नहीं ?
लुई : हां, लेकिन कक्षा में नहीं। मुझे अपने पाठ अच्छे नहीं लगते।
प्रश्नकर्ता : पाठ क्यों अच्छे नहीं लगते ?
लुई : इसलिए कि नीरस होते हैं। हमेशा वही बातें। फिर मैडम भी हमेशा वही बातें दोहराती हैं।
प्रश्नकर्ता : हूं, तो तुम्हारी अध्यापिका हैं कैसी ?
लुई : भली हैं, बहुत भली हैं, मगर कुछ जानती नहीं।
प्रश्नकर्ता : नहीं जानतीं ? वह भला क्या है जो नहीं जानतीं ?
लुई : उस दिन किसका कत्ल हुआ, यही नहीं जानतीं।
प्रश्नकर्ता : किसका कत्ल हुआ ?

लुई : आप भी उन्हीं जैसे हैं। वही आदमी जिस पर परेड के बीच बम फेंका गया था।
प्रश्नकर्ता : अरे, हां, सादात। तुम्हें पता है उन्हें क्यों मारा गया ?
लुई : हां, इसलिए कि वह 'ग्रिंगोज' (अमरीकियों) का दोस्त था।
प्रश्नकर्ता : और तुम्हारी अध्यापिका यह बात नहीं जानतीं ?
लुई : नहीं। उन्हें इन बातों के बारे में कुछ कहना अच्छा नहीं लगता।
प्रश्नकर्ता : ऐसा भला क्यों कह रहे हो ?
लुई : इसलिए कि जब भी मैं उनसे बातें करने की कोशिश करता हूं, कहती हैं 'शी...अच्छा है तुम चुप ही रहो।'
(बाद में)
प्रश्नकर्ता : अपनी अध्यापिका से बातें करते हो ?
लुई : नहीं।
प्रश्नकर्ता : वो क्यों ?
लुई : इसलिए कि नहीं कर सकता।
प्रश्नकर्ता : क्यों ?
लुई : इसलिए कि नहीं... बस कभी-कभी।
प्रश्नकर्ता : हूं, कभी-कभी। और तब तुम बातें किसके बारे में करते हो ?
लुई : बस पाठों के बारे में। कुछ याद नहीं आता।
प्रश्नकर्ता : वो तुम्हारे गृहकार्य के बारे में बातें करती हैं ?
लुई : नहीं, सिर्फ मेरी कापी दुरुस्त करती हैं।
प्रश्नकर्ता : और जब वो कापी देखती हैं तो क्या कहती हैं ?
लुई : कुछ रोज 'गलत'। कुछ रोज 'ठीक'।
प्रश्नकर्ता : और वो तुम्हें श्यामपट तक बुलाती हैं ?
लुई : सिर्फ एक बार बुलाया है ?
प्रश्नकर्ता : इस साल सिर्फ एक बार ?
लुई (स्वीकार में) : म... म... म।

(बाद में)
प्रश्नकर्ता : तुम अपने पापा से बातें करते हो ?
लुई : हां।
प्रश्नकर्ता : किस बारे में ?
लुई : पढ़ाई, जोड़-घटाना के बारे में।
प्रश्नकर्ता : फुटबाल, अपने घर या दूसरी चीजों की बातें नहीं करते ?
लुई : नहीं, कभी-कभी बस फुटबाल के वारे में।

(बाद में)
प्रश्नकर्ता : किससे बातें करना बेहतर समझते हो ?
लुई : अपने दोस्तों से।

(बाद में)
प्रश्नकर्ता : शनिवार और इतवार को विद्यालय नहीं आते तो क्या करते हो ?
लुई : थोड़ा-सा खेलता हूं, फिर पापा के साथ आल्तो जाता हूं।
प्रश्नकर्ता : आल्तो ? वहां तुम्हारा घर है क्या ?
लुई : नहीं, घर नहीं है वहां। मैं वहां मशीनें बेचने जाता हूं।
प्रश्नकर्ता : तुम मशीनें बेचते हो ? तुम पापा के काम में मदद करते हो ?
लुई : हां मशीनें बेचने में।
प्रश्नकर्ता : और मशीन का दाम कितना होता है ?
लुई : लगभग आठ हजार पेसो में बिकती है।
प्रश्नकर्ता : ये मशीनें है किस तरह की ?
लुई : सिलाई मशीन।

प्रेक्षण से प्राप्त सामग्री और साक्षात्कारों के ब्यौरों पर मनन करने के बाद हमने आसानी से उस शक्ति-संरचना के स्वरूप का पता लगा लिया जो इन बच्चों के वयस्क होने पर समाज में उनकी भूमिका को बल पहुंचाती है और यह समाज वही है जो निर्धन और देसी समूहों की भागीदारी को कम करती है। उनके जीवन की परस्पर-विरोधी सांस्कृतिक शक्तियों का पता लगाना भी आसान था; यानी विद्यालय या नगरीय संस्कृति और अयमारा समुदाय[1] की शक्ति का। ये उदाहरण संकेत देते हैं कि अयमारा बच्चों का भाग्य बहुत पहले, प्राथमिक चरण में ही गढ़ दिया जाता है, जब उन्हें कस्बों के स्पेनी संस्कृति की श्रेष्ठता जताई जाती है और उनका इस तरह समाजीकरण किया जाता है कि वे यह मान लें कि अपने सांस्कृतिक मूल के कारण ही वे उस संस्कृति के दास हैं। संक्षेप में यह कि विशिष्ट प्रत्युत्तर का तकाजा करनेवाली निरंकुश, एकतरफा संचार पद्धति के गवाह के रूप में हमने यह बात भी समझी कि आज्ञाकारी और आलोचना विहीन बनना तथा अपने माता-पिता की तरह खामोश रहना भला क्यों इन बच्चों को आसान लगता है।

दोनों दुनियाओं की दूरी की एक बढ़िया मिसाल एक विद्यालय में माताओं के क्लब की एक मीटिंग में देखने को मिली। इस मीटिंग में शरीक स्त्रियां तीन सुस्पष्ट समूहों में विभाजित थीं। सिर्फ स्पेनी बोलने और स्कर्ट पहननेवाली स्त्रियां कमरे के केंद्र में बैठीं। ये ही ऐसी थीं जो बोलीं और जिन्होंने मीटिंग के परिणाम को प्रभावित किया। कमरे की हर दीवार के साथ आगे की ओर फर्श पर बैठी स्त्रियां स्पेनी और अयमारा बोलनेवाली थीं। वे केंद्र में बैठी स्त्रियों से स्पेनी में और आपस में अयमारा में बातें कर रही थीं। कमरे में पीछे की ओर फर्श पर बैठी स्त्रियां इंडियन 'पोलेरा' (पूरा स्कर्ट) पहने हुए थीं और सिर्फ

अयमारा बोलती थीं। मीटिंग के दौरान या दूसरे समूहों की स्त्रियों से ये स्त्रियां बोलीं ही नहीं; वे सिर्फ आपस में बातें करती थीं।

एक विद्यालय में एक बच्चे की मां ने समाज के निचले वर्गों से संबंधित होने और इस प्रकार प्रभावहीन होने की भावना को व्यक्त किया :

> हां, अध्यापिकाओं से मेरे अच्छे ताल्लुकात हैं। मैं एक मामूली स्त्री हूं और पलट कर जवाब नहीं देती। जब वे (अध्यापिकाएं) हमें 'क्योटा' (विद्यालय के कार्यकलापों के लिए धन) की जरूरत बतलाती हैं तो मुझे तर्क करना अच्छा नहीं लगता। वे सिर्फ यह बतलाती हैं कि कितना देना है और मैं दे देती हूं।

पंपाहासी में अध्यापन : एक अलग शैली

सेन्योरा रोजा खुशनसीब थीं। उसका कस्बों का अध्यापक-जीवन एक ऐसे विद्यालय में शुरू हुआ जहां छात्रों के हित में पहले से प्रचलित परंपराओं के बदलने की इच्छा दिखाई देती थी। वहां दो साल का 'प्रशिक्षण' पूरा करने के बाद वे एक और कस्बाती विद्यालय में चली गईं, जहां उन्होंने अध्यापन की नई तकनीकों को आजमाया : 'नन लोगों' ने मुझे सामूहिक अध्यापन की छूट दी। वे निजी देखरेख पर जोर देती थीं। हम अभिभावकों के साथ मिलकर काम करते रहे और शैक्षिक गतिविधियों में भी उनको शामिल करते रहे।' केवल 7 वर्षों के अनुभववाली युवा अध्यापिका के रूप में और विद्यालय के उत्साहवर्धक वातावरण में रहने के कारण सेन्योरो रोजा उस कुंठा से मुक्त थी जिससे उसके कुछ सहकर्मी त्रस्त रहे।

हमें सेन्योरा रोजा जिस विद्यालय में मिली उसके प्रधानाध्यापक एक खुशदिल और गंभीर शिक्षक थे। हमें जो भी अध्यापक मिले वे उन थोड़े से अध्यापकों में से थीं जिन्हें हमने अपने काम के साथ खुश पाया :

> हां, मैं खुश हूं। शुरू से ही, जब मैं अध्यापक हुआ तभी से मैंने शिक्षा की सेवा और अच्छा कार्य करने की कोशिश की है... मुझे निर्धन मुहल्लों में काम करना अच्छा लगता है क्योंकि मैं खुद को ऐसी स्थितियों में ढाल सकता हूं। मैं उसी संस्कृति से आया हूं। इसलिए आप कह सकते हैं कि मैं तालमेल बिठा सकता हूं, बातें कर सकता हूं, देसी भाषा में बोल सकता हूं।

जब हमने सेन्योरा रोजा के पाठों का अवलोकन किया तो वे एक ही कमरे में चौथी और पांचवीं कक्षा के दो वर्गों को पढ़ा रही थीं। उनके पास चौथी कक्षा के 30 और पांचवीं के 13 छात्र थे और उन पर तीसरी कक्षा के एक समूह की जिम्मेदारी भी थी। उनकी अध्यापन-शैली दूसरी कक्षाओं में प्रयुक्त प्रश्नोत्तर शैली जैसी ही थी। लेकिन हमने पाया कि वे अपने प्रश्नों को सार्थक और प्रासंगिक बनाने के लिए तथा पाठ में छात्रों के योगदान

के प्रति काफी चिंतित थीं।

अध्यापिका : पहली संख्या, पहली। कौन सी है ?
छात्र (कुछ छात्र एक स्वर में) : एक।
अध्यापिका : और दूसरी ?
छात्र (कुछ और छात्र एक स्वर में) : दो।
(अध्यापिका के 10 तक पहुंचने तक यही सिलसिला जारी रहा।)
अध्यापिका : और ग्यारह, यह कौन सी संख्या होगी ?
छात्र (कई छात्र एक स्वर में) : ग्यारहवीं।
अध्यापिका : और बीस ?
छात्र (सोचते हुए) : ऊं-ऊं-ऊं।
लड़की : बीसवीं।
(अंग्रेजी की तुलना में स्पेनी में 'बीस' से 'बीसवी' में संक्रमण ज्यादा मुश्किल है।)
लड़का : दो दस्सी।
अध्यापिका : एमा ने जो कहा है सही है, मगर उसे यह बात सावधानी के साथ बोलनी चाहिए।
(अध्यापिका 'व' की ध्वनि का सही उच्चारण बतलाती है जो स्पेनी में 'ब' की ध्वनि के साथ गड्डमड्ड होता रहता है।)
लड़का : आप हमें बीस, तीस, चालीस पढ़ाएंगी ?
अध्यापिका : हां, हम आगे भी बढ़ेंगे। तो तीस कौन सी संख्या हुई ?
लड़का : तीसवीं।
अध्यापिका : बहुत उम्दा, मगर मेरे साथ तीसवीं दोहराओ।
अध्यापिका : तुम्हें याद है कि कार दौड़ में दसवें नंबर पर कौन था ?
(उनका संदर्भ पिछले इतवार की कार दौड़ की तरफ है।)
(छात्र पल भर खामोश रहते हैं।)
लड़का : कार्लोस चीनी।
अध्यापिका : तीसवें नंबर पर कौन रहा ?
(छात्र खामोश रहते हैं।)
अध्यापिका : खैर, पता लगा लेना। तुम्हें इसके लिए अखबार पढ़ना होगा। तुम पहली, दूसरी, तीसरी, या चौथी क्यों बोलते हो ?
लड़का : लिखना सीखने के लिए।
एक और लड़का : इसलिए कि इसमें एक क्रम है।
एक लड़की : हां, क्रम के लिए।
अध्यापिका : हां, हम जानते हैं कि इन संख्याओं के सहारे हम एक क्रम पैदा करते हैं और इसीलिए इनको क्रमसूचक कहते हैं।

अध्यापिका : अब हम उस क्रम को देखेंगे जिस क्रम में तुम लोगों ने अपना रचना-कार्य पूरा किया है। (वे पहले इसी कार्यकलाप में लगे हुए थे।)

अनेक बातें इस उदाहरण को असाधारण बनाती हैं। पहली बात, जब बच्चे क्रमसूचक-संख्याओं के नाम लेते हैं तो उन्हें जिन परिवर्तनों का ध्यान रखना चाहिए, इसके बारे में अध्यापिका उन्हें आगाह करती है। स्पेनी में उन्नीसवां से बीसवां पर आएं तो उपसर्ग बदल जाता है; साथ ही इससे आगे की क्रमसूचक संख्याओं को कैसे नाम दिए जाएं, यह तय करने की तार्किकता भी बदल जाती है। अध्यापिका जब ग्यारहवीं पर पहुंचती है तो रुक जाती है और सवाल पर जोर देती है। बच्चों का यह जानना जरूरी है कि वे पहली दस क्रमसूचक संख्याओं के लिए तो गणना सूचक संख्याओं में ही उपसर्ग 'इमो' या 'एवो' लगाते हैं मगर जब वे बीसवीं पर पहुंचते हैं तो उन्हें एक नितांत नया शब्द 'विगेसिमों' का प्रयोग करना पड़ता है और इसी प्रकार बढ़ते हुए 'त्रिगेसिमों' (तीसवीं), क्वाद्रागेसिमो (चालीसवीं) आदि कहना पड़ता है। दूसरे, अध्यापिका बच्चों के अनुभव-जगत के लिए प्रासंगिक उदाहरण देकर पाठ का अभ्यास कराती है। मसलन वह पिछले हफ्ते की कार-दौड़ के विजेता का हवाला देती है जिसके बारे में बस्ती के ज्यादातर बच्चे जानते होंगे। अंतिम बात, उसकी प्रश्न की पद्धति तथ्यात्मक ज्ञान पर कम और तर्कबुद्धि पर अधिक निर्भर है; साथ ही वह बच्चों को नई जानकारी देती है या यह बताती है कि जानकारी कैसे पाई जाए : 'एदेला, पता लगा लेना। तुम्हें इसके लिए अखबार पढ़ना होगा।'

इस अध्याय के आरंभ में एक व्यतिरेकी (कॉनस्ट्रास्टिंग) टुकड़ा पेश किया गया है जहां इमला जैसी गतिविधियों को कर्मकांड का रूप दे दिया गया है, वे हैं : कार्यकलाप में मनमाने परिवर्तन, बच्चों के अनुभव-जगत से असंबद्ध (प्यानो जैसे) उदाहरण तथा एक पूर्वनिर्धारित सांचे में बच्चों के प्रत्युत्तर को जबर्दस्ती ढालने की कोशिश जैसी बातें पाई जाती हैं।

अखबार पढ़ना ऐसा कार्य था जिसे सेन्योरा रोजा प्रोत्साहित करती थीं, भाषा के ज्यादातर कौशल विकसित करने के लिए बच्चों से कहती थीं कि वे जिन खबरों को अहम समझते हों उनकी कतरन काटकर लाएं और जब वे लाते थे तो उन पर कक्षा में बहस होती थी। वे नेतृत्वकारी भूमिका और निजी दायित्व पर आधारित सामूहिक गतिविधियों को भी बढ़ावा देती थीं। मूक अभिनय इसका अच्छा उदाहरण था। बच्चों को क्या करना चाहिए, यह दिखाने के बाद सेन्योरा रोजा उनसे कहती थीं कि 8-8, 10-10 के समूह बनाकर अपने-अपने प्रतिनिधि चुन लें। इन समूहों को मूक अभिनय के द्वारा एक कहानी प्रस्तुत करनी पड़ती थी और बाकी कक्षा यह पता लगाती थी कि यह कहानी किसके बारे में है। बच्चों को रेखाचित्र बनाने का समय देने के बाद वे हर समूह से अभिनय कराती थीं।

अध्यापिका : शुरुआत तीतो के समूह से हो।
(यह समूह अपना अभिनय प्रस्तुत करता है।)
अध्यापिका (शेष कक्षा से) : तुमने क्या देखा ?

लड़का : वो जंगल में गए, थक गए, खाया-पिया, पीठथैले भरे, वापस आए, शराब पी, और देर रात गए सो गए।

अध्यापिका : और कौन बताएगा कि उसने क्या देखा ?

लड़का : वे जंगल में गए, खूब चले, सैंडविच खाई, शराब पी और सो गए।

अध्यापिका : अब क्या तुम लोग इस समूह के अभिनय पर टिप्पणी करोगे ? मसलन, किसने कुछ नहीं किया, किसने काम नहीं किया, किसने गलती की। खासकर यह कि किसने थकान, प्रसन्नता, प्यास, भूख आदि को चेहरे से बेहतर ढंग से व्यक्त किया।

सांद्रा : ह्यूगो का सबसे अच्छा था।

तीतो : लड़कियां बातें करती रहीं। अपने पीठथैले भी नहीं ढोए। कुछ भी नहीं किया। ह्यूगो और वाल्तर का सबसे अच्छा रहा।

अध्यापिका : अब यह समूह ही हमें समझाए कि वह क्या दिखाना चाहता था।

बच्चों की कल्पना शक्ति और वर्णन कौशल को प्रेरित करना इस गतिविधि का स्पष्ट उद्देश्य था। लेकिन जब तक हम यह नहीं समझते कि इस कक्षा के बच्चे मामूली स्पेनी ही बोल सकते थे और एक अलग-थलग बस्ती में रहते थे तब तक ऐसी गतिविधियों के पूरे महत्व को जान पाना मुश्किल है। साथ ही कलाकारों के अभिनय के अंत में और लड़कियों की निष्क्रियता जैसी मिसालों में आलोचना के लिए तथा प्रदर्शन के अर्थ की व्याख्या जैसी मिसालों में कुछ कार्यों के कारण ढूंढने के लिए अवसर भी दिए जाते थे।

सेन्योरा रोजा की अध्यापन की धारणा का अन्वेषण करने के लिए कक्षा में उनकी शैली के अवलोकन पर ही हम लोग निर्भर नहीं रहे। इसके लिए हमने उनकी कक्षा से बाहर की गतिविधियों का, अभिभावकों, प्रधानाध्यापक और अन्य अध्यापकों से उनके संबंधों का, तथा बच्चे जो कुछ उनके बारे में कहते थे उसका भी प्रेक्षण किया। हमने उनके शिक्षा संबंधी विचारों पर भी गौर किया। हमने देखा कि इस अध्ययन में शामिल अन्य अध्यापकों की अपेक्षा सेन्योरा रोजा के अपने प्रधानाध्यापक से बेहतर कामकाजी संबंध थे। मसलन सेन्योरा रोजा अपने प्रधानाध्यापक की इस बात से सहमत थीं कि पाठ्यचर्या अध्यापन-कार्य का ढांचा भले हो, उसका दासवृत्ति से पालन करना जरूरी नहीं है :

> मेरा खयाल है कि यह (पाठ्यचर्या) सुविचारित है मगर विभिन्न परिवेशों से यह ठीक से जुड़ा हुआ नहीं। इसलिए जो जरूरी है, वह हमें इससे लेना चाहिए, यह देखते हुए कि इस इलाके की और इसके छात्रों की जरूरत क्या है। यकीनन मुझे पता है कि इनमें से 20 प्रतिशत छात्र भी विश्वविद्यालय तक नहीं पहुंचेंगे, मगर इसीलिए तो हम जरूरत से ज्यादा सावधानी बरतते हैं ताकि वे चार बुनियादी गतिविधियों को सीख सकें, ताकि अगर उन्हें आलू बेचना पड़े तो भी अपनी जीवनरक्षा कर सकें। हमारा सरोकार इससे भी है कि वे लिखना, नापना-तौलना और खुद कुछ सोचना और व्यक्त करना भी सीखें...।

बच्चों को उचित ढंग से शिक्षा देने के लिए पहले उन्हें समझना पड़ता है, अपने इस विश्वास के कारण सेन्योरा रोजा ने अपने फुरसत के वक्त के लिए पास के एक चिकित्सा केंद्र में अधिगम की अशक्तता के पाठ्यक्रम में प्रवेश ले लिया। पाठ्यक्रम के दौरान उन्होंने जो कुछ सीखा उसे अपने विद्यालय के सहकर्मियों को भी थोड़ा-बहुत बताने का प्रयास किया। विद्यालय ने भी इसी प्रकार के प्रयास किए और अधिगम की अशक्तताओं या अक्षमताओं अथवा अन्य संबद्ध समस्याओं वाले बच्चों के निदान के लिए उसी चिकित्सा-केंद्र की सेवाएं लेने लगा।

अभिभावकों से जुड़ना सेन्योरा रोजा का एक विशेष सरोकार था। दूसरे विद्यालयों के अधिकांश अध्यापक अभिभावकों को 'गैरजिम्मेदार, बातचीत के अयोग्य, विद्यालय के कार्यकलापों में भागीदारी से विमुख' होने का दोष लगाते थे जो 'अपने बच्चों पर बेहद कम ध्यान देते हैं, जो बच्चों को अपनी मनमानी करने देते हैं।' सेन्योरा रोजा का विचार इससे भिन्न था : 'अभिभावकों से हमारे बड़े अच्छे संबंध हैं; उनसे हमारे काफी संपर्क हैं, वे बहुत खुले दिमाग के हैं, मुझ पर भी थोड़ा-बहुत भरोसा करते हैं आदि।'

सेन्योरा रोजा अपने बच्चों के लिए विद्यालय की और बाकी दुनिया (मुहल्ले और परिवार) की घटनाओं के बीच पुल का काम करती थीं। अभिभावकों का विश्वास उन्होंने जीता था और इस कारण रोजा से वे लोग अपनी पारिवारिक स्थिति की चर्चा भी कर लेते थे। साथ ही विद्यालय में उनके बच्चों के साथ वे क्या-क्या करती थीं, इसे भी थोड़ा-बहुत जानने-समझने में रोजा उनकी सहायता करती रहीं।

इस अध्यापिका के साथ अपनी पूरी बातचीत के दौरान हम बच्चों के प्रति उसके ध्यान और व्यक्ति-रूप में इन बच्चों के महत्व में उसके विश्वास को देखने में कामयाब रहे। यह रवैया उस अपमानजनक रवैए से एकदम भिन्न था जो दूसरी कक्षाओं में हमने देखा था। जब एक अध्यापिका ने एक बच्चे से कुछ कहा तो उसकी मां ने जो कुंठा झेली उसमें इन अपमानजनक रवैयों का निचोड़ दिखाई है :

> मास्टरनी खराब है। उससे कहती है, 'तू गधा है।' मेरा खयाल है उन्होंने बोरिस को सदमा पहुंचाया है...उससे कहा गया 'तू गधा है' और हो गया... बोरिस एक दिन मेरे पास आया और बोला, 'मम्मी, मैं गधा हूं; अब मैं स्कूल नहीं जाऊंगा।'

सेन्योरा रोजा का खयाल था कि 'अध्यापक के रूप में हमें अपने बच्चों से सम्मान और स्नेह का व्यवहार करना चाहिए; वे भी इनसान हैं; हम यह जानते हैं कि नहीं ?' वे इसे भी अहम समझती थीं कि 'जो कुछ वे सोचते, महसूस करते, झेलते हैं, उसे भी जाना जाए। हमारे ये बच्चे बहुत से दुख झेलते हैं और लगता है कि हम अध्यापक यह बात नहीं जानते। यही कारण है कि हम उनसे सख्ती बरतते और उन्हें डांटते-फटकारते हैं...।' किसी और में विश्वास करने का मतलब है व्यक्ति रूप में उसके अधिकारों को स्वीकार करना, तब भी जब वह कोई आलोचना करें :

> मुझे बच्चे बहुत पसंद हैं, इसलिए कि वे बहुत जीवंत होते हैं और जब मेरे देर से

आने पर (वे बहुत दूर रहती हैं) वे मुझे डांटते हैं तो मुझे भला लगता है। मैं उनको अपनी आलोचना करने की, यह बतलाने की छूट देती हूं, कि मैं यह या वह काम नहीं कर पाती... मैं कभी-कभी उनसे कहती हूं कि वे एक बजे तक रुकें (सामान्यतः वे बारह बजे चले जाते हैं) और वे अगर चाहें तो नहीं कह सकते हैं, 'हम घंटी बजते ही चले जाएंगे।' अगर बच्चे भयभीत न हों, जवाब दें, सवाल करें तो मुझे अच्छा लगता है।

जाहिर है कि बच्चों को अपनी राय जाहिर करने की बल्कि आलोचना करने की छूट देना पेशेवर सुरक्षा की भावना का सूचक है। वास्तव में सेन्योरा रोजा इस बारे में आश्वस्त लगती थीं कि उनके कार्य बच्चों और विद्यालय, दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं। उनके छात्र भी इस रवैए के प्रशंसक थे। हमने ग्यारह वर्ष के एक बच्चे से पूछा कि क्या उसे विद्यालय अच्छा लगता है।

लड़का : हां, मैं यकीनन बहुत से काम कर सकता हूं।
प्रश्नकर्ता : क्या-क्या ?
लड़का : वो... खेल सकता हूं, सीख-पढ़ सकता हूं, हंस और खेल सकता हूं।
प्रश्नकर्ता : कैसे कर सकते हो यह सब ? तुम्हारी अध्यापिका तुम्हें डांटती नहीं ?
लड़का : मैडम ? नहीं, वो तो हमेशा की भली हैं। वे भी हंसती हैं; कहती हैं कि हमें बातें करनी चाहिए और 'कुछ बनना चाहिए; इसीलिए तो तुम यहां हो, कुछ बनने के लिए,' और मैं ऐसा ही हूं।
प्रश्नकर्ता : तुम्हारी अध्यापिका तुम्हारे माता-पिता को जानती हैं ?
लड़का : मेरी मां को, हां। मेरे पापा यहां नहीं हैं, वो आल्तो बेनी में काम करते हैं।
प्रश्नकर्ता : वो तुम्हारी मम्मी से ज्यादा बातें करती हैं ?
लड़का : मेरी अध्यापिका ?
प्रश्नकर्ता : हां।
लड़का : हां, वे मेरे घर गईं और पढ़ाई के लिए आने को कहा। (वह साक्षरता की कक्षाओं का हवाला देता है।)
प्रश्नकर्ता : और अगर तुम्हारी मम्मी पढ़ने आएं तो तुम्हें अच्छा लगेगा ?
लड़का : मेरी अध्यापिका के पास, हां; दूसरों के पास, नहीं।
प्रश्नकर्ता : दूसरों के पास क्यों नहीं ?
लड़का : इसलिए कि दूसरे बुरे लोग हैं।

इस बच्चे का फैसला सीधा और ठोस था : अध्यापक 'अच्छे' होते हैं या 'बुरे' होते हैं। लगता है कि वह इस वक्तव्य में बहुत सारी भावनाओं और अनुभवों को समेटे हुए है। वह चाहता था कि उसकी मां अच्छी अध्यापिका के पास आकर उसके ही जैसा अनुभव प्राप्त करे, दूसरे अध्यापकों के पास जाकर नहीं, क्योंकि इस तरह वह दुखी ही हो सकती है।

सफलता और असफलता, अनुशासन तथा ज्ञान के संप्रेषण की विधि के बारे में सेन्योरा रोजा के विचार शिक्षा की भूमिका पर उसके विचारों को रेखांकित करते हैं। दूसरी ओर वह मानती थी कि विद्यालय में किसी बच्चे या बच्ची की सफलता काफी हद तक उसके पारिवारिक पृष्ठभूमि से निर्धारित होती है :

भोजन की कमी, सांस्कृतिक वातावरण का अभाव क्योंकि बहुत से बच्चों के पास जो पुस्तकें विद्यालय में वे इस्तेमाल करते हैं, उनके अलावा कोई पुस्तक नहीं होती और जो कुछ हम विद्यालय में उनसे बतलाते हैं उससे ज्यादा कुछ और वे जानते भी नहीं; उनको तो चिड़ियाघर जाने का मौका भी नहीं मिलता।

दूसरी ओर वह यह भी मानती थी कि अध्यापक भी गलती पर थे। अगर बच्चा गृहकार्य न करे तो जरूरी नहीं कि वह असफलता का नमूना हो, खासकर वैसी हालत में जब उसे विद्यालय के बाद 'काम पर जाना पड़ता हो।' निजी या आर्थिक कारणों से शिक्षा पूरी न करने वाले छात्र असफल नहीं कहे जा सकते। जब तक विद्यालय में बच्चों को व्यक्ति माना जाता है और उनको आवश्यक बुनियादी कौशल प्रदान करने का प्रयास किया जाता है, कोई असफलता नहीं कही जा सकती। इस तरह डिप्लोमा और पुरस्कार सफलता के सूचक नहीं हैं :

... नहीं, इसलिए कि पुरस्कार, विजेता अच्छे छात्र के पास वे सभी चीजें रही हों तो उसे अच्छा छात्र बनाने के लिए आवश्यक हैं, जैसे याददाश्त, बुद्धि। लेकिन अपुरस्कृत बच्चा भी एक उत्कृष्ट व्यक्ति हो सकता है। हो सकता है वह मनन करता हो मगर इम्तहानों में वैसे जवाब न दे सकता हो जैसा हम चाहते हैं, यानी रट्टा मारकर। या फिर यह हो सकता है कि वह जिस तरह चीजों को समझता है हम उसे नहीं समझते हों। विद्यालय में अनुशासन का मतलब सिर्फ कतार बनाना और खामोश रहना नहीं है; इसका मतलब यह भी नहीं कि बच्चे बिना हिले-डुले बैठे रहें। मेरा खयाल है कि कक्षा में बच्चों की व्यवस्थित भागीदारी, उनका बातें करना, उनका आपस में कुछ कहना-सुनना ही अनुशासन है, और मैं समझती हूं कि इसे मैंने थोड़ा बहुत लागू किया है।

इस विषय पर हमने जो कुछ दूसरी कक्षाओं में देखा और जो कुछ दूसरे अध्यापकों से सुना उससे सेन्योरा रोजा के विचार एकदम विपरीत थे :

अनुशासन यह है कि बच्चों को जब बातचीत बंद करने, बैठने, खामोश रहने को कहा जाए तो वे अध्यापक की बात मानें। जब मैं अपनी बात समझाऊं तो कक्षा पूरी तरह खामोश रहे। जब मैं किसी को बातें करते देखती हूं तो उससे एक सवाल पूछ लेती हूं... अनुशासन बनाए रखने के लिए।

बच्चे जब तक विद्यालय में पढ़ें (चाहे जितने समय तक पढ़े) उस बीच वे कुछ सीखें, यह

सुनिश्चित करने के लिए सेन्योरा रोजा ने अपने कामकाज की सावधानी से योजना बनाई; यह विद्यालय में आम बात थी :

> हम साप्ताहिक योजना बनाते हैं, मगर हर पाठ के लिए बनाते हैं, और साल के शुरू में हम बच्चों की जिन आवश्यकताओं का निदान करते हैं उन्हें ध्यान में रखते हैं; हम एक सामान्य निदान भी करते हैं।...और मैं समझती हूं मेरी कक्षा के बच्चे अब कमोबेश यह जानते हैं कि उनकी जरूरत क्या है और वे कुछ पाठ पढ़ाने के लिए भी कहते हैं। मसलन जब हमने श्वास प्रणाली और पाचन-प्रणाली की बातें कीं तो कई तो बीमारियों के बारे में जानना चाहते थे, वे यह भी जानना चाहते थे कि उनका इलाज कैसे किया जा सकता है, कैसे उनसे बचा जा सकता है।

सर्वोत्तम शिक्षाशास्त्रीय परंपरा की अधिकारिणी सेन्योरा रोजा यह भी जानती थीं कि वह अपने बच्चों से कैसी उपलब्धियों की आशा रखती हैं :

> मेरे नजदीक, गणित में, मेरा खयाल है कि उनका बुनियादी क्रियाकलापों को सीखना अहम है, और भाषा में वे लिखना सीखें, रचनाकार्य करने में समर्थ बनें, संक्षेपीकरण जानें; यह भी आवश्यक है कि वे अखबार पढ़ना सीखें, और इसके लिए हमने कतरनों का काफी इस्तेमाल किया है।

प्रभाव

जो प्रेक्षण इस अध्याय के आधार बने उन्हें पूरा करने के बाद भी हम एक साल तक पंपाहासी जाते रहे। सेन्योरा रोजा के सभी बच्चे अगली कक्षा में गए और बीच में कोई बच्चा पढ़ाई छोड़कर नहीं गया। लेकिन इस विषय में विद्यालय की दरें भी कम रहीं : पहली के 84 में केवल 14 और दूसरी कक्षा के 64 में 9 बच्चे ही छोड़कर गए और दूसरी कक्षा में सिर्फ चार बच्चे अनुत्तीर्ण हुए। ये मान विद्यालय की सफलता के केवल बाहरी मानदंड के रूप में ही महत्वपूर्ण हैं; सचमुच जिस बात पर विचार होना चाहिए वह यह है कि सेन्योरा रोजा ने अपने बच्चों के सामने क्या उद्देश्य रखे। जो कुछ उन्हें आशा थी, वह वे पा भी सकीं या नहीं ?

प्रेक्षण के दूसरे वर्ष में हमने विद्यालय में अनेक परिवर्तन देखे। अब अध्यापकों की संख्या बढ़ गई और सेन्योरा रोजा के लिए यह मजबूरी न रही कि दो कक्षाओं को एक साथ और ऊपर से एक तीसरा समूह भी बिठाकर पढ़ाएं। अब वे सिर्फ पहली कक्षा को पढ़ाती थीं। उनके पिछले छात्रों को दूसरे अध्यापक मिले। हमने अब नई चौथी कक्षा को देखा जिसमें उनके तीसरी कक्षा वाले छात्र मौजूद थे। हमने बच्चों को चर्चा के लिए विषय सुझाते देखा और अपेक्षाकृत सहज ढंग से अपनी अध्यापिका को संबोधित करते देखा। इससे अध्यापिका को भी सहज ढंग से जवाब देने की प्रेरणा मिलती थी। बच्चे कमरे में वर्ग बनाकर

बैठते थे और कहने पर तेजी से समूहों में बंटने में उन्हें कोई मुश्किल नहीं आती थी। वे कभी-कभी आपस में बातें करने या कभी-कभी नई अध्यापिका के कुछ कहे पर असंतोष जताने से भी नहीं डरते थे। इस कक्षा में अध्यापिका एक ऐसी शैली का प्रयोग करती थी जो गालिबन उसके नार्मल स्कूल छोड़ने के बाद से नहीं बदली थी। फिर भी उसने कक्षा पर सख्त अनुशासन का कोई माहौल नहीं लादा। इस मामले में वह छात्रों के व्यवहार से संचालित होती रही।

सेन्योरा रोजा के जो छात्र अब पांचवीं कक्षा में थे उनका व्यवहार भी चौथी कक्षावालों जैसा था। वे आसानी से सामूहिक गतिविधियों का संचालन करने में समर्थ थे तथा अध्यापिका और छात्रों के बीच संचार का एक सहज वातावरण उन लोगों ने रखा था। वे सवाल पूछने में शरमाते नहीं थे। इस बात ने नई अध्यापिका को इतना प्रसन्न किया कि उसने माना कि वह 'अपने बच्चों के साथ खुश है क्योंकि वे दूसरों से अलग हैं।'

इस विद्यालय के नए अध्यापक भी एक तरह से अपवाद थे। वे राजनीतिक रूप से पिछले अध्यापकों से अधिक प्रतिबद्ध थे और अध्यापन-प्रक्रिया में छात्रों की भागीदारी के प्रति उनका खुलापन इसी कारण से था। मगर रोजमर्रा के अध्यापन संबंधी मुद्दों से उनका सरोकार भी कम था। वृहत्तर सामाजिक समस्याओं के बारे में वे अधिक मुखर थे। लेकिन बदनसीबी से यह बात विद्यालय में तनाव का कारण बनती जा रही थी।

एक बार और

इस अध्याय में वर्णित अध्यापिका का व्यवहार अलग किस्म का था। उसके प्रधानाध्यापक और एक हद तक पूरा विद्यालय भी दूसरों से अलग थे। विद्यालय में हम भी सहज महसूस करते थे। दूसरे विद्यालयों के बच्चों के बीच हम जो यातना महसूस करते थे, यहां आकर वह जाती रही।

पंपाहासी के इस विद्यालय ने परंपरा से नाता तोड़ना और एक अलग शिक्षा-दर्शन के आधार पर काम करना शुरू कर दिया था। यहां बच्चे खुद को व्यक्ति समझ सकते थे, सामूहिक उत्पादक कार्यों में भाग ले सकते थे, और अधिगम की प्रक्रिया में अपने योगदान के महत्व का अनुभव कर सकते थे। मगर कब तक उनको ये सुख मिलते रहेंगे ? जब बाहरी व्यवस्था से उनका टकराव होगा, जो लाजमी है, तो क्या बच्चों या उनके अध्यापकों को यह सब जारी रखने की छूट मिलेगी, बल्कि क्या वे खुद इसे जारी रखना चाहेंगे ? कारण कि बाहरी व्यवस्था ही वह ढांचा बनाती है जिसके अंदर अध्यापकों और छात्रों को रहना होता है और यह ढांचा बहुत सीमित है। यह ऐसी नौकरशाही वाला ढांचा लादती है जिसमें अगर तरक्की पानी हो तो अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। यह काम की ऐसी दशाएं लादती हैं जो शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार से अध्यापक के लिए यातनादाई होती है, और प्राथमिक कक्षाओं के लिए ऐसे वेतन लादती है जो एक अकुशल मजदूर के वेतन से मेल खाते हैं।

इसके अलावा जो अध्यापक उच्च आदर्शों से प्रेरित न हो और जिसने सामाजिक उत्थान के साधन के रूप में इस पेशे को चुना हो, वह कुंठा की भावना से भर उठता है। वास्तव में उसे मध्यवर्ग के प्रतिभाशाली, सामाजिक रूप से सजग बच्चों की बजाए निम्नतम और नितांत बाहरी समझे जानेवाले समूहों के बच्चों को पढ़ाना पड़ता है। जैसे अयमारा, क्वेशुआ तथा दूसरे निर्धन वर्गों के बच्चों को।

हमने जिस अध्यापिका और जिस विद्यालय का वर्णन किया है वे बच्चों पर ध्यान देने के मामले में ही नहीं बल्कि अयमारा सांस्कृतिक मूल्यों की समझ के मामले में भी भिन्न थे। एक साक्षात्कार में विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने इस समझ को हमारे सामने इस प्रकार से व्यक्त किया :

> हां, मैं खुश हूं। शुरू से ही, जबसे मैं अध्यापक हुआ तभी से मैंने शिक्षा की सेवा और उत्तम कार्य-संपादन की कोशिश की है।
>
> खासकर गरीब समुदायों के सिलसिले में मुझे लगता है, मैं उनकी स्थिति से तालमेल बिठा सकता हूं, शायद इसलिए कि मैं भी यूं कहिए कि उसी संस्कृति से आया हूं और खुद को ढाल सकता हूं। मैं बातें कर सकता हूं, देसी भाषा बोल सकता हूं।
>
> मेरे विद्यालय के बच्चे साधनहीन हैं; हां, बहुत गरीब हैं। वे अयमारा हैं, साधनहीन, अनुशासन की समस्याओं से लगभग मुक्त। वे बागी नहीं हैं, शांतिप्रिय हैं। एक तरह से वे शहरी बच्चों से भिन्न हैं जो प्रेरणारहित लगते हैं। यहां के बच्चे उस तरह के नहीं हैं।

सामूहिक गतिविधियों को बढ़ावा देना जैसे परिवर्तन दूसरों को बहुत मामूली लग सकते हैं, मगर इन्हीं परिवर्तनों के द्वारा इस विद्यालय ने अयमारा इंडियनों के स्वाभाविक सामुदायिक ढांचे को स्वीकार किया था और यह भी कि बच्चे जब अपने समुदाय में प्राप्त सुरक्षा को छोड़कर शहर में स्थित विद्यालय में आते हैं तो उन्हें क्या कमी महसूस होती है। इस अध्ययन का सबसे उल्लेखनीय पहलू यह खोज थी कि जो बच्चे एक साल कुछ बनना सीखते हैं वे अगले साल अपने विद्यालय-जीवन के अनुभवों (साथ-साथ कुछ सीखना, काम करना और खेलना जैसे अनुभवों) को एक तरह से नई अध्यापिका पर 'लादकर' वही शिक्षा जारी रखते हैं। लेकिन दूसरे विद्यालयों में हमने जो कुछ देखा था उसे देखते हुए यह बात उस बोलीवियाई समाज की परंपरा से संबंध-विच्छेद के समान थी जहां गरीबों के विद्यालय सिर्फ उच्चतर संस्कृति की झलक दिखाने के लिए होते हैं। इसलिए हमारे समापन-निष्कर्षों ने हमें इस सोच में डाल दिया है कि परंपरा से निर्णायक संबद्ध-विच्छेद के बारे में सेन्योरा रोजा या किसी और अध्यापक को भला कितनी सफलता मिलेगी।

टिप्पणियां

1. बोलीविया की ग्रामीण शिक्षा प्रणाली पर हुए अन्य अध्ययन इस विचार की पुष्टि करते हैं, तब भी सामाजिक संगठन की देसी प्रणाली पर आधारित अयुलू विद्यालय जैसे अनुभव लागू किए गए हैं : (ह्मसनी आदि, 1978 देखें).

संदर्भ

ह्मसनी, सी; मामनी, ई; सुब्रिरेत्स, जे (1978) : वेकिसेत 'एस्क्यूला-अयुल;' अल पोक्वें दे उन फ्रेकासी, सेंतरो बोलीवियानो दे इनवेस्तिगेशियों या एक्शियों एजुकेतिव, ला पाज, बोलीविया.

7. शैक्षिक असफलता के लिए जिम्मेदार कौन ?

ग्रैब्रिएला लोपेज, जेनी एसाइल
और एलिसा न्यूमान

विद्यालय में अनुत्तीर्ण होनेवाले बच्चे 'किसी की जिम्मेदारी' नहीं होते, ऐसा एक अध्यापक को कहते सुना गया। असफलता की जिम्मेदारी न विद्यालय लेता है, न अध्यापक लेते हैं और न अभिभावक। अकसर असफलता के लिए बच्चे या बच्ची को दोषी ठहराया जाता है। या फिर इसका कारण उन सामाजिक समस्याओं को बतलाया जाता है जो धतरी पर स्वर्ग के उतरने पर ही हल को सकती हैं।

इस अध्याय में हमने शैक्षिक असफलता से जुड़ी परिस्थितियों और दशाओं को विद्यालय के वातावरण में खोजने के प्रयास का वर्णन किया है। इस प्रयास के क्रम में हम शैक्षिक असफलता को ऐसी प्रक्रिया समझते हैं जिसमें बच्चा अधिगम और व्यवहार के बारे में विद्यालय के तकाजे पूरे नहीं कर पाता है और अंततः परीक्षा में असफल बताकर या एक ही कक्षा में पुनः पढ़ने को विवश कर व्यवस्था उसे दंडित करती है। हमने यह मान लिया है कि विद्यालय में और खासकर अध्यापन के संबधों में ऐसी स्थितियां होती हैं जिनका अगर वर्णन और मनन किया जाए तो सफलता और असफलता के कारणों का तथा सफल-असफल में बच्चों के वर्गीकरण की प्रक्रिया का पता लगाने में सहायता मिलेगी। हमने यह भी माना है कि ऐसे वर्गीकरणों का संबंध उन निहित व्याख्याओं से होता है जिन्हें सामाजिक और विद्यालय के कारक "स्कूल की असफलता" के ऊपर डाल देते हैं। और यह कि बच्चे मात्र निर्धन होने के कारण असफल नहीं होते (वैसे गरीबों के लिए सफलता के अवसर कम होते हैं)।

हमने अपना अध्ययन चिली के सांतियागो नगर में दो प्राथमिक विद्यालयों में पहली कक्षा के चार वर्गों में किया। दोनों विद्यालय मजदूरों की बस्ती में स्थित थे; उनमें पढ़नेवाले छात्र भी उन बस्तियों के ही थे। पूरे सत्र के दौरान हमने विद्यालयों की संरचना, वहां के लोगों और घटनाओं का 'नृजातीय' दृष्टि से अवलोकन किया। हमने अभिभावकों, बच्चों और अध्यापकों से बातचीत की, पाठों के विकास और खेल-जीवन को देखा, और अध्यापक-अभिभावक सभाओं में भाग लिया। समय बीतने के साथ हमने उन बच्चों पर

ध्यान केंद्रित किया जो शुरू में भेदरहित समूह के अंग थे मगर फिर संभावित 'असफल' बच्चों के रूप में पहचाने गए। फिर हमने यह समझने की कोशिश की कि ऐसा कैसे हुआ। पूरे अध्ययन काल में हमने विशेष ध्यान अध्यापकों पर केंद्रित किया। इसलिए कि कक्षा के अंदर अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया के ढांचे और आयोजन के लिए वे स्पष्ट रूप से जिम्मेदार दिखाई पड़े।

ढेर सारे ब्योरों की पड़ताल करने और उन विवरणों की व्याख्या करने के बाद हमको पता चला कि किसी बच्चे के शिक्षात्याग का निर्णय चाहे जितना चेतन हो, यह उसकी असफलता का एक अहम कारण होता है। जब बच्चा खुद को सफलता से काम करने के अयोग्य पाता है तो असफलता अवश्यंभावी होती है। यह समझ बच्चे में आती कहां से है ? इस विषय में अधिगम संबंधी कीर्तिमान के संदर्भ में विद्यालय और घर के अनुभवों की क्या भूमिका है ? शिक्षा की प्रक्रिया में रत विभिन्न लोगों के आचार-विचार इन अनुभवों का किस प्रकार निर्धारण करते हैं ? प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं प्रश्नों का कुछ वर्णनमूलक उत्तर देने का प्रयास करेंगे। इसके लिए हमने कक्षा के अंदर अध्यापन-कार्य में निहित कुछ सुस्पष्ट घटनाओं को चुना है तथा सफलता और असफलता पर अभिभावकों, अध्यापकों और बच्चों द्वारा व्यक्त विचार पर गौर किया है। हमने प्रत्येक कर्ता के आचार-विचार से शैक्षिक असफलता को जिस रूप में समझा है, उस रूप में उसके लिए जिम्मेदारियों के निर्धारण की प्रक्रिया की छानबीन भी की है।

शैक्षिक असफलता का निर्धारण

'शैक्षिक असफलता' पर विचार करने का एक तरीका उसे उस मानदंड पर परखना है जो शिक्षाप्रक्रिया के कर्णधारों का मानदंड है। कारगुजारी (परफार्मेंस) के आकलन और मापन के दौरान सफलता और असफलता के पैमाने पर किसी बच्चे के स्थान का निश्चय इसी मानदंड के आधार पर होता है। चिली की स्कूल शिक्षाप्रणाली में असफलता की परिभाषा पहली प्राथमिक कक्षा में उपस्थिति पर तथा पढ़ने-लिखने और गणित की बुनियादी प्रश्न हल कर सकने जैसे घोषित उद्देश्यों की पूर्ति पर जोर देती है। यह प्रणाली इन उद्देश्यों की पूर्ति संबंधी अयोग्यता को ही असफलता का नाम देती है। यह या तो शिक्षा के ढांचे में कमी के कारण संभव है जिस पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है या फिर निजी प्रयास के अभाव के कारण संभव है जो दंडनीय है। समस्या कहां पर है, यह तय करने के लिए चिली की शिक्षा व्यवस्था विद्यालय से यह मांग करती है कि वह असफल बच्चे को निदान केंद्र में भेजे (शिक्षा मंत्रालय ने अधिगम संबंधी कठिनाइयों के स्वरूप का पता लगाने के लिए ऐसे केंद्र विशेष रूप से खोले हैं)। फिर केंद्र की रिपोर्ट उसे किसी विशेष विद्यालय या उपचारमूलक कक्षा में रखने की जरूरत बताती है या यह दिखाती है कि बच्चा सामान्य है और उसकी कठिनाइयां 'निजी' प्रकार की हैं।

हमने जो अध्ययन किया उस अध्ययन में अध्यापकों की असफलता की समझ कई रूपों में निर्धारित होती थी :

- 'अच्छे' छात्र शब्द को दिए गए अर्थों का विपरीत :

एक 'अच्छा' छात्र वह है जो मेहनत करता है, जवाब देता है, भाग लेता है, जो काठ का टुकड़ा नहीं बल्कि ऐसा खुशदिल बच्चा है जिसे प्रेरित किया जा सकता है, जो उत्साही है।
मेरा अच्छा छात्र सिर्फ 'किताबी कीड़ा' नहीं बल्कि ऐसा छात्र है जो दिलचस्पी दिखाता है, छानबीन करता है, जो कुछ भी पढ़ाया जाए उससे ज्यादा जानना चाहता है, जो पढ़ाए गए का सिर्फ रट्टा नहीं मारता बल्कि हमेशा कुछ और की तलाश में रहता है, और जो जिम्मेदार है।

- सामाजिक-आर्थिक या जनांकिकीय कारणों से उत्पन्न संज्ञानात्मक और व्यावहारिक प्रतिमानों के अभाव के रूप में :

एक तो आनुवांशिक तत्व होता है, एक जन्मगत तत्व होता है, और फिर निर्धनता पर केंद्रित सांस्कृतिक वातावरण होता है... भोजन की समस्याओं के अपरिहार्य परिणाम बच्चे को प्रभावित करते हैं। यहां ज्यादा बच्चे पर्याप्त भोजन किए बिना विद्यालय आते हैं... मेरा विश्वास है कि उनकी अधिगम संबंधी समस्याएं भोजन के अभाव की देन हैं।
क्लादियो के हाथ सख्त हैं, हर काम को वह मुश्किल से कर पाता है... वह प्लास्टिक के माडल बनाने के लिए अपनी उंगलियों का इस्तेमाल नहीं कर सकता मगर दूसरे जो कुछ करते हैं वह सब देखता है... ऐसे मामले में कोई कर भी क्या सकता है ? आप हमें बतलाएंगे कि हम क्या करें ?

- विद्यालय से अभिभावकों के सहयोग के स्तर के रूप में :

... इसलिए कि ऐसे भी अभिभावक हैं जो सिर्फ नाम लिखाने के रोज विद्यालय में आते हैं और फिर साल के आखिर में आते हैं। बच्चे की कापियां कभी देखते भी नहीं। सफल बच्चा तो वह होता है जिसके माता-पिता रोज उसके काम का हिसाब रखते हैं, उससे बातें करते हैं, जो कुछ उन्हें स्पष्ट नहीं होता उस पर जानकारी मांगते हैं। हमें उनका सहयोग चाहिए... बच्चों में अच्छी आदतें डालने के लिए सम्मिलित प्रयास चाहिए। इसलिए कि आदतें कैसे डालें, सबसे बड़ी समस्या व्यक्ति के आगे यही होती है।

इस तरह अध्यापकों की सफलता संबंधी धारणा से जुड़े प्रमुख शब्द या वाक्यांश इस प्रकार थे : 'जिम्मेदार', 'कुछ सीखने को उत्सुक', 'प्रतिभाशाली', 'सुसंस्कृत' और जिसके 'अभिभावक हैं ऐसे जो उसकी सफलता का ध्यान रखते हैं।' लेकिन अभिभावकों ने असफलता

की व्याख्या उसे विद्यालय की खराब रिपोर्टों और खराब अंकों से जोड़कर की :

मैं हमेशा प्रेरित करने की कोशिश करता हूं... जी हां, मैं टेस्ट में मिले वी जी (वेरी गुड) के लिए 10 पेसो देता हूं मगर जी (गुड) या एस (एवरेज) के लिए कुछ नहीं देता।
एक बार वह खराब अंक लेकर घर आया। मैंने कहा : सुन लुई, ये अंक अच्छे नहीं हैं। तुम्हें ऐसे अंक नहीं लाने चाहिए। लाओगे तो फिर उसी दर्जे में पढ़ना पड़ेगा। फिर ऐसा नहीं हुआ। होशियार है वो।
जब वह अच्छे अंक लाता है तो मैं उसे चूम लेता हूं; यह दिखाता हूं कि मुझे खुशी हुई है। वह भी खुश होता और फख्र करता है।

हमारे पूरे अवलोकन-काल में आसानी से हमने देखा कि असफलता की विभिन्न धारणाएं किस प्रकार बच्चों, अध्यापकों और अभिभावकों की अंतःक्रिया की प्रक्रियाओं में सामने आती रहीं। खास तौर पर हमने यह भी देखा कि कक्षा के भीतर के कुछ आचरण किस प्रकार इन धारणाओं को बल पहुंचाते थे। असफलता का निर्धारण हमने किस प्रकार होते देखा, इसे दर्शाने के लिए हमने ऐसी दो स्थितियों को चुना है जिनका संबंध कक्षा में किए जाने वाले सुप्रचलित व्यवहार से है। पहले को अध्यापकगण 'इमला' कहते हैं। दूसरा है अध्यापकों द्वारा छात्रों का वर्गीकरण जिसे तत्संबंधी साहित्य में 'मार्काबंदी' (लेबेलिंग) कहा गया है।

इमला

व्यवहार में चिली के सारे प्राथमिक विद्यालय बच्चों को लिखना और हिज्जे करना सिखाने के लिए तथा छात्रों के अधिगम के मूल्यांकन के एक ढंग के रूप में इमला का इस्तेमाल करते हैं। इस विषय में हमने जिन अध्यापकों का अवलोकन किया वे भी अलग नहीं थे :

मैं रोज इमला देता हूं; खासकर जब कोई नया अक्षर सिखाता हूं तो फौरन इमला देता हूं... अगर आप ऐसा नहीं करते तो फिर और किस तरह वे सीख सकेंगे ?

लेकिन तीन कक्षाओं में इमला एक टेढ़ी खीर था, और कुछ छात्र ही नहीं, उनके अध्यापक भी ऐसा मानते थे :

इस समय (वर्ष के अंत में) छात्र खासकर इमला से ऊब जाते हैं। इसलिए कि तब तक बहुत अधिक इमला लिखवाया जा चुका होता है और अंततः इससे वे थक चुके होते हैं।

इमला सिर्फ टेढ़ा ही नहीं, तनाव और चिंता पैदा करनेवाला अनुभव भी है। इमला जिस तरह से लिखवाया जाता है, उसमें अध्यापक आम तौर पर एक बच्चे को श्यामपट तक बुलाता

है, उसे हिज्जे बोलकर कोई शब्द लिखवाता है और अकसर उसकी कारगुजारी (परफार्मेंस) पर फौरन प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। यह प्रतिक्रिया ऐसे वाक्यों के जरिए व्यक्त होती है : 'बहुत अच्छे,' 'अपनी जगह पर जाओ और जो कुछ करते हो उस पर और ज्यादा ध्यान दो' या 'क्या ? अब यह तो मत कहो कि तुम उस अक्षर को नहीं जानते।' (यह इस बात का संकेत है कि छात्र ने शब्द गलत लिखा है।) इमला लिखाते वक्त वातावरण तनाव से भरा होता है; कुछ छात्रों के लिए यह अपमानजनक अनुभव होता है। पेद्रो का 'हाथ पर्याप्त ढीला नहीं है,' इमला के दौरान यह बात उससे इतनी बार कही गई कि इमला उसके लिए कुंठाजनक अनुभव बनकर रह गया।

पेद्रो : इमला मुझे कभी आया ही नहीं। (दुखी स्वर।)
प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों ?
पेद्रो : इसलिए कि... मैंने कहा न, मेरा हाथ बहुत ढीला नहीं है। (लगभग गुस्से से भरा स्वर।)

जोर्गे वह बच्चा था जो इमला से बेहद भयभीत था। साल शुरू होने के तीन माह बाद भी वह रोते हुए विद्यालय आता था। पहले वह चुपके-चुपके, लगभग न दिखनेवाले आंसू रोता था, मगर विद्यालय के प्रवेश द्वार पर पहुंचने पर सीधे-सीधे दहाड़े मारना शुरू कर देता था। विद्यालय में प्रवेश का जमकर विरोध करता था और उसके इस 'उद्दंड व्यवहार' को बच्चों को विद्यालय तक छोड़ने आनेवाने दूसरे अभिभावकों ने भी देखा। उसे अभी तक 'असफल' बच्चा नहीं बल्कि एक घबराया हुआ और बेढब छात्र माना जाता था। जोर्गे रोता क्यों था? उसकी अध्यापिका की आरंभिक व्याख्या इस प्रकार थी :

> इसलिए कि वह है ही ऐसा। गृहकार्य करके नहीं लाता या कुछ खो देता है तो घबरा जाता है। रोज रोता है। उसके माता-पिता बहुत बूढ़े हैं और वह उनकी अकेली संतान है।

साल के अंत में अध्यापिका ने इस स्थिति का कुछ अधिक सटीक निरूपण किया : 'जोर्गे इमला की याद आने पर रोता था।' लेकिन जोर्गे के इस भय की व्याख्या उसके प्रति माता-पिता के रवैए की प्रतिक्रिया के रूप में की गई।

> उसके माता-पिता उससे जो सुलूक करते थे उससे प्रभावित हुआ : मैंने अकसर उसकी मां को देखा है कि उसे विद्यालय में अंदर भेजने के लिए मारती है।

लेकिन जोर्गे की मां की राय इस राय से एकदम अलग थी :

> जोर्गे की मुश्किलें इस साल जून में शुरू हुईं। इसकी शुरुआत इमला की समस्या से हुई। इमला, इमला... इससे किसी का बचना मुश्किल है। शुरू-शुरू में जब विद्यालय जाने का वक्त आता... तो वह रोने लगता। कहता कि वह विद्यालय जाना नहीं चाहता; वहां 'वही इमला लिखवाएंगे और मैं गलत लिख जाऊंगा।' मैंने अध्यापिका से यह बात कही मगर वह, 'मत घबड़ाओ।' लेकिन कुछ न कुछ तो हुआ ही है कि वह एकाएक इमला के कारण विद्यालय जाना नहीं चाहता, न कि पढ़ाई या अंकगणित के कारण। मुझे लगता है उसे इमला में मुश्किल आती होगी और उसे सख्ती से डांटा-फटकारा गया होगा। और वह है भी संवेदनशील, डर गया होगा; आखिर एकाएक यह समस्या आई कैसे ?...विद्यालय आते हुए रास्ते भर रोता है। बस से उतरता है, सड़क पार करता है और मुझे पीछे खींचने लगता है, यह कह कर कि 'मैं नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा।' यह सब तमाशा सड़क पर होता है। सीधे-सीधे सड़क किनारे लोट जाता है... अध्यापिका तो कभी मानेगी नहीं कि उसकी गलती हो सकती है; आखिर एक और छोटी सी बच्ची के साथ भी यही सब हो रहा था। अकसर उसे अध्यापिका बड़े रूखे अंदाज में कहती थी : मैं कह रही हूं, तुम काहिल हो, इसलिए कि मेहनत नहीं करती... इसलिए तो मैं समझती हूं कि जोर्गे के साथ भी यही हुआ है, और चूंकि सारे बच्चे एक जैसे नहीं होते, इसलिए यह ज्यादा डर जाता है। यहां (घर पर) उसने इमला लिखा है; मेरे पति रोज सुबह उसकी मदद करते हैं। कहता है, 'डैडी, इमला बोलो... होगा। मैंने यह जानने की उम्मीद में अध्यापिका से बात की कि गड़बड़ कहां पर है और उसने कहा कि वह घबरा जाता है। उन्होंने एक डाक्टरनी का नाम बतलाया और मैं उसे वहां ले गई। वह उसका इलाज कर रही है... उसने नींद की एक गोली दी। भगवान का धन्यवाद कि वह सुधर रहा है। उसका इमला बहुत सही है। यह सब हुआ सिर्फ इमला के कारण। जब देखो इमला, इमला, इमला। मैं तो परेशान हो गई इससे... सितंबर में डाक्टरनी ने विद्यालय जाने से पहले की खुराक बढ़ा दी। हमने इस सवाल पर जोर्गे के अपने विचार पूछे।

प्रश्नकर्ता : अभी भी तुम दवा ले रहे हो ?
जोर्गे : हां।
प्रश्नकर्ता : दवा है किस चीज की ?
जोर्गे : वो... वो... इसलिए कि मैं बहुत ज्यादा न खांसूं। रोने-चिल्लाने से रोकने के लिए।
प्रश्नकर्ता : तुमने रोना भला किस तरह बंद किया ?
जोर्गे : इसलिए कि उन्होंने मुझे पीनेवाली दवा दी।
प्रश्नकर्ता : क्या इसलिए रोते थे कि दुखी थे ?
जोर्गे : नहीं। इसलिए कि मैं डरता था।
प्रश्नकर्ता : डरते किस चीज से थे ?
जोर्गे : इमला से, मगर फिर यह खत्म हो गया।

अपने सहपाठियों में जोर्गे अपने अजीब व्यवहार के लिए बदनाम था।

पामेला : जोर्गे तमाशे खड़ा करता था। अध्यापिका का थैला फेंक देता था। तमाशे करता था, रोता था, अपनी मां को पलटकर जवाब देता था, उसकी इज्जत नहीं करता था, कुछ नहीं करता था, अब वह खामोश है। चुपचाप अंदर आता है।

प्रश्नकर्ता : तुम्हारे खयाल में वह यह सब क्यों करता था ?

पामेला : इसलिए कि वह सोचता था कुछ पढ़ाया या इमला लिखवाया जाएगा और कभी-कभी वह कुछ जानता नहीं था, सो अंदर भी नहीं आता था...

कुछ पढ़वाने का भी इमला जैसा ही प्रभाव पड़ता था।

जुआनिता : मैडम जब मुझसे पाठ के बारे में पूछती हैं तो डांटती हैं।

प्रश्नकर्ता : जब डांटती हैं तो क्या होता है ?

जुआनिता : मैं डर जाती हूं।

प्रश्नकर्ता : पढ़ना जारी रखती हो ?

जुआनिता : नहीं।

प्रश्नकर्ता (एक और छात्र से) : तुम्हें पढ़ना पसंद है ?

मेरियो : कभी-कभी... बहुत कम। बहुत उबाऊ होता है।

प्रश्नकर्ता : तुमने कहा कि पढ़ाई उबाऊ है, इसलिए तुम्हें अच्छी नहीं लगती।

मेरियो : इसलिए कि जो शब्द मैं बोलता हूं, ठीक से नहीं निकलते।

मेरियो की मां ने हमें बतलाया : 'अध्यापिका जब उससे पाठ के बारे में पूछती है तो वह बहुत घबरा जाता है। ठीक से जवाब नहीं दे पाता। वही पाठ जब मैं यहां, अकेले में पढ़वाती हूं तो ऐसा नहीं होता। बच्चे इन स्थितियों को भयप्रद समझकर जितने अधिक समय तक उनका अनुभव करते थे, पर्याप्त आत्मविश्वास अर्जित करके अपने काम को सफलता से पूरा करना उनके लिए उतना ही मुश्किल होता जाता था।

मार्काबंदी

समय आगे बढ़ा तो हमने यह भी देखा कि अध्यापक (और दूसरे लोग) किस प्रकार छात्रों को उनके व्यवहार प्रतिमानों के अनुसार वर्गीकृत करते हैं और उन पर तरह-तरह के बिल्ले चिपकाते हैं। आत्मसाधक भविष्योक्ति के ही अनुरूप हमने यह भी देखा कि कोई बिल्ला चिपके छात्र उस विशेष बिल्ले से इंगित व्यवहार को किस प्रकार पुष्ट करता है और किस प्रकार उस बिल्ले से मेल खाती आत्मछवि का आभ्यंतरीकरण करता है। मसलन सुस्त कहलानेवाले बच्चे सुस्ती का ही व्यवहार करते थे और बाकी सहपाठियों और अध्यापकों को अपने को सुस्त कहने का मौका देते थे। जो बिल्ले हमने सुने उनमें वे भी थे जो स्पष्ट रूप से आत्मछवि और आत्मसम्मान का विनाश करने वाले थे और जाहिरा तौर पर छात्र के अधिगम को प्रभावित करते थे।

बिल्ला चिपकाने या छद्मनाम देने की यह प्रक्रिया हमने कमोबेश एक को छोड सभी कक्षाओं में देखी। जैसे जोर्गे रोवना, चोर जिमिना, घमंडी मिगुएल, बच्चा टामस, गायब दिमाग युवान और बदबूदार एदुअर्दो। ये ठप्पे इतने आम हैं कि माता-पिता, बच्चे और दूसरे अध्यापक भी इनका प्रयोग करते हैं हालांकि हमेशा यह स्पष्ट नहीं होता कि उनकी शुरुआत कहां से हुई है। मसलन एक अध्यापिका, जो एदुअर्दो को बदबूदार और गंदा कहती थी ('वे लोग रोज उसे गंदा ही विद्यालय भेज देते हैं'), जब उसके बारे में हमें कुछ बता रही थी तो हमने एक और लड़के को चिल्लाकर उससे कहते सुना, 'हे बदबूदार, तू कर क्या रहा है ?' जब हमने एदुअर्दो से बातचीत की तो उसने कहा, 'वो मुझे 'पायोर्जेतो' (जुओं से भरा हुआ) कहते हैं।' एदुअर्दो अंततः पहली कक्षा उत्तीर्ण न कर सका और उसी कक्षा में उस दोबारा पढ़ना पड़ा।

जोस को अंडा-सर कहा जाता था और उसकी अध्यापिका ने हमें बतलाया :

> आह, ये बच्चे ! वह बेचारा अंडा-सर बच्चा। एक बार हमने उसकी मां को बुलवाया, इसलिए कि उसे चोट लग गई थी और काफी खरोंचें आई थीं। उसकी मां आई और मुझसे बोली, 'यह सब इसलिए हुआ है कि मेरे बच्चे को अंडा-सर कहा जाता है।' मैंने यह बात सुनी तो मुझे बहुत दुख हुआ, इसलिए कि यहां हम सभी उसे अंडा-सर कहते हैं। अध्यापिका (फलां) ने उसे यह नाम दिया और यह उसके ऊपर चिपक कर रह गया।

पेंसिलबाक्स मूर्ख

कार्लोस कुछ करता नहीं था, इसलिए उसे सुस्त लड़का समझा जाता था। पूरे साल उसकी अध्यापिका और उसके सहपाठी उसे सुस्त कहते रहे और उसके लिए दूसरे अपमानजनक शब्द इस्तेमाल करते रहे। साल के शुरू में कार्लोस के पास पढ़ाई की सारी चीजें मौजूद थीं और वह अपनी कापी-किताबों का इस्तेमाल करके अपने पाठ पूरे करता था; गृहकार्य भी नियमपूर्वक करके लाता था। लेकिन जून की शुरुआत में (साल शुरू होने के तीन माह बाद) उसकी अध्यापिका ने हमें बतलाया कि कार्लोस एक समस्याग्रस्त बालक है। तब तक दूसरे बच्चे भी जान चुके थे कि कार्लोस 'सुस्त' है। कार्लोस ने इसका जोरदार खंडन किया।

प्रश्नकर्ता (कार्लोस से) : क्या तुम सुस्त हो ?

कार्लोस : नहीं।

वानेसा (प्रेक्षक से) : कार्लोस सुस्त है क्योंकि कुछ करता ही नहीं।

कार्लोस : यह सब झूठ है।

उसी रोज कार्लोस की अध्यापिका ने हमें बताया कि उसके साथ कुछ समस्याएं हैं। उसने

कक्षा में भी उसकी ओर इशारा करके कहा कि वह अपनी रंगीन पेंसिलें नहीं लाता है और हमेशा ये पेंसिलें दूसरे छात्रों से उधार मांगता रहता है।

जोर्गे (प्रेक्षक से) : कार्लोस के पास रंगीन पेंसिलें नहीं हैं।
अध्यापिका (यह सुनकर) : इसलिए कि इन बच्चों की माताएं उन्हें रंगीन पेंसिलें खरीदकर नहीं देतीं।

लेकिन हमने देखा कि कार्लोस एक शरमीला बच्चा है और आम तौर पर सहपाठियों से कुछ उधार नहीं लेता। हमने यह भी देखा कि कक्षा में उसकी बैठने की जगह ऐसी थी कि मेज पर झुके बगैर श्यामपट को वह ठीक तरह से देख भी नहीं पाता था।

कार्लोस को दूसरे ठप्पे (बिल्ले) भी लगाए गए थे : 'चार्ली चैपलिन' और 'पेंसिलबाक्स मूर्ख' (चिली की बोलचाल की भाषा में चैपलिन का यह संकेत जरूरतों और हालात के प्रति गैर-जिम्मेदारी या असंवेदनशील रवैए का सूचक है)।

(अध्यापिका कार्लोस की मेज तक जाती है, उसकी कापी देखती है और पाती है कि उसने कुछ भी नहीं लिखा है।)
अध्यापिका : तुमने आज भी कुछ नहीं किया कार्लोस। तुम्हारा व्यवहार चैपलिन जैसा है।
(कार्लोस तनाव भरी, स्थिर दृष्टि से उसे देखता है और कुछ बोलता नहीं)
अध्यापिका (प्रेक्षक से) : कार्लोस हड़ताल पर है; कुछ करेगा नहीं।
एक और छात्र : चार्ली चैपलिन।
अध्यापिका : उसका नाम चैपलिन नहीं है। वह चैपलिन जैसा काम करता है, सो हम उसे चैपलिन कहते हैं।
जर्मन (अध्यापिका के पास आकर) : कार्लोस कुछ नहीं करता, बस परेशान होता रहता है।
अध्यापिका : कार्लोस, तुम कर क्या रहे हो ?
जर्मन : अपने पेंसिलबाक्स से खेल रहा है।
अध्यापिका : ऐसा है तो तुम्हें परेशान नहीं कर रहा, जर्मन। जाकर अपनी जगह पर बैठो ! एक साक्षात्कार के दौरान कार्लोस की मां ने हमसे कहा :

उसके पास एक सुपरमैन पेंसिलबाक्स था; हो सकता है आपने देखा भी हो। एक दिन घर आया और बोला कि अध्यापिका ने उसे पेंसिलबाक्स मूर्ख कहा है, वह पेंसिलबाक्स मूर्ख है। जब मैंने इसके बारे में दोबारा पूछा तो बोला कि अध्यापिका ने दूसरे बच्चों से कहा था : 'यह रहा पेंसिलबाक्स मूर्ख।'

जब हमने कार्लोस से बात की तो उसने कहा कि उसके सहपाठियों ने उसका पेंसिलबाक्स तोड़ दिया था।

प्रश्नकर्ता : और उन्होंने पेंसिलबाक्स के बारे में क्या कहा ?
कार्लोस : उन्होंने कहा... उन्होंने मुझे पेंसिलबाक्स मूर्ख कहकर पुकारा।

उसे शुरू-शुरू में यह नाम किसने दिया (कार्लोस के अनुसार उसकी मां ने दिया था), इससे अलग अहम बात यह थी कि कक्षा में इसका इस्तेमाल किया जा रहा था।

कार्लोस विद्यालय को गैर-दोस्ताना जगह समझता था। हफ्तों गुजरे और वह पीछे हटता गया। फिर वह अध्यापन की आवश्यकताओं का प्रत्युत्तर दिए बिना अपनी डेस्क पर बैठने लगा। हमेशा तनाव से भरा रहता था और अपनी कुर्सी की कगार पर बैठता था गोया उछलकर भागने को तैयार हो। वह अपने नाखून चबाता और अंगूठा चूसता रहता था। साल के आखिर तक वह अपना पूरा हाथ चूसने लगा था। जून के अंत से अक्टूबर के आरंभ तक हमने जो ब्यौरे दर्ज किए वे उसमें आई तब्दीलियों का पता देते हैं।

23 जून

अध्यापिका : थोड़ी देर किताब बंद करके इधर देखो।
(कार्लोस आज्ञा मानकर फौरन अपनी किताब बंद कर देता है।)

11 अगस्त

अध्यापिका (प्रेक्षक से) : कार्लोस का व्यवहार भयानक है। मसलन कल वह अपनी डेस्क पर बैठा हुआ लाल पड़ने लगा। थोड़ी देर बाद मैंने पूछा कि बात क्या है तो उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह शौचालय जाना चाहता था मगर इजाजत मांगना नहीं चाहता था।

6 सितंबर

(कार्लोस चुप लगाए हुए : कभी-कभी निगाह उठाकर अध्यापिका को देखता है। ज्यादातर वक्त मेज पर सर झुकाए अपनी किताबों और चीजों को भींचता रहता है।)

6 अक्टूबर

(कार्लोस कुर्सी से खेल रहा है; किताब की ओर नहीं देखता; अध्यापिका द्वारा चलाए जा रहे प्रश्नोत्तर कार्यक्रम में भाग नहीं लेता।)

जाहिर है कि कार्लोस से निपटना उसकी अध्यापिका के लिए मुश्किल हो रहा था। कभी-कभी आदमी जब देखता है कि बच्चे कुछ सीख नहीं रहे तो वह मायूस हो जाता है। मसलन मुझे तब भयानक मायूसी होती है जब मैं यह महसूस करती हूं कि मैं कार्लोस के बारे में कुछ नहीं कर सकती। क्या करूं, समझ में नहीं आता। हताश होती हूं, तलाश करती हूं, सोचती हूं, मगर फायदा कोई नहीं। बच्चे को घर से भी कुछ सहायता चाहिए और वह न मिले तो उसके बारे में करने को कुछ रह नहीं जाता।

कार्लोस को एक निदान केंद्र में भेजा गया और जब अध्यापिका को उसकी रिपोर्ट मिली तो उसने उसका यह मतलब निकाला कि कार्लोस की खामियां और सीमाएं उसे दूसरे बच्चों

जैसा व्यवहार करने नहीं देगी; ये सीमाएं कम से कम ऐसी जरूर थीं कि जिनको वह अपनी समझ में नहीं निपटा सकती थी। इन सब के बावजूद उसने उस बच्चे को पूरी तरह खारिज नहीं किया था।

> वह गूंगा तो है नहीं, सो मेरा खयाल है इसी कक्षा में फिर पढ़ना उसके लिए अच्छा होगा... वह अधिक परिपक्व बनेगा, कुछ सीख सकेगा हालांकि वह कभी प्रतिभाशाली छात्र नहीं निकलेगा।

कार्लोस की पारिवारिक पृष्ठभूमि दुखद थी। लगता था उसके माता-पिता में अलगाव हो चुका था। परिवार एक कमरे में रहता था और बुनियादी जरूरतों के लिए पर्याप्त पैसा नहीं था। बाप बेरोजगार था और कार्लोस या उसकी मां का भरण-पोषण नहीं कर सकता था। मां न्यूनतम रोजगार कार्यक्रम के तहत काम करती थी और प्रतिमाह 100 अमरीकी डालर कमाती थी। कार्लोस के विद्यालय के अनुभव भी बुरे रहे। साल के अंत तक उसने विद्यालय ही नहीं, अपनी मां के प्रति भी तिरस्कार का संकेत दे दिया था। लगता था वह अपनी विद्यालय की समस्याओं के लिए उसी को जिम्मेदार मानता हो। इससे भी बुरी बात यह हुई कि जब विद्यालय में उसकी स्थिति बिगड़ी तो कार्लोस की मां ने अध्यापिका को दोषी ठहराया और विद्यालय के विभिन्न तकाजे पूरे करने से इनकार कर दिए। इससे विद्यालय में कार्लोस की स्थिति और खराब हो गई।

सितंबर में कार्लोस की मां ने तय किया कि वह पहली कक्षा में दोबारा पढ़े। तब उसे एक अन्य विद्यालय में डालने की उसने योजना बनाई। लेकिन साल के अंत (दिसंबर) तक कार्लोस विद्यालय में रहा। तब तक उसकी आत्मछवि एक 'सुस्त' बालक वाली थी : 'इसलिए है कि मैं बहुत ज्यादा टेलीविजन देखता हूं। चूंकि मैं सुस्त हूं, इसलिए कोई मेरे साथ खेलना नहीं चाहता।'

जिमिना चोट्टिन

जिमिना कुछ नहीं करती थी, सो काहिल थी। इतना ही नहीं, वह चोट्टिन (चोरनी) भी कही जाती थी। जिमिना की आदत थी कि अपने सहपाठियों से बड़े स्फूर्त ढंग से फल और दूसरी चीजें ले लेती थी। हमें उसकी इस आदत की जानकारी उसकी अध्यापिका ने दी :

> भयानक बच्ची है। भयानक काम करती है। कल यहां विद्यालय में एक सर्कस लगा। एक बच्चा सर्कस देखते वक्त खाने के लिए एक पैकेट बिस्कुट, बड़ा सा पैकेट, ले आया। जिमिना किसी तरह कमरे में घुस आई और बिस्कुट भी चुराए और एक और छात्र के लिए सर्कस का एक टिकट भी। जब पूछा गया कि वह काम क्या उसका था तो उसने बस्ते में टूट कर गिरे टुकड़े दिखाए और माना कि बिस्कुट उसने लिए थे। वह इन बातों से इनकार नहीं करती। एक और दिन उसने एक-दूसरे लड़के के बस्ते से एक केला निकालकर खा लिया।

जिमिना को एक असफल छात्रा समझा जाता था। यह स्पष्ट नहीं था कि इसका कारण उसकी चोरी की आदत थी या विद्यालय के कुंठाजनक अनुभवों के कारण उसमें यह आदत विकसित हुई। एक अध्यापन-अंतःक्रिया का निम्नलिखित उद्धरण यह दिखाता है कि जिमिना विद्यालय में अकसर कैसे अनुभवों से गुजरी।

> *अध्यापिका* : जिमिना, इधर आओ।
> (जिमिना श्यामपट तक जाती है और उसे एक संख्या लिखने को कहा जाता है। वह बाएं हाथ से लिखती है और संख्या 2 लिख देती है। अध्यापिका कहती है कि यह गलत है।)
> *जिमिना* : चार।
> *अध्यापिका* : ठीक है, चार।
> (जिमिना बाएं हाथ से धीरे-धीरे संख्या 4 लिखती है। अध्यापिका उसके आगे धन का निशान बनाती है और जिमिना वांछित 1 की जगह 3 लिखती है।)
> *अध्यापिका* : यह एक नहीं है। कौन सी संख्या है यह ?
> *दूसरे बच्चे* (समवेत) : तीन।
> *अध्यापिका* (परेशानी के लहजे में) : तो जाओ। लिखो।
> (जिमिना श्यामपट की ओर देखती है और कुछ नहीं लिखती। कुछ पल बीत जाते हैं।)
> *अध्यापिका* : बैठो और कोई और लिखे तो ध्यान से देखो।
> (अनेक बच्चे चिल्लाते हैं : 'मैं,' 'मैं।')
> *अध्यापिका* : मरुजा, तुम बहुत चुप हो, इधर आओ।
> (मरुजा श्यामपट तक जाती है और जब वह संख्या 1 लिखने का प्रयास करती है तो अध्यापिका उसका हाथ पकड़े रहती है। मगर वह संख्या को उलटा लिखती है।)
> *अध्यापिका* : नहीं, संख्या उलटी लिखी है।
> (वह उसे मिटा देती है और फिर मरुजा का हाथ पकड़कर उसे संख्या 5 लिखने में मदद देती है जो 4+1 का सही उत्तर है।)

यह स्पष्ट था कि मरुजा और जिमिना के साथ अलग-अलग सुलूक किया जाता था। कक्षा में एक बच्ची को स्नेहपूर्ण तरीके से सहायता दी जाती थी और दूसरी को तिरस्कार का अनुभव मिलता था।

साल के लगभग बीच में जिमिना ने विद्यालय छोड़ दिया । उसकी अध्यापिका ने बताया कि घर पर उसकी मां की समस्याओं के कारण उसने ऐसा किया। वह बच्ची की देखभाल नहीं कर पाती थी और इसलिए उसने जिमिना को दूर, उसकी मौसी के पास रखने का फैसला किया था। लेकिन दूसरे अभिभावकों से हमने सुना कि बच्ची अपनी अध्यापिका के साथ कुछ कठिनाइयां महसूस करती थी। इसीलिए उसे एक अन्य विद्यालय में भेज दिया गया था।

बहाली

जब जोर्गे ने रोना बंद कर दिया तो उसे उसके छद्मनाम 'रोवना' से मुक्ति मिल गई। उसकी मां ने उसके दिल में यह बात बिठाई कि वह एक समर्थ बालक है और इमला में अच्छा करके दिखा सकता है। जोर्गे ने अपनी अध्यापिका से बात की : 'मैं आपको पसंद करता हूं...मुझे विद्यालय आना अच्छा लगता है...और मैं कुछ सीख रहा हूं, या नहीं?' उसकी इन भावनाओं का प्रतिदान देते हुए जोर्गे की अध्यापिका ने उससे यह वादा भी कराया कि 'अब मैं कभी नहीं रोऊंगा'।

जिन बच्चों को अपमानजनक नाम दिए गए थे उनमें से अधिकांश अपना आत्मसम्मान वापस नहीं पा सके और, जैसा कि हमने देखा, उन्होंने या तो विद्यालय ही छोड़ दिया या वहां के कार्यकलापों से निर्लिप्त रहकर पड़े रहे।

प्रश्नकर्ता : तुम अपनी अध्यापिका को अच्छे लगते हो?
लुई : नहीं।
प्रश्नकर्ता : क्यों?
लुई : इसलिए कि मैं बदसूरत हूं।
प्रश्नकर्ता : क्या उन्होंने तुमसे कहा?
(लुई हां में सर हिला देता है।)
प्रश्नकर्ता : तुम इसे सही मानते हो?
लुई : मैं बदसूरत हूं।

लुई ने धीरे-धीरे अपने विद्यालय और अपनी अध्यापिका, दोनों से नाता तोड़ लिया। जैसा कि उसकी मां ने स्पष्ट किया :

> पहले वह चाहता था कि हम उसे विद्यालय से बाहर निकाल लें। वह आंटी मिरियम (यानी अध्यापिका) के साथ नहीं रहना चाहता था। उसने लंबे अरसे तक इस बात पर जोर दिया...साल के बीच में उसकी इच्छा थी कि विद्यालय बदल ले। मुमकिन है इसका उस पर असर पड़ा हो क्योंकि इस के बाद से ही वह असफल होने लगा।

परिवार और विद्यालय

बच्चों की सफलता की सीमा का एक महत्वपूर्ण तत्व अभिभावकों और विद्यालय के रिश्तों का स्वरूप है। (प्रेक्षित विद्यालयों में ये रिश्ते मुख्यतः माताओं और अध्यापिकाओं के बीच थे।) हमने देखा कि पहली कक्षा में अनुत्तीर्ण होनेवाले बच्चे मुख्यतः वे थे जिनके माता-पिता अध्यापकों की राय में विद्यालय से 'उचित' रिश्ते नहीं कायम करते थे।

माता-पिता और अध्यापक एक-दूसरे से कुछ मांगें लेकर मिलते हैं और विद्यालय में बच्चे की उपलब्धियों को एक-दूसरे की जिम्मेदारी मानते हैं। प्रेक्षित विद्यालय भी माता-पिता से सहयोग चाहते थे—भौतिक योगदान से लेकर वास्तविक अध्यापन-प्रक्रिया में सहायता तक। लेकिन माता-पिता अध्यापकों से आशा रखते थे कि वे उनके बच्चों की अधिगम संबंधी समस्याएं हल करें।

साक्षात्कारों के विश्लेषण तथा अभिभावक-अध्यापक बैठकों के अवलोकन से हमने यह निष्कर्ष निकाला कि विद्यालय और घर वास्तव में सांस्कृतिक रूप से दो अलग-अलग जगत थे जो हमेशा आपस में नहीं मिलते थे। एक तरफ अधिगम की एक विशिष्ट धारणा लिए विद्यालय था तो दूसरी तरफ मजदूरवर्ग के जीवन के अनुभववाले परिवार थे। हमने देखा कि अकसर अध्यापक न तो बच्चों के अभिभावकों के मूल्यों को और न ही उनके तर्कों को समझ पाते थे और उनकी जीवनशैली को हीन जताने लगते थे। एक 'अच्छा छात्र' और 'अच्छा अभिभावक' बनने के लिए क्या आवश्यक था, इस पर विद्यालय के अपने विचार थे। मसलन हमारे अध्ययनवाले अध्यापक मानते थे कि अभिभावकों का शैक्षिक स्तर उनके बच्चों की शिक्षा के लिए केंद्रीय महत्व रखता है। यह बात पहली कक्षा के लिए खासतौर से महत्वपूर्ण समझी जाती थी जब अध्यापक आशा करते थे कि माता-पिता लिखना-पढ़ना सिखाने में सहायता देंगे।

> *एक माता* (अध्यापिका की प्रत्याशाओं के बारे में) : उन्होंने कहा पढ़ना कैसे सिखाएं, इसकी जिम्मेदारी मुझे लेनी होगी....वह पढ़ने में पीछे है क्योंकि अध्यापिका समझती है कि पढ़ना सिखाना, उसके सबक जांचना उसकी जिम्मेदारी नहीं है....।

जैसा कि हम समझ सकते हैं, सिर्फ ऊंचे शैक्षिक स्तरवाले अभिभावक ही अपने बच्चों को वैसी सहायता दे सकते थे जैसी विद्यालय आशा करता था। जिन बच्चों के, और खासकर अधिगम संबंधी कठिनाइयां महसूस कर रहे बच्चों के माता-पिता ऐसा करने में असमर्थ थे, उन्हें अध्यापक अनाड़ी मानते थे। ऐसे ठुकराव को देखकर ये अभिभावक लापरवाह हो जाते थे और विद्यालय से दूर रहते थे। एक मां ने अध्यापिका के साथ अपने संबंधों के बारे में हमें बतलाया :

> वे तो मुझसे बस यह कहते हैं कि वह गंदा है, अपनी पेंसिलें खो देता है। घर से साफ-सुथरा चलता है मगर (विद्यालय में) गंदा पहुंचता है, (कपड़े) फटे होते हैं। इसीलिए तो मुझे बहुत शर्म महसूस होती है और मैं उनके (अध्यापिका के) पास नहीं जाती।
> मैंने उनसे कुछ नहीं कहा है। वह मुझे सद्भाव नहीं सिखातीं। मैं बहुत अपने तक सीमित रहती हूं। जो मेरा है, सो मेरा है, और यह मेरा है। बस। हर वक्त मुझसे कहती रहती हैं कि मेरा बच्चा गंदा है; मुझे उनसे बातचीत की ख्वाहिश भी कम होती है।

मैं बैठक में नहीं जाऊंगी। मैं जानती हूं वे विरोध करेंगे, वगैरह। मगर फिर भी हुआ यह है कि मैंने फीस नहीं भरी है। जैसे ही वहां जाइए, वो लोग पैसा मांगने लगते हैं। कहते हैं, 'ऐसा भी क्या कि उसके पास 20 पैसे भी नहीं हैं।' लेकिन मेरे पास हैं ही नहीं और इस पूरे साल मैंने फीस भी नहीं दी है। इतनी जगह सफाई देने में शर्म आने लगती है।

हमारे अध्ययनवाले विद्यालयों की राय में 'अच्छे अभिभावक' वे हैं जो चुप रहकर विद्यालय से सहयोग करते हैं। यानी अच्छे अभिभावक वक्त पर फीस देते हैं, विद्यालय के आग्रह पर स्वयंसेवी कार्यों में भाग लेते हैं, अपने बच्चों की प्रगति के बारे में अध्यापकों से पूछते रहते हैं, कुछ सीखने में बच्चों की मदद करते या जरूरत हो तो उन्हें मजबूर करते हैं, पढ़ाई के साज-सामान जुटाते या खरीदते हैं, वगैरह। एक उत्पाती अभिभावक वह है जो इनमें से कुछ भी न करे, अध्यापकों का मुकाबला या उनकी आलोचना करके उनकी इज्जत गिराने की कोशिश करे या जो 'अशिष्ट' या अक्खड़ हो।

अध्यापिका (अभिभावक-अध्यापक सभा में बोलते हुए) : ऐसे मां-बाप भी हैं जो समस्या खड़ी कर देते हैं। हमेशा कार्यकारिणी पर ही सब कुछ छोड़ देते हैं; मांएं कुछ नहीं करतीं। ऐसा नहीं चलेगा; उन्हें किसी न किसी तरह सहयोग करना होगा।
अध्यापिका : अभिभावकों को झेलना मुश्किल है। एक ने कहा वह अपने पति को यहां आकर अध्यापिका से निबटने के लिए कहेगी। आजकल के माता-पिता बड़े अक्खड़ हैं। वे हमारे एक साथी तक की निंदा करते हैं। सोचिए तो सही। उनको झेलना बहुत मुश्किल है, और सिर्फ इस दर्जे में नहीं; फलां दर्जे की अध्यापिका के साथ तो बहुत बुरी गुजरी...।

जब हमने सत्र के दौरान विद्यालय के साथ अभिभावकों के संबंध का अवलोकन किया तो पता चला कि जब भी यह संबंध बिगड़ा, बच्चों की उपलब्धियां भी कम हो गईं। तब अध्यापन के संदर्भ में संबंधित बच्चों का तिरस्कार किया जाता था जिससे अभिभावकों के नकारात्मक रवैए को और बल मिलता था। इस तरह हमने एक दुष्चक्र देखा जो बच्चों को घेरे रहता और प्रभावित करता रहता। इसके विपरित जो अभिभावक अपने रवैए के बारे में विद्यालय के सुस्पष्ट संदेश को समझते और स्वीकार करते थे, उनके बच्चे विद्यालय में भी नाम कमाते थे। विद्यालय से अभिभावकों या खासकर माताओं के संबंध को और गहराई से देखने पर हमें तीन अलग-अलग तरह के दृष्टिकोण देखने को मिले।

दब्बू मां : मारियो पहली कक्षा का बच्चा था जो देसी (मापुशी) मूल के बहुत गरीब और निरक्षर परिवार की संतान था। न सिर्फ मारियो ने विद्यालय-पूर्व शिक्षा नहीं पाई थी, बल्कि दूसरे बच्चों के बाद उसने इस विद्यालय में नाम लिखवाया था। वह एक चुप्पा बालक था और अच्छे व्यवहारवाला समझा जाता था। सत्र के लगभग बीच में अध्यापिका ने कहा कि वह पीछे छूट रहा है और 'उसने कुछ भी नहीं सीखा है।'

मारियो की मां हमेशा विद्यालय आती और अध्यापिका से अच्छे संबंध बनाए रखती थी। वह विद्यालय द्वारा अपेक्षित हर काम करती और रुत्बे में खुद को अध्यापिका से नीचे समझती थी : 'अध्यापिका ही बेहतर जानती है।' अध्यापिका से बातें करके और मारियो की मां से उसके व्यवहार का ढंग सुनकर हमें इस रवैए का पता लगा :

मैंने उससे कहा कि उसे ही नहीं बल्कि मारियो के पिता को भी उसका ध्यान रखना चाहिए; उन्हें सिर्फ गृहकार्य में उसकी मदद नहीं करनी चाहिए बल्कि बैठकों में भी आना चाहिए और नियमित रूप से विद्यालय आकर बच्चे की प्रगति का पता लगाना चाहिए। मैंने उसे समझा दिया कि...।

मारियो की मां ने भी हमसे कहा, 'अध्यापिका बहुत अच्छी है। सभी अध्यापिकाएं मुझे चाहती हैं। इसीलिए तो मैं उनके साथ खुश हूं।'

हमें लगा कि इसी प्रकार के संबंध ने अध्यापिका को मारियो पर विशेष ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। उसने उसकी अलग से मदद की और पूरी कक्षा से कहा कि उसकी मदद करे। इस तरह मारियो अपनी कक्षा का अकेला छात्र था जो श्यामपट पर सही लिख कर दिखाने के बाद अपने साथियों की प्रशंसा पा सका। उसे कक्षा के बाद अध्यापिका की सहायता का भी लाभ मिला। साल के अंतिम दिनों में अध्यापिका ने हमसे कहा कि, 'मैं देखती हूं कि उसने बहुत कुछ सीखा है। लेकिन जाहिर है कि मुझे उसे रोज अपने साथ रखना पड़ा है। मगर वह आगे जरूर बढ़ा है।'

आक्रामक मां : कार्लोस वह बच्चा था जिसके बारे में अध्यापिका कुछ नहीं कर सकी। उसकी मां अलग स्वभाव की थी। अध्यापिका की राय में :
....मारियो और कार्लोस के मामले अलग-अलग हैं। मारियो के मां-बाप निरक्षर हैं मगर उसका ध्यान रखते हैं। वह मुझसे कहती है : 'सेन्योरिता, मैं चाहती हूं वह कुछ सीखे...' और खुशकिस्मती से वह उसकी मदद भी करती है। लेकिन कार्लोस की बात अलग है। उसकी मां कार्लोस की बातों के बारे में बिलकुल चिंता नहीं करती, न उसके साल के बारे में, उसे कोई परवाह ही नहीं।

कार्लोस की मां की राय में :

मैं समझती हूं कि विद्यालय में उसका ध्यान रखा ही नहीं जाता...पहले मैं सोचती थी उसकी अध्यापिका भली है। लेकिन ऐसा है नहीं। अगर वह देखती है कि दूसरे बच्चे आगे बढ़ रहे हैं तो उसे उनकी मदद करनी चाहिए जो नीचे हैं, जो पिछड़ रहे हैं।

वक्त गुजरने के साथ अध्यापिका और मां के बीच हमें लगभग एक असाध्य संघर्ष भी नजर आया। जैसा हमने कहा है, कार्लोस की अध्यापिका उसकी मां को अपने बच्चे के प्रति लापरवाह समझती थी और अध्यापन-अधिगम के कार्यकलापों से उसके असहयोग का विरोध करती

थी, चाहे बच्चे की जरूरत की चीजें खरीदने की बात हो या उसके काम में मदद करने की बात। कार्लोस की मां समझती थी कि विद्यालय उसके बेटे की पर्याप्त सहायता नहीं करता है और इस कारण वह विद्यालय की गतिविधियों में भाग लेने से इनकार करती थी :

> मुझे तब अच्छा नहीं लगता जब वे पैसे की मांग करने लगते हैं। मैं सिर्फ इतना ही बरदाश्त कर पाती हूं क्योंकि अगर उन्हें पता है कि हमारी (आर्थिक) स्थिति कैसी है तो वे इसके-उसके लिए पैसा न मांगें। तुर्रा यह कि मुझे तो अध्यापिका से कोई फायदा नहीं मिलता; फिलहाल तो मैं उससे कुछ नहीं पाती, वह बच्चे पर भी कोई ध्यान नहीं देती। अगर वह बच्चे के बारे में मेरी मदद करे तो ठीक, मैं पैसा दूंगी, मगर इस तरह नहीं।

कार्लोस की मां ने अभिभावक संघ की फीस नहीं भरी, विद्यालय के उत्सव के टिकट नहीं बेचे या दूसरे मौकों पर लगाई गई रकम नहीं चुकाई। इसलिए कार्लोस को मातृदिवस या स्वतंत्रता दिवस जैसे अवसरों पर भाग लेने नहीं दिया गया। इस तरह विद्यालय में और घर पर भी कार्लोस की स्थिति बेहद अजीब हो गई : उसे विद्यालय की रोजमर्रा की और विशेष गतिविधियों से बाहर कर दिया गया और उसके सहपाठी उसके साथ खेलते नहीं थे क्योंकि वे उसे 'काहिल' समझते थे। वह पेंसिलें न होने से नुकसान भुगतता रहा और मां ने इसलिए पेंसिलें खरीदने से मना कर दिया कि वह बच्चे के प्रति विद्यालय की उपेक्षा-भावना से चिंतित थी। जैसा कि हमने कहा है, कार्लोस पहली कक्षा में असफल रहा और उसी में उसे फिर पढ़ने को कहा गया।

होशियार मां : विद्यालय से तामस की मां का संबंध भी कार्लोस की मां जैसा ही था। उसे अक्खड़ और उत्पाती समझा जाता था और वह अभिभावकों के ऐसे गिरोह की सदस्या थी जो अध्यापक-अभिभावक संघ के नेतृत्व की आलोचना करते थे। संघ की एक बैठक में हमने उसे बहुत जोरदार ढंग से और सीधे-सीधे अध्यक्षा और अध्यापिका का मुकाबला करते देखा। उसने बाद में उस बैठक में अपनी प्रतिक्रिया के कारण उसने स्पष्ट किए :

> मैंने दूसरे बच्चों से सुना कि अध्यापिका उसे (तामस को) और कार्लोस को काहिल कहती है। वो किसी घाट नहीं लगेंगे... काहिल किसी घाट नहीं लगते। मुझे लगता है कि जो कुछ अध्यापिका उसके साथ कर रही है, बहुत ही गलत है। उसे कोई सजा दे सकता है तो मैं या उसका बाप ही दे सकते हैं। इसलिए कि इस तरह वह अध्यापिका का तिरस्कार नहीं करेगा जो उसे गोया डराती है। मेरा मानना है कि वह बच्चे पर वैसे ध्यान नहीं देती जैसा देना चाहिए। अगर लड़का विद्यालय में ठीक से नहीं पढ़ता तो उसे खुद चिंता होनी चाहिए...।

इस मां ने अपनी भावनाओं के बावजूद अंततः महसूस किया कि उसका रवैया उसके बेटे

के लिए और भी समस्याएं खड़ी कर रहा है। उसने अपने बचपन का एक अनुभव सुनाया :

> कोई अध्यापक के खिलाफ नहीं जा सकता। जब मैं विद्यालय में थी, मुझसे कहा जाता था कि अध्यापक हमेशा सही होता है। क्यों ? मुझे हमेशा प्रधानाध्यापक के दफ्तर में भेजा जाता था क्योंकि मैं अध्यापिका से बहस करती थी। पता है, मैं बहुत अक्खड़ हूं। मैं बहुत अक्खड़ थी भी। मैं हमेशा पलटकर जवाब देती, तो मेरे मां-बाप को बुलाया जाता था। पहली कक्षा में मुझे स्पेनी की अध्यापिका पसंद न थी; मैंने उसका विरोध किया। इसका फल भुगतनेवाली मैं अकेली थी क्योंकि जब मामला बढ़ जाए तो आगे रहनेवाला ही नुकसान उठाता है।

अक्टूबर के आसपास (सत्र के अंत से तीन माह पहले) तामस की मां ने दूसरे अभिभावकों के सामने अध्यापिका की आलोचना करनी बंद कर दी। उसने मन मारकर सोच लिया कि तामस को उसी कक्षा में फिर पढ़ना होगा। उसने उससे कोई मांग नहीं की मगर उसे विद्यालय भेजती रही। लगभग इसी समय तामस के प्रति अध्यापिका का रवैया भी बदलने लगा। अब वह उसे कम तंग करती और उसके काम में कुछ मदद भी करती। फिर अपनी दुनिया में जीनेवाला तथा अध्यापिका और दूसरे बच्चों से बहुत कम संपर्क रखनेवाला तामस भी इस अलगाव से बाहर आने लगा और विद्यालय में अपनी कारगुजारी सुधारते हुए कक्षा की मुख्यधारा में शामिल होने लगा। लेकिन बदनसीबी से यह तब्दीली बहुत देर से आई और शिक्षा मंत्रालय ने पहली कक्षा के लिए जो लक्ष्य तय किए थे, उन्हें पूरा नहीं कर सका।

निदान केंद्रों में भेजना

कुछ हफ्तों तक अपने छात्रों की प्रगति देखने के बाद अध्यापकों ने इसके बारे में कुछ निर्णय लिए कि उन्होंने जिन पर विचार किया है उनमें से किसकी कारगुजारी (परफार्मेंस) ठीक है और कौन पिछड़ रहा है। समस्याग्रस्त बच्चों को सुसाध्य, अर्थात काहिल मगर मूर्ख नहीं, तथा असाध्य में वर्गीकृत किया जाता था। मसलन कार्लोस की मुख्य समस्या उसकी काहिली थी, इसलिए उसे सुसाध्य समझा गया : 'वह मूर्ख नहीं है; इसलिए मेरा खयाल है कि फिर से इसी कक्षा में पढ़ना उसके लिए बेहतर होगा।' सुसाध्य बच्चों को सफलता के लिए माता-पिता की कुछ अतिरिक्त सहायता दरकार थी। लेकिन असाध्य बच्चों की समस्याओं की और भी गहरी पहचान करने और उन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत थी। अध्यापक लोग इन बच्चों के समस्या-निवारण में खुद को असमर्थ समझते थे। इसलिए वे 'समस्याग्रस्त' बच्चों को उनकी निर्योग्यता की प्रकृति परखने के लिए एक निदान केंद्र में या एक चिकित्सा विशेषज्ञ (नेत्ररोग या वाणी दोष के चिकित्सक) के पास भेज देते थे। लेकिन उन्हें इस तरह भेजने के लिए आवश्यक संपर्क करना अध्यापक या विद्यालय की जिम्मेदारी है, ऐसा वे

नहीं मानते थे। 'कंसल्टा' की व्यवस्था करना (समय लेना) माता-पिता का काम था। कुल मिलाकर यह कि जिन अभिभावकों को ऐसा करने को कहा जाता था वे समय लेने की कोशिश करते थे; फिर भी वह समय आने तक उन्हें तीन माह से ज्यादा तक इंतजार करना पड़ता था। इस बीच प्रभावित छात्र जान जाता था कि उसमें कहीं कोई खामी है और यह कि उसे किसी 'विशेषज्ञ' से मिलने की राह देखनी है। तब तक अभिभावक, बच्चा और अध्यापिका अर्थात सभी संबद्ध लोग 'इंतजार' की दशा में आ चुके होते थे। संबंधित बच्चा स्वतःस्फूर्त ढंग से जो कुछ कर सकता था उससे अधिक कुछ करने की आशा उससे नहीं की जाती थी; कोई काम या गृहकार्य नहीं दिया जाता था। अगर संयोग से बच्चा दूसरों जैसा ही कुछ करने का संकेत दिखाए तो न तो इसे माना जाता और न प्रोत्साहित किया जाता था। एक बार अध्यापिका सोच लेती कि वह समस्या से नहीं निपट सकती तो फिर वह बच्चे की कोई चिंता नहीं करती थी।

निदान केंद्र से अंततः रिपोर्ट आने के बाद अगर उस रिपोर्ट में ऐसी कोई बात कही गई होती तो बच्चे की चिंता यह होती कि वह एक विशेष कक्षा या विद्यालय में जगह पा सके। दुर्भाग्य से सांतियागो नगर में ऐसे स्थान दुर्लभ हैं। इसलिए हमने जिन कक्षाओं का अध्ययन किया उनके बच्चे मजदूर होकर बगैर इलाज के उन्हीं विद्यालयों में पड़े हुए थे और अंततः उन्हें एक ही कक्षा में दोबारा पढ़ना पड़ता था।

असफलता के लिए जिम्मेदार कौन ?

एक को छोड़ सभी कक्षाओं में हमें ऐसे छात्र मिले जो असफल माने जाते थे और किसी न किसी प्रकार इस वर्गीकरण के परिणाम भी भुगतते थे। उन्हें या तो विद्यालय छोड़ना पड़ता या उसी कक्षा में दोबारा पढ़ना पड़ता था। कक्षा के अंदर उन्हें महीनों तक अलगाव झेलना पड़ता था। फिर ये असफल समझे जानेवाले बच्चे ऐसे लोगों से घिरे होते थे जो उनको उनकी स्थिति के बारे में बतलाते और अकसर उनसे कहते कि वे इससे बाहर नहीं निकल सकेंगे। ये तरह-तरह के लोग असफलता की जिम्मेदारी के प्रश्न पर कैसे विचार करते थे ?

अध्यापक

हमने जिन अध्यापकों से बातचीत की, वे कुल मिलाकर यह महसूस करते थे कि शैक्षिक असफलता की जिम्मेदारी आम तौर पर बच्चे की पारिवारिक स्थिति से जुड़ी होती है। वे समझते थे कि अगर किसी बच्चे के सामने विद्यालय में कठिनाइयां आती हैं तो माता-पिता को जिम्मेदारी लेकर अधिगम-प्रक्रिया में उनकी सहायता करनी चाहिए। अध्यापकों के विचार में किसी बच्चे की असफलता अंतिम विश्लेषण में बच्चे और विद्यालय के प्रति परिवार की

अप्रतिबद्धता का परिणाम होती है। अध्यापक लोग इन तर्जों पर परिवारों को तीन खानों में बांटते थे :

- शिक्षित परिवार अधिगम के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। ये माता-पिता विद्यालय में बच्चे की प्रगति का पता लगाने का ध्यान रखते हैं, गृहकार्य में सहायता करते हैं, आवश्यकता पड़े तो बच्चे को विशेषज्ञ (निदान केंद्र, डाक्टर, हकीम) के पास ले जाते हैं, वगैरह।
- अशिक्षित परिवार अपने बच्चों की अधिगम संबंधी आवश्यकताओं से जुड़ा कोई कार्य नहीं करते। ऐसे परिवार सारी जिम्मेदारी विद्यालय पर डाल देते हैं, बच्चे के काम में मदद नहीं करते और विद्यालय की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते।
- शिक्षा विरोधी परिवार वास्तव में बच्चे की अधिगम संबंधी संभावनाओं को नष्ट करते हैं। ये वास्तव में टूटे हुए या गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त परिवार होते हैं। इन परिवारों में बच्चों को अपनी चिंता आप करनी होती है।

जिम्मेदारी के सवाल पर अध्यापकों की राय में जो बच्चे कक्षा में अधिगम की स्थापित गति से तालमेल नहीं बिठा पाते उनके माता-पिता को ही आगे बढ़कर उनकी सहायता करनी चाहिए। अगर यह तालमेल खत्म होने लगता है तो मतलब यह कि अभिभावकों ने अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई है। तब उन्हें अशिक्षित या शिक्षाविरोधी कहा जाता है। ऊपर हमने कार्लोस का हवाला दिया है जिसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि इसी प्रकार की थी। जैसाकि बताया गया, उसकी अध्यापिका की राय में उसे घर से कोई मदद नहीं मिल रही थी और इसलिए उसे अपनी समस्याएं खुद झेलनी पड़ती थीं : 'वह वही कुछ सीख सकता है जो उसने विद्यालय में और अपने निजी प्रयासों से जाना है, इसलिए कि घर पर, नहीं, उसकी मां की मदद से, नहीं।' इसके अलावा कार्लोस की अध्यापिका यह भी समझती थी कि उसकी मां उसकी शिक्षा के ही प्रति लापरवाह नहीं थी बल्कि उस पर भी ध्यान नहीं देती थी : 'मुझे कार्लोस के लिए बहुत दुख है। इसलिए कि मुझे लगता है वह तनहा छोड़ दिया गया है और घर पर त्याज्य है।' लेकिन कार्लोस की अध्यापिका उसकी मां को उत्पाती भी मानती थी जो अध्यापिका से ही नहीं, दूसरे अभिभावकों से भी झगड़ा करती थी।

मुझे लगता है कि घर पर इस महिला के साथ कोई समस्या है; तभी वह अपना सारा गुस्सा उंडेलने विद्यालय में आती है। यही कारण है कि वह गुस्सैल है। मेरा खयाल है, उसे गुस्सा आता है।

दूसरे बच्चों की अधिगम की समस्याओं को भी घर के खाते में डाला जाता था। पामेला, जिमिना, मिगुएल, जोर्गे और तामस, सबको ऐसे परिवारों के सदस्य समझा जाता था, जिनको कुछ अधिक और कुछ कम, अशिक्षित के खाने में रखा गया था। पामेला की अध्यापिका ने हमें बतलाया कि उसकी कुछ अंग-संचालन और ध्यान-केंद्रण की समस्याएं थीं और उसे गृहकार्य में अपनी मां की सहायता चाहिए और घर पर शिक्षा का एक बेहतर वातावरण चाहिए। जिमिना के परिवार को शिक्षाविरोधी समझा जाता था। उसके मां-बाप अलग हो

चुके थे और जब उसकी मां काम पर जाती तो वह एक 'अर्धपागल नौकर' की देखरेख में होती थी। विद्यालय में यह लड़की 'कुछ नहीं करती,' 'झूठ बोलती है' और दोस्तों के फल 'चुराती' है। लेकिन मिगुएल का परिवार उसकी अध्यापिका के अनुसार शिक्षित था। हालांकि उसकी अधिगम की समस्याओं की जड़ें 'घरेलू समस्याओं' में थीं, मगर यह माना जाता था कि मिगुएल की मां विद्यालय में कार्य निष्पादन की फिक्र करती थी। वह अध्यापक-अभिभावक संघ से सहयोग करती थी और गृहकार्य में मिगुएल की सहायता के लिए एक ट्यूटर रखे हुए थी। मगर इन प्रयासों के बावजूद परिणाम अच्छे नहीं रहे। इसलिए अध्यापिका ने उसे ऐसा मामला बतलाया जिसमें विशेषज्ञ की सहायता जरूरी थी, हालांकि उसने स्वीकार किया कि शायद मिगुएल की मां उससे कुछ सख्ती बरतती थी और पर्याप्त ध्यान नहीं देती थी। जोर्गे के माता-पिता उससे अच्छा सुलूक नहीं करते थे; उसे भी ऐसी ही स्थिति से ग्रस्त बतलाया गया। तामस का परिवार एक सामान्य अशिक्षित परिवार का उदाहरण दिखाई देता था। उसे माता-पिता से कतई कोई सहायता नहीं मिलती थी और आकलन यह था कि वह इतना परिपक्व नहीं है कि अपने दम पर उत्तीर्ण हो सके। हालांकि मारियो के परिवार को बेहद निर्धन दशा के कारण और माता-पिता, दोनों के निरक्षर होने के कारण शिक्षाविरोधी माना था, मगर अध्यापिका उनसे हमदर्दी रखती थी। इसका कारण यह था कि जैसाकि हमने दिखाया है, मारियो की मां अध्यापिका की बात मानती थी और कभी उसकी बात को काटती नहीं थी।

बच्चों के मां-बाप

कुछ मां-बाप अपने बच्चों की असफलता के लिए अध्यापकों और विद्यालय के अन्य कार्मिकों को दोष देते थे। वे समझते थे कि अध्यापक उन पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते। कार्लोस, पामेला और तामस के परिवार ने जोरदार शब्दों में कहा कि 'अध्यापिका ही उनकी प्रगति की इतनी चिंता नहीं करती जितनी करनी चाहिए।' वे सोचते थे कि बच्चों को कुछ सीखने के लिए प्रेरित करना विद्यालय की जिम्मेदारी है : 'आप अध्यापिका हैं और आपको मालूम होना चाहिए कि बच्चे का रंग-ढंग कैसे पता किया जाए।'

लेकिन दूसरे मां-बाप जहां पर स्वीकार करते थे कि उन्हें अपने बच्चों की सहायता के लिए कुछ करना चाहिए, वहीं खुद को विभिन्न कारणों से असमर्थ समझते थे। उनके पास विशेष कठिनाइयों से निपटने के 'तेकनिकास' (कुशलता) का अभाव है : 'मैं उसकी मदद जरूर करता हूं, मगर कुछ फायदा नहीं होता;' मैं भरसक कोशिश करता हूं मगर वह काम ही नहीं करता;' 'मैं पूरी कोशिश करता हूं, मगर वह कोई ध्यान नहीं देता।' उन्हें थोड़ा-बहुत पश्चाताप भी होता था : 'हो सकता है ऐसा इसलिए होता हो कि मैं उससे कुछ ज्यादा ही सख्ती बरतता हूं।'

कुछ अभिभावक ऐसे भी थे, जो कहते थे, किसी बच्चे की समस्याएं उसकी अपनी

उपज हैं। 'वह कूढ़मगज है,' मारियो की मां ने कहा हालांकि साथ ही उसने उसकी मदद में अपनी असमर्थता भी जताई : 'मैंने सभी अध्यापकों से कहा है कि मैं अनपढ़ हूं और उसकी मदद नहीं कर सकती।' कभी-कभी घर के वाकियों से मामला और पेचीदा हो जाता था। मिगुएल का बाप मर चुका था। उसकी मौत का उस पर अप्रत्याशित प्रभाव पड़ा। उसकी मां का खयाल था कि इस स्थिति के कारण और साथ ही उसके बागी, अवज्ञाकारी और घर से भाग चुकने के कारण उसके लिए कुछ करना मुश्किल था। समस्या का सामना कैसे करें, यह वह नहीं जानती थी और हार मान चुकी थी : 'मेरा धीरज खत्म हो गया है। सब कुछ मटियामेट हो गया है।'

छात्रगण

बच्चों के साक्षात्कारों पर विचार करके हमने देखा कि लगभग सभी मामलों में चेतना के अलग-अलग स्तरोंवाले बच्चे अपनी असफलता को अपनी करनी का नतीजा मानते थे। अपने 'अध्ययन और गृहकार्य' संबंधी दायित्व की बातें करते हुए अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करते हमने उन्हें सुना। अपनी जिम्मेदारी पर बच्चों के उद्‌गार आसपास के वयस्कों से प्राप्त संदेशों से रंगे हुए थे। कार्लोस का कहना था कि 'वह पैदा ही ऐसा हुआ है' और यह कि 'मैं टेलीविजन जो बहुत अधिक देखता हूं', उसकी मां अकसर उसकी असफलता का यही कारण बतलाती थी। दूसरी प्रतिक्रियाओं पर अध्यापकों का प्रभाव भी देखा जा सकता था। मसलन उन्होंने कहा कि अध्ययन और गृहकार्य करने, 'विद्यालय के साज-सामान लाने' या 'अध्यापिका कक्षा में जो कुछ कहें उसे पूरा करने' के बारे में वे 'ही जिम्मेदार हैं।'

असफल कहे जानेवाले बच्चों द्वारा अपने दायित्व की इन तमाम घोषणाओं को देखते हुए कोई भी हैरान होकर यही सोचेगा कि उनके परवर्ती जीवन पर ऐसे विचार क्या प्रभाव डालेंगे। ये 6-7 साल उम्र के बच्चे थे जो विद्यालय जीवन का अभी-अभी सामना कर रहे थे और फिर भी उन्होंने यह बात मन मारकर स्वीकार कर ली थी कि अपनी असफलता उन्होंने खुद मोल ली है। कार्लोस ने यह बात कही भी थी।

सहपाठी

बच्चों की असफलता के लिए कौन जिम्मेदार है, इस बारे मे उनके सहपाठियों के भी कुछ विचार थे। वे असफलता को खुद समस्याग्रस्त बच्चों के सर मढ़ते थे : 'इसलिए कि वे काहिल हैं;' 'वह कुछ नहीं करता;' 'वह अपनी रंगीन पेंसिलें नहीं लाता,' 'वह अपना गृहकार्य नहीं करता;' 'सेन्योरिता उसे पढ़ाती हैं मगर वह कुछ भी नहीं समझती।' जो कुछ वयस्क लोग कहते, उसे ये बच्चे भी दोहराते थे : 'वे इसलिए काहिल हैं कि घर पर उन्हें कोई कुछ नहीं पढ़ाता, कोई इमला नहीं देता, वे कुछ नहीं करते।' वे आदर्श शिशु को 'व्यवस्थित

और परिश्रमी' मानते थे और यह ठप्पा सबसे अच्छे छात्रों पर लगाते थे। 'काहिल' होना एक 'गंदी मिसाल' है जिसका अनुकरण नहीं करना चाहिए; इसलिए बच्चों को 'काहिलों' से दोस्ती नहीं करनी चाहिए। कार्लोस सिर्फ अपनी अध्यापिका और मां से कटा हुआ नहीं था बल्कि यह भी पाता था कि विद्यालय में उसके दोस्त उसके साथ नहीं खेलते। सिर्फ एक बार, अपने एक सहपाठी तामस में उसे मित्रता की भावना दिखाई पड़ी; लेकिन उसे भी एक 'काहिल' लड़का समझा जाता था।

शैक्षिक असफलता और अध्यापक

विद्यालय की बातों और प्रक्रियाओं पर केंद्रित होने के कारण हमारा शोध असफलता के निर्धारण में अध्यापक की भूमिका पर खास तौर पर केंद्रित था। शैक्षिक असफलता के विभिन्न पक्षों की अनेक व्यख्याएं की जा सकती हैं, हमें यह बात पता थी। फिर भी हमारा विश्लेषण बच्चे की अधिगम संबंधी योग्यता की अपनी समझ के महत्व पर केंद्रित था।

अपने ब्योरों और चार कक्षाओं के साल भर के अवलोकन संबंधी मनन की समीक्षा करते समय हमको पता चला कि जिन बच्चों से कभी उसी कक्षा में फिर से पढ़ने के लिए कहा गया था उन्होंने अपनी अधिगम में असमर्थ वाली आत्मधारणा को पचा लिया था। ये बच्चे असफलता के आरंभिक अनुभवों से गुजर चुके थे। उनकी लिखावट को बदसूरत बतलाया जा चुका था, वे संख्याओं को ठीक से पहचान नहीं पाते थे और चित्र गलत बनाते थे। इन तथा अन्य कारणों से ये बच्चे ठप्पेबाजी के निशाने बनते रहते थे (यानी इन पर कोई न कोई बिल्ला लग जाता)। इन अन्य कारणों में एक उल्लेखनीय कारण अभिभावकों से जुड़ी कठिनाइयां हैं जिनका वर्णन इस पूरे पाठ में किया गया है। सही हो या गलत, ये बच्चे विद्यालय में एक प्रतिकूल वातावरण का अनुभव करते थे जिसमें पढ़ना या इमला लिखना सीखना जैसी सामान्य गतिविधियां भी भय का कारण बन जाती थीं। इस कारण अध्यापक अधिकाधिक इन बच्चों की उपेक्षा करते थे, हमजोली उनसे कतराते थे, और कुछ मामलों में वे घर पर भी अभिशप्त थे।

जाहिर है कि असफल होनेवाले बच्चे अध्यापकों की 'अच्छे छात्र' की धारणा पर खरे नहीं उतरते थे। वे 'काम नहीं करते,' 'जवाब नहीं देते' और 'भाग नहीं लेते,' वे 'उत्साही' नहीं थे, 'प्रेरित नहीं किए जा सकते' थे; वे 'छानबीन करना, पढ़ाए हुए से अधिक कुछ सीखना' नहीं चाहते थे; वे 'रट्टेबाज' थे और 'गैर-जिम्मेदारी' का व्यवहार करते थे। अपने अवलोकन के बाद हमें हैरानी होती थी कि जिन अध्यापन-क्रियाओं को हमने देखा था, क्या वे बच्चों को अच्छे छात्र के बारे में अध्यापकों की परिभाषाओं पर खरा उतरने के लिए प्रेरित भी कर सकती थीं : 'एक अच्छा छात्र वह है जो मेहनत करे, जवाब दे, जो भाग ले, जो लकड़ी का कुंदा न हो, बल्कि एक प्रसन्न शिशु हो जिसे प्रेरित और उत्साहित किया जा सके।' नीचे का उद्धरण ऐसे एक पाठ से लिया गया है जिसमें दूसरी कक्षाओं में अध्यापन

का जो ढंग हमने देखा उससे बहुत सी बातें मिलती-जुलती थीं। इससे संकेत मिलता है कि अगर समस्त अध्यापन-कर्म इतना ही आसान हो तो अध्यापकों की पसंद के छात्र के विकास की कोई संभावना नहीं है। इस दृष्टांत में अध्यापिका ने प्रेक्षक को पहले ही होशियार कर दिया था कि उसकी कक्षा बहुत ही उद्दंड है : 'ये सभी बच्चे विद्यालयपूर्व शिक्षा पा चुके हैं मगर उन्होंने कोई आदत विकसित नहीं की; वे कभी बातचीत बंद नहीं करते, हर चीज इधर-उधर पड़ी छोड़ देते हैं, वे तो इतनी सी बात भी नहीं जानते कि जूते का फीता कैसे बांधा जाए।'

समुच्चय का एक पाठ

(अध्यापिका पाठ के लिए माहौल बनाने का प्रयास करती है और बच्चे लगातार बातें कर रहे हैं।)
अध्यापिका : गृहकार्य को किनारे रखो। सिर्फ रंगीन पेंसिलें बाहर निकालो।
पैट (खुशी से चिल्लाते हुए) : रंगीन। रंगीन।
अध्यापिका (एक छात्र से) : उसे अलग रखो; मैं तुम्हें कुछ और चीज देने जा रही हूं। (कुछ पन्ने आगे की ओर बढ़ाती है।)
अध्यापिका (कक्षा से) : उसे अलग रखो; मैं तुम्हें कुछ और चीज देनेवाली हूं... पन्ने को नीचे की ओर घुमाओ। (करके दिखाती है कि कैसे।)
अध्यापिका : हरेक के पास कागज है ? दानिलो, मैंने तुम्हें कागज दिया था ? अब इधर देखो।
(सभी बच्चे बातचीत कर रहे हैं; कुछ बच्चे पीछे की ओर बैठे एक लड़के से बातें करते हैं।)
अध्यापिका : तैयार हो ? देखूं ?
छात्रागण : हूं हूं।
अध्यापिका : पिछली बार हमने सार्वभौम समुच्चय की बातें की थीं। रोद्रिगो परेरा... ठीक है, अपनी बांहें बांध लो।
(बाद में)
अध्यापिका (समझाती है) : पिछली बार हमने सार्वभौम समुच्चय की बातें की थीं। सार्वभौम समुच्चय वह है जिसमें सारे तत्व मौजूद हों।
छात्र : हूं हूं।
अध्यापिका : तो फर्नांदो, तुम ! ध्यान नहीं दोगे तो यह नहीं पता चलेगा कि तुम्हें करना क्या है। पिछले पाठ में हमने सब्जियों का समुच्चय बनाया था। एदगार्दो, तुम ध्यान नहीं दे रहे ! दानिलो, इधर देखो ! (मुड़कर वह श्यामपट पर चित्र बनाती है।)
अध्यापिका : क्या इसमें उपसमुच्चय बना सकते हैं ? किसका बनाएं ?

छात्र : फलों का।
अध्यापिका : इसमें हैं कौन-कौन से ?
छात्र : आडू और सेब।
अध्यापिका : और क्या है ?
छात्र : पेड़।
अध्यापिका : और ?
छात्र : मकान।
अध्यापिका : अब इधर देखो ! यह रहा एक समुच्चय। इधर देखो क्लादिया, हर बात पर तुम्हारा ध्यान है, सिवा इधर देखने के।
(अध्यापिका बच्चों से कहती है कि पहले समुच्चय के सभी तत्वों के नाम बतलाएं।)
छात्रगण : मैं, मैं।
(अध्यापिका छात्रों के नाम पुकारती है।)
अध्यापिका : रोद्रिगो ?
रोद्रिगो : जहाज।
अध्यापिका : मिल्शोर ?
मिल्शोर : मछलियां।
अध्यापिका : मछलियां, ठीक !
(मिल्शोर ने 'पेसेस' यानी जिंदा मछलियों की जगह 'पेस्कादो' यानी पकड़ी गई मछलियों का नाम लिया था जिसे अध्यापिका दुरुस्त करती है लेकिन वह इस अंतर का स्वरूप नहीं समझाती।)
अध्यापिका : एक और तत्व का नाम कौन बतलाएगा ?
छात्रगण : मैं, मैं।
अध्यापिका : ठीक है, तुम बतलाओ।
छात्र : जहाज।
अध्यापिका : वह पहले ही आ चुका है ? और दूसरे तत्व ?
छात्र : शार्क, शार्क।
एक और छात्र (गाता है) : तिबुरों, तिबुरों (स्पेनी का एक लोकप्रिय गीत जिसका मतलब 'शार्क, शार्क' है।)
अध्यापिका : लेकिन उस समुच्चय में से हम चार उपसमुच्चय बनाएंगे।
(अध्यापिका कागज का एक पन्ना दिखाती है।)
अध्यापिका : पड़ोस के बच्चे की तरफ देखे बिना और बातें किए बिना अपने पन्ने पर बनाओ। देखना है। एक तो जहाजों, एक समुद्री बगुलों का, एक मछलियों का और एक लंगरों का होगा।
(अध्यापिका एक लड़की का बस्ता ठीक करती है।)

अध्यापिका : अब हम अपना काम करेंगे। कागज पर पहले अपना नाम लिखो !
अध्यापिका (निर्देश को बहुत तेजी से दोहराती है) : इस चित्र में एक सार्वभौम समुच्चय है और तुम्हें समुद्री बगुलों, जहाजों, लंगरों और मछलियों के चार उपसमुच्चय बनाने हैं। पहले काली पेंसिल का इस्तेमाल करो और फिर उसमें रंग भरो।
(अध्यापिका कक्षा में घूमती है।)
(एक बच्चे की मां उसे साथ लिए अंदर जाती है और बतलाती है कि उसे 'कंत्रोल' (चिकित्सक से समय) मिला है और अब तो ये बार-बार होने लगा है। अध्यापिका मेरे पास आकर कहती है : 'यह एक और समस्याग्रस्त बच्चा है। वह ठीक तरह अपना काम करता है लेकिन मुझे हर वक्त उसके पास रहना पड़ता है।' वह धीरे से मेज थपथपाती है कि बच्चे ध्यान दें। वह मुझसे कहती है कि अभी-अभी आए बच्चे को वह मेरे पास बिठाएगी ताकि मैं उसे देख सकूं।)
(आस्कर नाम के उस बच्चे के लिए अध्यापिका वही बातें दोहराती है। एक लड़की पीछे की ओर बैठे किसी बच्चे से बातें करती है और उसे बताती है कि उसे क्या करना है। अध्यापिका चल कर उसके पास जाती है।)
अध्यापिका : बस्ता ठीक करो। तुम्हें तो पड़ोसी की ओर देखना भी नहीं चाहिए क्योंकि कई बार हम यह सब कह चुके हैं। लोरेतो, तुम क्या चाहते हो ?
(बच्चे बातचीत बंद कर देते हैं। खामोशी छा जाती है।)
(लड़का लड़की से बातें करता है। अध्यापिका उसके पास तक जाकर उसका कागज देखती है।)
अध्यापिका (खिसियाने लहजे में) : पहले काली पेंसिल इस्तेमाल करो। पहले लीड की काली पेंसिल से यह काम करो।
(अध्यापिका अपनी डेस्क तक जाती है। फिर कक्षा में इधर-उधर घूमती है।)
अध्यापिका : मारिसियो, जो कुछ तुम्हें करना है वह नहीं कर पाते, तुम्हें इसका कारण पता है ? तुम ध्यान क्यों नहीं देते ?
अध्यापिका (कक्षा से) : समुद्री वस्तुओं के इस सार्वभौम समुच्चय से तुम्हें जहाजों, बगुलों, अंकुरों और मछलियों के चार उपसमुच्चय बनाने हैं।
अध्यापिका (गुस्से से) : देखो इस बच्चे को, पेड़ बना रहा है।
अध्यापिका (एक छात्र से) : दूसरा समुच्चय बना रहे हो और पहला अभी तक खत्म नहीं हुआ है।
अध्यापिका (एक और छात्र से) : मिशेल का लगभग हो चुका। जेसिका! एलेक्सी!
(छात्र सीटी बजाता है; आस्कर सामने देखता है और काम नहीं करता। अध्यापिका इधर-उधर टहलती रहती है।)
अध्यापिका : क्या कमी हो रही है ? कितने जहाज हैं इसमें ?
(खामोशी।)

अध्यापिका : रबड़ है तुम्हारे पास ? मैं यह रबड़ दे रही हूं। कागज बहुत अच्छा नहीं है, इसलिए होशियार रहना।
अध्यापिका : एक मिनट इधर देखो ! नीचे एक और सार्वभौम समुच्चय है। तो चार उपसमुच्चय और बनाओ ! कुछ बच्चे तो अपना काम कर भी चुके। तो कौन से उपसमुच्चय बनेंगे ?
छात्रगण : पेड़ों के, फूलों के।
अध्यापिका : वगैरह, वगैरह।
आस्कर : जानवरों के। (वह दूसरे लड़के की ओर मुड़ती है।) लड़के, मैं वह तारा नहीं बना सकती। सर्गियो (मुड़कर आस्कर की पेंसिल की तुलना अपने पड़ोसी बच्चे की पेंसिल से करता है) : देखो, दोनों एक बराबर हैं।
अध्यापिका (खीजकर) : सर्गियो लिजाना, अपना काम करो !
(एक लड़का सर्गियो के बदले चित्र बना देता है।)
प्रेक्षक : यह काम तुम क्यों कर रहे हो ?
छात्र : वह नहीं जानता तारे कैसे बनाए जाएं।
अध्यापिका (डांटने के लहजे में) : काली पेंसिल इस्तेमाल करो दानिलो ! रोद्रिगो !
(एक लड़का खड़ा होता है। अध्यापिका पूछती है कि क्या उसने काम पूरा कर लिया।)
छात्र : मेरी पेंसिल खो गई।
अध्यापिका : तलाश करो।

(बाद में)
अध्यापिका : रोद्रिगो, काम करो और सही ढंग से बैठो !
(छात्र खड़ा होकर अपना काम एक और लड़के को दिखाने ले जाता है।)
अध्यापिका (खीझकर) : इवाल कैतेलन, काम करो, काम !
अध्यापिका (इवान के पास जाती है।) : क्या हुआ ?
(छात्र अपना कागज का पन्ना दिखाता है।)
अध्यापिका : तुमने (लाइनों के बाहर) खींच दिया है। क्या ? रबड़ चाहिए ?
(रबड़ का एक टुकड़ा देती है और छात्र कागज पर चित्र मिटाता है।)
आस्कर : बड़ा मुश्किल है।
(सर्गियो घूमकर आस्कर के लंगरों की ओर देखता है।)
अध्यापिका : सर्गियो लिजाना, काम करो !
(दूसरे बच्चे बातें करते रहते हैं। आस्कर नमूने के चित्र से यथासंभव मेल खाते लंगर बनाने की कोशिश करता है। कई बार वह चित्र को मिटाता है।)
(एक बच्चा रोने लगता है। अध्यापिका उसके पास जाती है।)
अध्यापिका : यह एक और मुसीबत है। पता नहीं इस बच्चे को क्या परेशानी है, हर वक्त रोता रहता है। अब कागज फट गया तो रो रहा है।

अध्यापिका (उस छात्र के पास जाकर एक और पन्ना देती है) : ये लो और अब तुम होशियार रहो !
(एक छात्र दूसरे की काम में मदद करता है।)
(बाद में)
सर्गियो : मुझे लगता है मेरा काम पूरा हो गया। (अपना पन्ना आस्कर को दिखाता है। उसने पेड़ों को ऐसे वृत्त में रख दिया है जिसमें समुद्री वस्तुओं के उपसमुच्चय होने चाहिए। मैं उससे कारण पूछता हूं तो वह कहता है कि इसे निचले उपसमुच्चय में होना चाहिए। मेरे गलत कहने पर वह उसे मिटा देता है।)
सर्गियो : क्या खूब ! अच्छे बच्चे। (उसका इशारा इस ओर है कि अगर अध्यापिका यह गलत ही देख लेती तो क्या होता।)
(वह उसका चित्र देखता है।)
सर्गियो : मैंने लंगर नहीं बनाए थे।

(बाद में)
अध्यापिका (गुस्से में) : रोद्रिगो परेरा, मारिसियो !
(एक छात्र दूसरे को समझाता है कि चित्र कैसे बनाएं।)

(बाद में)
अध्यापिका (खीझ भरे लहजे में) : इवान कैतेलन, तुम क्या कर रहे हो ?
इवान : मैं रबड़ ढूंढ रहा हूं।
अध्यापिका : मैंने एक दिया तो था, उसे भी खो दिया ?
अध्यापिका (गुस्से में) : आंद्रिया, अपनी सीट पर जाओ। तुम्हें क्या चाहिए ?
आंद्रिया : रबड़।
अध्यापिका (एक और छात्र से) : सर्गियो लिजाना, समझ में नहीं आया ? तुमने अपना काम पूरा किया ? तो करो, काम करो !

लगभग यह पूरा पाठ आदेश देते हुए बीता। साफ तौर पर बच्चे स्पष्टीकरण मांगने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे और किसी बच्चे की अधिकतर आवश्यक सहायता कोई और बच्चा ही कर रहा था। पहल, कल्पनाशक्ति या दायित्व बोध के प्रति चिंता का कोई संकेत नहीं मिला। महत्वपूर्ण आदेशों का संबंध मिसाल के लिए प्रयुक्त पेंसिलों की किस्म से तथा काम के बारे में (पहले समुद्री वस्तुओं के, फिर प्राकृतिक वस्तुओं के उपसमुच्चय बनाने से) था। अकुशल प्रबंध के प्रमाण भी देखे गए जिसके कारण अध्यापिका बच्चों की सामग्री संबंधी प्रार्थनाओं में ही काफी समय लगा रही थी।

लेकिन हमने एक अन्य कक्षा का भी अवलोकन किया जिसमें साल के अंत में किसी भी बच्चे को असफल घोषित नहीं किया गया था। इस परिणाम में संभावित योगदान वाली अन्य सभी दशाओं को भूलकर हमने उस कक्षा के साथ उसकी अध्यापिका की अंतःक्रिया

पर ध्यान दिया। हमने देखा कि उद्देश्यों की कड़ाई से पूर्ति सुनिश्चित करने की बजाए वह बच्चों की अधिगम संबंधी अपनी गति पर ध्यान देना बेहतर समझती थी। जैसा उसने कहा :

> शैक्षिक कार्यक्रम की मांग यह है कि बच्चे पढ़ना सीखें मगर प्रवाह में नहीं; उनके लिए सभी ध्वनियों को पहचानना आवश्यक नहीं है। उनके लिए दूसरी कक्षा के अंत तक प्रवाह से पढ़ने की मजबूरी नहीं है।

यह अध्यापिका बच्चों के अपने तौर-तरीकों और आवश्यकताओं को स्वीकार करने के प्रति उतनी ही चिंतित लगती थी। जबरन अनुशासन लागू करने से अधिक जब वह देखती कि उसके छात्र वांछित प्रत्युत्तर नहीं दे रहे हैं तो वह प्रयोग के लिए दूसरी रणनीतियों की तलाश करती। इसके कारण कभी उन्हें आराम का मौका दिया जाता तो कभी बाहर जाकर खेलने का। पाठों के दौरान वह स्नेह और उत्साह का परिचय देती थी। हमने उसे कभी चीखते या आत्मनियंत्रण खोते नहीं पाया।

मैं बच्चों से कभी सख्त बातें नहीं करती; यह मेरे अंदर की कोई अंदरूनी प्रवृत्ति है... मैंने

कभी ऐसा कोई शब्द इस्तेमाल नहीं किया जिससे किसी बच्चे को दुख पहुंचे... इस अध्यापिका ने इस बात का संकेत दिया कि वह बच्चों की सीखने की योग्यता में भरोसा रखती थी :

> मुझे लगता है मेरी कक्षा एक जैसी है। कुछ अंतर जरूर हैं और कुछ बच्चे दूसरों से अधिक मंदबुद्धि हैं लेकिन दो को छोड़ सभी सुसाध्य हैं। लेकिन मेरे पास कमी है तो वक्त की, क्योंकि आप दो का ध्यान रखने के लिए 38 को तो अलग नहीं कर सकते।

उसके ऐसा कहने के बावजूद हमने देखा कि सत्र के दौरान वह कठिनाई महसूस करनेवाले इन दो बच्चों पर अलग से ध्यान देती रही, वह फुरसत के वक्त या विद्यालय के बाद उनकी सहायता करती थी। इनमें से एक छात्र युआन कार्लोस था; उसके सामने बोलने की समस्या थी और वह पढ़ना भी नहीं सीख पाया था। अध्यापिका ने पढ़ाई की एक अलग विधि अपनाई और जितनी बार संभव हुआ उन तक अपना यह विश्वास पहुंचाती रही कि वे सब कुछ सीख सकते हैं।

> मैं नहीं चाहती, न इसमें विश्वास रखती हूं कि युआन कार्लोस इसी कक्षा में दोबारा पढ़े क्योंकि उसमें बहुत सारे अच्छे गुण हैं। मेरा खयाल है कि उसकी सीखने संबंधी कुछ खास समस्याएं हैं; जो कुछ वह सीखता है उसे लगातार भूलता रहता है हालांकि वह मेहनत करने को तैयार है। उसका व्यवहार बहुत अच्छा है; जाहिर है कि जो कुछ करना हो उस पर ध्यान देता है, लेकिन भूले बिना वह पढ़ाई के कायदों को पकड़ नहीं सका है। हाल में हमें कुछ सफलता मिली है, लेकिन अभी भी वह दूसरों से बहुत पीछे है। जो पुस्तक वह पढ़ता है मुझे उसे बदलना पड़ा। अब मैं उसे एक और रीडर पढ़ा रही हूं।

अभिभावकों के साथ अपने संबंध में यह अध्यापिका उनकी सहायता पाने की कोशिश करती थी और उनसे यह प्रार्थना करती थी कि वे बच्चों से बहुत सारे तकाजे न करें। उसने उनसे यह भी कहा कि असंतोषजनक अधिगम पर दंड देने से परहेज करें ताकि उसके काम में बाधा न आए। अकसर इसके कारण वह अभिभावकों का विरोध झेलती थी। एक अभिभावक ने हमसे बतलाया :

> मैं चाहती हूं कि वह अपना गृहकार्य करे, पढ़े-लिखे, और सेन्योरिता (अध्यापिका) कहती हैं कि मैं उससे ज्यादा तकाजे न करूं, बहुत मांगें न रखूं। उन्होंने कहा कि लड़का थोड़ा-थोड़ा करके सीखेगा, कुछ वक्त लेगा, लेकिन आखिर में जरूर सीखेगा। उन्होंने मुझसे धीरज रखने की बात कही।

दूसरी कक्षाओं की अपेक्षा इस अध्यापिका की कक्षा में बेहतर छात्रों को प्रवेश दिया गया था, ऐसा मानने का कोई विशेष कारण नहीं है। फिर भी इस कक्षा का वातावरण और छात्रों के परिणाम दूसरों से भिन्न थे।

अध्यापन की स्थितियां

अधिगम के प्रति अध्यापक के दायित्व के प्रश्न पर इस विवेचना से काम की उन स्थितियों को खारिज करना उचित नहीं होगा जिनमें अध्यापन-प्रक्रिया चलती हैं। अध्यापकों की दृष्टि में उनके काम की गुणवत्ता को प्रभावित करनेवाले कारक ये हैं : खराब भौतिक परिस्थितियां, नौकरशाहाना मांग, पर्याप्त तकनीकी सहायता का अभाव, पाठ्यचर्या के दोष, पाठ्येतर कार्यकलाप, तथा अभी हाल में विद्यालय व्यवस्था के नगरनिगमों के हाथ में जाने के नतीजे।

विद्यालयों के भवनों को वे संतोषजनक नहीं मानते थे। हमने जिस अध्यापिका के समुच्चय वाले पाठ का वर्णन किया है वह एक लंबी तंग कक्षा में पढ़ाती थी जिसकी खिड़कियां छोटी-छोटी थीं। बच्चे कुर्सियों की दो कतारों में जोड़ों में बैठते थे और उनके बीच एक पतला सा गलियारा था। आसपास शोर मचता रहता था :

> इस विद्यालय की एक और समस्या यह है कि जगह पर्याप्त नहीं है। जाड़ों में कमरे में बेहद अंधेरा होता है। कमरा बेहद लंबा है, पीछे बैठे बच्चे उसे देख-सुन नहीं सकते। इससे मुझे आगे-पीछे दौड़ते रहना पड़ता है। बच्चे एक पर एक लदे होते हैं। कोई पढ़ा नहीं सकता। आप कुछ सुन नहीं सकते। बैंड (कसरत कराने वाले स्कूल बैंड) की समस्या को न भी जोड़ें तो यह अपने-आप में मुसीबत है।

अध्यापकों को लगता था कि उन्हें मार्गदर्शक सलाहकार जैसे दूसरे पेशेवर लोगों की सहायता नहीं मिल रही थी :

> मार्गदर्शक सलाहकार को विद्यालय में, कार्यशालाओं और समूहों में, उनकी जानकारी पाने, उन्हें टेस्ट देने, उन्हें समझना सीखने के लिए सौ प्रतिशत उपस्थित रहना चाहिए। या फिर वे अभिभावकों का परीक्षण करें, उन्हें फिल्में दिखाएं, वार्ताएं आयोजित करें, वग़ैरह। यह एक आदर्श स्थिति है। आदर्श इसलिए कि अगर कोई कहे कि ऐसा हो सकता है तो उससे कहा जाता है कि यह एक भ्रम है, ऐसा हो नहीं सकता। अहम बात तो बस यही रही है कि अनुदान पाने के लिए ढेर सारे बच्चे हों। अगर किसी बच्चे की कोई समस्या हम देखें तो उसे मदद मिलनी चाहिए। समस्या का पता बताकर हम क्या पाते हैं ? साल के शुरू में हमसे हर बच्चे के नाम एक लंबा-चौड़ा फार्म भरने को कहा जाता है। हमने भरा और हुआ क्या, क्या हुआ ? मकसद बच्चों की मदद करना था मगर हुआ कुछ भी नहीं।

निर्देशित पाठ्यचर्या को लादी गई चीज माना जाता था और अध्यापक पाठ्यचर्या के विकास में अपनी भागीदारी के अभाव का विरोध करते थे :

> मुझे तो बस यह पता है कि सब कुछ ऊपर से आता है और ऐसा हमेशा से होता आया है। अध्यापकों ने कभी कोई पाठ्यविवरण तो तैयार किया ही नहीं। मेरा खयाल है कि अगर प्राथमिक पाठ्यचर्या की बात हो तो प्राथमिक अध्यापकों को बुलाना चाहिए। अब पाठ्य-पुस्तक का ही सवाल ले लीजिए। मेरी राय में तो यह शुद्ध व्यापार था। मगर हमें वही पाठ्यपुस्तक पढ़ाने के लिए मजबूर किया गया।

जिन अध्यापकों का हमने साक्षात्कार लिया वे भी व्यवहृत कार्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों की गुणवत्ता को लेकर दुखी थे :

> मैं इन पाठ्यपुस्तकों को असंतोषजनक समझती हूं। पहली बात, गणित का पाठ्यक्रम बहुत भारी है और पाठ्यपुस्तकें अपर्याप्त हैं। समाजविज्ञान का पाठ्यक्रम बहुत छोटा है। पूरे साल के लिए समाजविज्ञान के कुल दो या तीन पाठ हैं। प्राकृतिक विज्ञान ठीक हैं क्योंकि इसमें नई पद्धति का प्रयोग हुआ है। विशेष तकनीकें बहुत लंबी हैं। मसलन एक विषय का दूसरे से कोई संबंध नहीं है।

पाठ्येतर कार्यकलापों को सामान्य कार्यकलाप में बाधक समझा जाता था, बजाए यह मानने के कि उनका एक शैक्षिक उद्देश्य होता है। खासकर यह बात भी थी कि उनकी व्यवस्था अध्यापक नहीं बल्कि प्रधानाध्यापक या बाहर के अधिकारी करते थे :

> इन सभी कार्यों में बहुत अधिक समय लगता है। इसलिए कि जैसे ही हम कोई काम शुरू करते हैं, हमें उससे हटा दिया जाता है और फिर एक नुमाइश का प्रबंध करना या बच्चों को कविता पाठ के लिए तैयार करना या कोई गीत तैयार करना पड़ता है। हमें बाधा झेलनी पड़ती है और बच्चों को जो कुछ पढ़ा रहे हों उसका सिरा खो जाता है, खासकर यह देखकर कि बच्चों में भूलने की प्रवृत्ति होती है। इतने सारे पाठ्येतर कार्यक्रम ! हमें आवाज उठाने या मत देने का अधिकार नहीं। कोई हमसे राय तक नहीं लेता।

तमाम दूसरी व्यवस्थाओं की तरह ये अध्यापक भी विद्यालय-जीवन के संचालन के बेहद सोपानबद्ध और नौकरशाहाना तौर-तरीकों से कुंठा का अनुभव करते थे :

> कभी-कभी मैंने किसी बच्चे की समस्याओं के बारे में (निदान केंद्रों को) रिपोर्टें भेजी हैं... और यहां समस्या है बहुत ज्यादा नौकरशाही की। कोई बच्चे के फायदे का कोई काम करने का भी फैसला नहीं कर सकता क्योंकि पहले तो इस पूरे सोपान से गुजरना पड़ता है हालांकि मुझसे हमेशा यही कहा गया है कि सुनो दोस्त, अगर तुम्हें इसमें सुविधा दिखाई देती है तो यही करो।

अध्यापकों की राय में विद्यालय व्यवस्था का नगरनिगमों के हवाले किया जाना (देखें अध्याय 1) कठिनाइयों का सबसे हाल का स्रोत था। विद्यालय जब केंद्रीय नियंत्रण की बजाए स्थानीय निगमों के नियंत्रण में आए तो अध्यापकों को प्रभावित करनेवाले हर तरह के अनदेखे परिणाम सामने आए। मसलन नए नियमों में कहा गया था कि राज्य से अनुदान पाने के लिए विद्यालयों को प्रतिकक्षा रोजाना 45 की औसत उपस्थिति दिखानी होगी। अध्यापकों से इस पर ध्यान देने को कहा गया कि उपस्थिति कम न हो, भले ही छात्रों को घरों से खींचकर बुलवाना पड़े। अध्यापकों को जिन भौतिक स्थितियों में काम करना पड़ता था, उन्हें देखते हुए वे बच्चों की इस संख्या को भी ज्यादा समझते थे :

> मुझे तो यह भी बहुत ज्यादा लगता है। यह बहुत बड़ा काम है क्योंकि ऐसी मांएं भी हैं जो चाहती हैं... मसलन एक मुझसे कहती है : 'उसने अपना गृहकार्य किया?' वे सोचती हैं कि हमें सिर्फ उनके बच्चे का ध्यान रखना पड़ता है, लेकिन दूसरे तमाम बच्चे भी तो हैं।
>
> आदर्श संख्या तो कमोबेश 15 है। लेकिन मेरा खयाल है कि 25 हों तो भी अच्छा काम किया जा सकता है। इन बच्चों की समस्याओं और कठिनाइयों को देखते हुए तो यह और भी जरूरी है। अगर उनको अच्छी खुराक मिलती तो वे समस्याएं नहीं आतीं, जो आ रही हैं।

अध्यापकों को रोजमर्रा के शैक्षिक कार्य ही नहीं करने पड़ते थे बल्कि नगरपालिका व्यवस्था ने बहुत से फार्म भरने का बोझ तथा पाठ की तैयारी पर और अधिक नियंत्रण भी लाद दिया था। इन तकाजों के बारे में अध्यापकों ने तय किया था कि या तो ये काम पाठ के दौरान किए जाएं या फिर विद्यालय के बाद जब वे थके होते थे और घर पर करने को

और काम भी होते थे :

> थका देनेवाला काम है। यहां न पूरा हो सके तो घर पर करना होता है। यकीनन ऐसे लोग भी हैं जो कहेंगे, 'मैं कुछ भी घर नहीं ले जाता।' लेकिन मैं दफ्तर का काम यहां नहीं कर सकती। मैं लिख ही नहीं सकती; इसके लिए मुझको खामोशी और शांति चाहिए।
>
> यह तकाजा अभी हाल का है। मुझे याद है कि पहले हमारे पास सिर्फ एक विषय होता था। अब जैसा कि साथियों का कहना है—हम आपस में बातें भी करती हैं—हमें योजना बनाने के लिए और समय चाहिए। हम अपना वक्त बरबाद करते हैं, इस अर्थ में कि जिन बच्चों की कुछ समस्याएं हैं उन पर ध्यान नहीं दे पाते। वह करने की बजाए हमें रुक कर कागज, और ज्यादा कागज भरने पड़ते हैं।
>
> खानापूरी में आदमी के मुख्य कार्य में से, बच्चों को पढ़ाने, उन्हें पर्याप्त समय देने की बजाए काफी समय निकल जाता है।

विद्यालय में (अनुदान पाने के मकसद से) छात्रों की उपस्थिति संबंधी दबाव इतना अधिक था कि अध्यापक लोग जिस चीज को विद्यालय का 'मौद्रीकरण' समझते थे, उसका विरोध करते थे :

> मेरी समझ में विद्यालय तो व्यापार बन चुके हैं। तकनीकी विभाग के लोग (परिवेक्षण-कर्मी) फोरमैन जैसे होते हैं तो यह देखते हैं कि यह या वह काम हुआ या नहीं। यहां विद्यालय में इसलिए भी समस्याएं हैं कि आसपास दूसरे विद्यालय भी हैं। (उसी इमारत में दिन के दूसरे भाग में दो अन्य विद्यालय भी चल रहे थे।) हमें नहीं पता कि और छात्र लाने के लिए क्या करें। हमसे तो यह भी कहा गया है कि बच्चों और उनके माता-पिता से कोई मांग न करें ताकि उन्हें किसी और विद्यालय में जाने से रोका जा सके। इसलिए हमें यह दिखावा करना पड़ता है कि बच्चा प्रगति कर रहा है भले ही वह न कर रहा हो, ताकि बच्चे के विद्यालय छोड़ने की स्थिति से बचा जा सके।

नगरपालिका व्यवस्था ने रोजगार की सुरक्षा के लिए भी खतरे पैदा किए :

> कुछ विद्यालय तो गायब ही हो चुके हैं। खत्म हो गए हैं वो। और इससे ढेरों समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। कार्मिक बदले हैं। दूसरी जगहों पर उनके रोजगार छिने हैं। यहां कुछ लोगों को सेवानिवृत्ति लेने को कहा गया है। हर तरह का डर मौजूद है, और इस तरह उन्होंने हमारे हाथ बांध दिए हैं। कोई न सुरक्षित है न निश्चिंत। मैं कहता हूं अगर कोई सुरक्षित न हो, अगर वह बीमारी या ऐसी किसी बात से सुरक्षा महसूस न करे तो कम से कम उसे रोजगार में तो सुरक्षा मिले। नहीं मिलती तो कोई चैन के साथ काम नहीं कर सकता। जब से हम नगरनिगम के हवाले किए गए हैं, हर साल हमें एक नया अनुबंध भरना पड़ता है। वह अनुबंध खत्म हो तो हमसे कहा जा सकता है कि अगले साल हमारे अनुबंध का नवीनीकरण नहीं होगा। हालत अब वह नहीं रही जो पहले थी।

नगरपालिका व्यवस्था ने नियंत्रण और परिवेक्षण की एक और भी पेचीदा प्रणाली को जन्म दिया। कारण कि अब यही काम मंत्रालय के अधिकारी और निगम के कार्मिक, दोनों करने लगे :

> अगर कोई पेशेवर और जिम्मेदार व्यक्ति हो तो निगरानी में रहने से उलझन होती है... वे हमारी योजनाओं को देखने के लिए मुझे नहीं पता कितनी बार, आए, यह जांचने कि ये नियमों के मुताबिक हैं भी या नहीं। मुझे यह ज्यादती लगती है। वे हमेशा हमारी निगरानी और जांच करते रहते हैं जबकि हमें अकेले छोड़ दिया जाए तो बेहतर होगा। ये ब्योरे ऐसे हैं जो हिम्मत तोड़ते हैं। लगता है वे हमेशा यही देखते रहते हैं कि खानापूरी की या नहीं की। क्या इसे जमा किया ? अगर इसे 4 बजे जमा करना हो और आपने 5 बजे किया तो... ऐसे ही ब्योरे हैं, ऐसी ही जांच होती है।

अध्यापकों की वृत्ति संबंधी कुंठा को व्याख्यायित करनेवाली स्थितियों पर विचार करते समय हम पहले विवेचित समस्याओं में कमी लानेवाले कुछेक कारकों को रेखांकित करना चाहते थे। फिर भी इन स्थितियों की तीव्रता के बावजूद अध्यापनकर्म में जो भी तत्व शामिल होते हैं उनमें से सबको नियतिवादी ढंग से अध्यापक के दायित्वक्षेत्र से बाहर के कारकों के सर नहीं मंढा जा सकता। कठिनाइयां हमेशा सीमाएं ही पैदा नहीं करतीं। वास्तव में उन्हें पार करने की योग्यता अध्यापन में और अधिक सफलता की दशाएं भी पैदा कर सकती हैं। अध्यापकों को इसका विवेक करना होगा कि कौन सी सीमाएं अपरिहार्य हैं और कौन सी नहीं हैं। हमारे अध्ययन में शामिल जिस अध्यापिका का कोई भी छात्र साल के अंत में असफल घोषित नहीं किया गया, उसने पहले आसान अनुभवों का सामना किया था। उसने दूसरे अध्यापकों जैसा ही प्रशिक्षण प्राप्त किया था और अध्यापन की वैसी ही उलझनभरी स्थितियों का सामना किया था। अपने अध्यापनकर्म के शुरुआती बरसों में उसे एक गांव में काम करना पड़ा जब उसे विद्यालय जाने के लिए रोज लंबी दूरी तय करनी पड़ती थी। वहां वह बहुत गरीब और निरक्षर माता-पिता के बच्चों को पढ़ाती थी। जहां तक उसके अध्यापन कर्म का सवाल था, इस अनुभव के बारे में उसकी व्याख्या फिर भी दूसरे अध्यापकों की व्याख्याओं से भिन्न थी :

> वह अनुभव बहुत भयानक था मगर उपयोगी रहा। यह हमारे पेशे का दूसरा पहलू था, यहां जो कुछ हम करते हैं उससे अलग... वह शायद उस प्रकार का अनुभव था जो व्यक्ति को यह सिखाता है कि अध्यापन कैसे करना चाहिए।

8. सफलता और असफलता की व्याख्याएं

इस अध्ययन में शामिल विद्यालयों और उनकी कक्षा के जीवन की पेचीदगी का हमने अनुभव किया। इसके बाद कभी-कभी सामाजिक पृष्ठभूमि से मनमाने ढंग से निपटने के तरीके तथा उनकी भौतिक स्थितियों को देखा, अध्यापन और अधिगम की और साथ ही विद्यालयों की गतिविधियों में प्रयुक्त अर्थ-सरंचनाओं की परस्पर-विरोधी शैलियों का भी हमने अनुभव किया। तब हमको पता चला कि विद्यालयों में सफलता-असफलता के निर्धारण का सामान्यीकरण करना आसान नहीं होगा। फिर भी हमें लगता था कि प्रेक्षित जीवन की पुनर्रचना के प्रयासों से उन घटनाओं को उजागर करने की कोशिश खारिज नहीं होनी चाहिए जो प्रेक्षक की दृष्टि में महत्वपूर्ण थे। विभिन्न देशों के नृजातीय विश्लेषण के दौरान इसके विशेष संदर्भों के विशेष चित्र सामने आए जिनसे पता चला कि अपने तमाम रोजमर्रा तथा प्रमुख क्रियात्मक व्यवस्थाओं के साथ विद्यालयों का जीवन कैसा था। इतना ही नहीं, इन देशों में कुछ बातों की पुनरावृत्ति भी देखने को मिलीं। इससे शैक्षिक असफलता की दशाओं के और अधिक सामान्य बोध की संभावना का संकेत हमें मिला। इसलिए उपलब्ध तथ्यों के ढेर से इस प्रकार की आवर्ती घटनाओं को हमने अलग करके व्यापक श्रेणियों के तहत रखा है। अपनी परिभाषा में ये कोटियां पाठक को सुस्पष्ट और सरल लग सकती हैं, मगर उनको जान-बूझकर इसी प्रकार निरूपित किया गया है ताकि वे तथ्यों के यथासंभव निकट रहें और अमूर्त सामान्यीकरण की ज्यादतियों से बचा जा सके।

इन चार देशों की स्थितियों को एक सामान्य खांचे में रखकर देखने तथा कुछ व्याख्यामूलक प्रवर्ग बनाने के प्रयास के दौरान हमने तथ्यों का संधान दो अलग-अलग तरीकों से करने की जरूरत महसूस की। पहले तो कक्षा के अंदर-बाहर की वे प्रक्रियाएं हैं जिन्हें हम 'प्रेक्षित' कह सकते हैं; इनसे हमने महत्वपूर्ण घटनाओं को अलग करके उनको सामान्य विषयवार विवरणों में रखा है। दूसरे, हमने उन अर्थों पर गौर किया है जिन्हें साक्षात्कार के दौरान परोक्ष रूप से शैक्षिक प्रक्रिया के विभिन्न भागीदारों, और खासकर अध्यापकों ने हम तक पहुंचाया या जिनका निष्कर्ष हमने घटनाओं के अवलोकन के बाद निकाला; इनमें भी हमने उन पर ध्यान केंद्रित किया है जिन्हें हमने उनकी व्यावहारिक शैक्षिक विचारधाराएं कहा है। यहां विचारधाराओं से तात्पर्य यथार्थ संबंधी चिंतन के वे तरीके हैं जो घटनाओं पर आरोपित किए जाते हैं या जो कार्यों का औचित्य रखने या स्थितियों की व्याख्या करने के काम आते हैं; यह काम कभी-कभी विकृत और अधूरे ढंगों से भी किया जाता है। फिर

इन 'प्रेक्षित' प्रक्रियाओं और 'अनुमेय' विचारधाराओं ने असफलता के कारणों या व्याख्यात्मक कारकों के संकेत पाने की संभावना पैदा की और इसके सुझाव दिए कि उनके प्रभाव को कम करने के लिए हम क्या कर सकते हैं।

कक्षा में प्रेक्षित प्रक्रियाएं

अध्यापक कक्षा के केंद्रीय चरित्र होते हैं और उनकी चहारदीवारी के अंदर जो कुछ होता है उसका निर्धारण ज्यादातर वही करते हैं। इसलिए इस अध्ययन में हमने ज्यादातर उन्हीं पर और उनकी गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित किया है। इस तरह हमने पाया है कि सामान्यतः अनेक स्थितियां असफलता की दशा से जुड़ी हुई हैं। उनकी पहचान अलग से अध्यापकों से संबद्ध विभिन्न व्यवहारों के रूप में की गई है, मगर इसका मतलब यह नहीं कि ये सिर्फ अध्यापकों से जुड़ी चीजें हैं या वे अभिभावकों समेत अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया में भागीदार तमाम कारकों को स्वीकार नहीं हैं। हमारा विश्वास है कि उनकी सार्वभौमिकता ही उनकी विशेष शक्ति का कारण है।

शुभचिंतक निरंकुशता

शुभचिंतक निरंकुशता को हम स्वेच्छाचारिता का दूसरा नाम कह सकते हैं। हालांकि यह ठीक-ठीक या मात्र वही नहीं है। अध्ययन में शामिल लगभग सारे अध्यापक अपनी-अपनी कक्षा के घटनाप्रवाह के बारे में अपने दायित्व का बोध रखते थे; हां यह जरूरी नहीं कि वे उसके नतीजों के बारे में भी ऐसा ही महसूस करें। घटनाओं के संचालक या जिम्मेदार होने के प्रति अध्यापकों के बोध के कारण लगता था वे खुद को ऐसे अध्यापक-छात्र संबंध में रखकर देखते थे जिसमें छात्र अध्यापक पर कृपा करते हैं। बच्चों से अध्यापकों का मिसाली संबोधन यह था कि वे कोई काम 'अध्यापक-हितार्थ' करें : 'हेगन्मे एस्तो' (मेरे लिए करो)। अध्यापकों को सेवा प्रदान करना बच्चों का कर्तव्य माना जाता था और, जैसा कि कहा गया है, मुख्य सेवा यह थी कि वे कुछ सीखें। कुछ उल्लेखनीय अपवादों को छोड़कर बच्चों से ज्यादातर यही कहा जाता था कि सटीकता से अध्यापकों के निर्देशों का पालन करें। ये निर्देश कम या ज्यादा प्रेम या सम्मान के स्वर में दिए जाते थे।

मसलन बोलीवियाई कक्षाओं में बच्चों के अपने अधिगम-जगत का शायद ही कोई हिस्सा अधिगम-सामग्री के रूप में प्रयुक्त होता हो। लगभग तमाम अध्यापक जिस अधिगम-प्रक्रिया की खूब बातें करते थे, उसमें छात्रों की भागीदारी की धारणा नहीं के बराबर थी। उसमें बच्चों को सिर्फ इसकी इजाजत थी कि सवालों के जवाब दें या चुनिंदा छात्र दिए गए काम पूरे करें। भागीदारी की इस धारणा की एक अतिवादी मिसाल चिली के विद्यालयों में आयोजित छात्र परिषदों की बैठकों में नजर आई। ज्यादातर ये बैठकें अनुशासन और व्यवस्था लागू

करने में अध्यापकों को सहायता पाने के अवसर प्रदान करती थीं। इसे छोड़ दें तो छात्रों को अपनी इच्छा से यह तय करने तक का मौका नहीं मिलता था कि इन परिषदों में नेतृत्वकारी भूमिकाएं कौन निभाए।

(चौथी कक्षा के एक वर्ग में अध्यापक छात्रों से उनकी स्थिति पर चर्चा कर रहा है जिनको छात्र परिषद में कोई जिम्मेदारी नहीं मिली है। वह बतलाता है कि किसी समिति या विद्यालय की अन्य गतिविधियों में उन सबको भाग लेना चाहिए। फिर वह आगे कहता है कि वह कुछ छात्रों की स्थितियों को बदलेगा।)
अध्यापक : ...और मुमकिन है नेतृत्वकारी छात्र भी। मैं उन्हें बदलूंगा।
अध्यापक : अध्यक्ष, सत्र का आरंभ करो।
छात्र अध्यक्ष : ईश्वर का नाम लेकर सत्र आरंभ होता है।
(सचिव कार्य विवरण पढ़कर सुनाता है।)
अध्यापक : अब देखते हैं। हम उन्हें जिम्मेदारी देंगे जिन्हें यह नहीं मिली है। महीने के आखिर तक हम अपनी कापियां भी बदलेंगे। कापियों को खोना भी मत, खो दिए तो उनके दाम देने होंगे। इसके लिए तुम जिम्मेदार होगे। हरेक की कुछ जिम्मेदारी होनी चाहिए। हां तो बच्चों, यह चीज बाद में हमारे काम आती है जब हम बड़े होते हैं और कुछ काम करते हैं।

कुछ छात्रों को चुनना और उन्हें विशेष स्थिति प्रदान करना छात्रों की भागीदारी की व्याख्या करने तथा अपनी सत्ता को प्रत्यायोजित करने के अध्यापक के अधिकार को जताने का एक और रूप था। चुने गए बच्चे को तब ऐसे अनेक कामों से मुक्त कर दिया जाता था जो दूसरे करते थे। वेनेजुएला में ऐसा ही दृष्टांत पैत्रीशिया (अध्याय 5 देखें) का था जिससे खास सुलुक किया जाता था और इसमें यह भी शामिल था कि दूसरे बच्चे उसकी आज्ञा मानें या फिर अध्यापिका की डांट खाएं। इसी तरह बच्चों की प्रार्थनाएं स्वीकार करने में भी चयनवृत्ति का मनमाना व्यवहार संभव था जिसका पता निम्न स्थिति से चलता है।

क्रिश्चियन (अध्यापिका से) : मैडम, मैं टायलेट जाऊं ?
(वह जाने की आज्ञा मिलने का इंतजार किए बिना कक्षा से बाहर चला जाता है।)
मार्सेला : मैं टायलेट जा सकती हूं ?
(अध्यापिका आज्ञासूचक संकेत देती है।)
गैब्रिएल : मैं टायलेट जा सकता हूं ?
(अध्यापिका इनकार का संकेत करती है।)

अध्यापक के संबंधों के इर्दगिर्द तो मसीहाई हाल नजर आता था। उसका एक दृष्टांत वेनेजुएला वाले अध्याय में दिया गया एक एकल संवाद है जिसमें अध्यापक आम तौर पर लंबे समय तक प्रश्न पूछते और स्वयं उत्तर देते हैं और आम तौर पर विषयवस्तु को अनुशासन के सवालों से गड्डमड्ड करते चलते हैं। भागीदारी को बढ़ावा देने तथा अधिगम-प्रक्रिया में

बच्चों के संभावित योगदान का कारगर निषेध करने (देखें अध्याय 5) का एक और रूप यह था कि अध्यापक जो कुछ कह चुके होते थे, उसका सारसंक्षेप प्रस्तुत करने के लिए अपने कथन का या पुस्तक से लिए गए किसी कथन का उपयोग करते थे। अध्यापन में सत्ता के व्यवहार का एक और रूप था जो जाहिरा तौर पर जानबूझ कर नहीं अपनाया गया था, मगर अनेक कक्षाओं में हमने इसे देखा। इसमें अध्यापक गलत कथन के द्वारा दूसरे किसी कथन को शुद्ध करता था।

(अध्यापिका एक छात्र से गृहकार्य दिखाने को कहती है।)
छात्र : मैं भू... भू... भूल गया। ('से मे ले क्वेदो एन ला कासा।')
अध्यापिका : कैसे तुम भू... भू... भूल गए ? तुम सही बोलना कैसे सीखने सकता?
('कु आंदो वई ए अप्रेंदेर ए हैबलार बिएन ?')

कोई अध्यापिका यह दिखाकर भी अपनी स्थिति का एहसास कराती थी कि किसी छात्र के उत्तर या योगदान पर वह प्रतिज्ञान (फीड बैक) दे या न दे, यह तय करना उसका अधिकार था। जैसा कि कोलंबिया वाले अध्ययन में दिखाया गया है, छात्रों के उत्तर की उपेक्षा करना अध्ययन में शामिल दूसरी सभी कक्षाओं में आम बात थी। अकसर अध्यापक छात्रों की गलतियों को एक प्रकार से अपना अपमान समझते थे जिस पर वे दंड की धमकी देते थे : 'हे, कभी तुम्हारा कोई काम ठीक से नहीं होता। अगली बार मैं तुम्हें कार्यालय में भेज दूंगी (जो एक प्रकार का दंड था)। अब चुपचाप कोने में जाकर खड़े हो जाओ !'

व्यवहार के ऐसे निरंकुश ढंग के प्रति आम तौर पर छात्रों का जो प्रत्युत्तर नजर आता था, वह यह होता था कि वे इसे अध्यापक की भूमिका का एक खास तत्व मानकर स्वीकार कर लेते थे। इस समझ का एक सुंदर उदाहरण यह था कि जब किसी अध्यापन-कार्यकलाप के दौरान उनसे नेतृत्व संभालने को कहा जाता तो वे अपने अध्यापक की निरंकुश भूमिका की ही नकल करने लगते थे।

एमिलिया (अपने दल की संयोजिका की भूमिका करते हुए) : अब हम पाठ पढ़ेंगे।
(बच्चे खामोशी से पढ़ते हैं जबकि एमिलिया यही काम सस्वर करती है।)
एमिलिया : नहीं। हर कोई उद्देश्य और विधेय को ढूंढे।
(वह निरंकुश लहजे में एक वाक्य बोलती है और हरेक छात्र से यह बतलाने को कहती है कि उसमें उद्देश्य क्या है और विधेय क्या है)।

कोलंबिया के ये शिशु संयोजक दूसरे छात्रों की गलतियां दुरुस्त करने के लिए अध्यापक की क्षिद्रान्वेषी शैली का प्रयोग भी करते थे : 'फ्लोर, क्या खयाल है तुम्हारा, तुम विज्ञान पढ़ रही हो या भाषा ?' इस पर फ्लोर ने वैसा ही जवाब दिया जैसा वह अध्यापक को देती : 'मुझे अफसोस है।' छात्र कभी-कभी सूचनादाता की जो भूमिका निभाते थे, वह भी अध्यापक की गरिमा के प्रति छात्रों के समर्थन का एक और सूचक था।

छात्र : मैडम, अगापो अपनी किताब नहीं लाया।
अध्यापिका (अगापो से) : तुम किताब क्यों नहीं लाए ?
(अगापो खामोश रहता है।)
सूचना देनेवाला छात्र : वह सिर्फ संगीत की किताब लाया है।

ऐसा नहीं कि छात्र अपने अध्यापक की ऐसी भूमिका का विरोध नहीं करते थे। मगर यह विरोध परोक्ष रूप में तथा ज्यादातर उनके अकेले होने पर अनुशासन-भंग के रूप में होता था। शायद वे इसे कक्षा में अध्यापक की निरंतर उपस्थिति से उत्पन्न तनाव का जवाबी संतुलन समझते थे।

बच्चों का कुल मिलाकर यह विश्वास था कि अध्यापन बहुत अहम कार्य है और अध्यापक चाहे जो करे, उन्हें उसी से शिक्षा मिलती है। 'मेरा खयाल है कि मेरी अध्यापिका मेरी शिक्षा के लिए अधिक महत्वपूर्ण है;' 'मेरा खयाल है कि अध्यापक ही हमें पढ़ाते और हमारी शिक्षा का ध्यान रखते हैं, वे हमारी शिक्षा में मार्गदर्शक होते हैं।'

लेकिन बच्चे कुछ सीखने की असफलता को अध्यापक की जिम्मेदारी कम समझते थे (अध्याय 7 देखें)। मगर यह समझ इस बात की भी सूचक थी कि वे शिक्षा में अध्यापक की सकारात्मक भूमिका को कितना अधिक महत्व देते थे। अभिभावक कुछ संदर्भों में अध्यापक की मसीहावाली भूमिका का अनुमोदन करने के कम ही इच्छुक होते थे। फिर भी उनकी आलोचना का केंद्र अध्यापन की निरंकुश शैली न होकर अध्यापकों की कुछ व्यवहार संबंधी गलतियां होती थीं : देर से आती हैं, मेरे बच्चे को डांटती रहती हैं, पैसे की मांग करके माता-पिता पर बोझ डालती हैं, कई पाठ तो पढ़ाए ही नहीं (अध्यापक अनुपस्थित रहे), वगैरह। बोलीविया में साक्षात्कार देनेवाले अभिभावकों में सिर्फ एक ने अपने बच्चे की असफलता का दोषी अध्यापिका को बताया : 'यह अध्यापिका बहुत बुरी है, मेरे बच्चे को गधा कहती है।' इस प्रकार कुछ दृष्टांतों में शुभचिंतक निरंकुशता का संयोग अक्षमता से होने पर ही समझा जाता था कि अध्यापक शिक्षक की भूमिका नहीं निभा रहे हैं और बच्चों को कुछ सीखने के लिए प्रेरित नहीं कर रहे हैं।

जिन घटनाओं के बल पर हमने 'निरंकुश शुभचिंतकों' के रूप में अध्यापकों के व्यवहार की धारणा विकसित की, हमें ऐसा लगता था कि वे घटनाएं कुछ अन्य कारकों के साथ मिलकर अपनी उत्पादक कार्य की योग्यता के बारे में बच्चों की समझ को प्रभावित कर रही थीं। ये अध्यापन के प्रति उनके प्रत्युत्तर को भी प्रभावित करती थीं, उसे काफी हद तक स्वचालित और मनमाने प्रश्नों के सही उत्तरों के अनुमान पर केंद्रित बना देती थीं। मगर ये प्रभाव तब मंद पड़ जाते थे जब अध्यापकगण बच्चों के प्रति चिंता दिखाते तथा अपनी स्थिति मनवाने के लिए धमकियों से मुक्त भाषा का प्रयोग करते थे।

सीखना बनाम 'अच्छा' और 'साफ-सुथरा' होना

बच्चों का अपने काम में अनुशासित, व्यवस्थित और स्वच्छ बनना सिखाने की जरूरत तथा सीखने (अधिगम) को सुनिश्चित करने की जरूरत के बीच का अंतर बहुत ही बारीक है। पहली कुछ प्राथमिक कक्षाओं में पलड़े को अंतर्वस्तु की बजाए रूप के पक्ष में झुकाना खासकर आसान है और यह बात अनेक कक्षाओं में देखी गई जिनकी जांच-पड़ताल की गई थी। साफ लिखना पहली कक्षा का एक महत्वपूर्ण शैक्षिक उद्देश्य है। फिर भी जब गुणवत्ता को बराबर इसी आधार पर परखा जाए कि कोई चीज कितनी साफ दिखती है तो अधिगम का यथार्थ उद्देश्य मारा जा सकता है।

(कोलंबिया में पहली कक्षा के एक वर्ग में अध्यापिका सुलेख की तत्परता से जांच कर रही है। वह बच्चों से कहती है कि कापी के वर्गाकार खाने में कुछ क्रास बनाएं। एक छात्र अध्यापिका के पास आकर उसे अपनी कापी दिखाता है।)
अध्यापिक : हां, सुंदर है। अब अपनी जगह पर जाओ !
अध्यापिका (एक और छात्र से) : गुस्तावो, हे भगवान ! देखो तो सही, एक खाने में क्रास बनाया है, दूसरे में नहीं। देखूं !
अध्यापिका (बाकी छात्रों से) : सीधे बैठो ! अपनी कापियां सही स्थिति में रखो ताकि अपना काम ठीक-ठीक कर सको।
(वह गुस्तावो को क्रास बनाना सिखाती रहती है।)
अध्यापिका : देखा गुस्तावो ? तुम भी इसे अच्छी तरह कर सकते हो।
(एक और छात्र अध्यापिका के पास कापी लाता है।)
अध्यापिका : सुंदर !

'ला कापियां'। अभ्यास पुस्तिका में कुछ उतारना चिली के विद्यालयों में कक्षा-कार्य का एक अहम हिस्सा था। सुव्यवस्था और सफाई की आदतें डालने को साफ तौर पर इसका एक मकसद बतलाया गया था। अध्यापक जब दूसरे कामों में लगा होता तो बच्चों से कहा जाता कि 'लीता तोमा ते' (लीता चाय पीती है) जैसे वाक्यों के सुलेख लिखें जबकि शब्दांशों के उच्चारण पर जोर देने के कारण इसे आसानी से गलत, 'लीता तोमाते' के रूप में पढ़ा जा सकता है। लेकिन छात्र 'तोमा ला मानो' (हाथ पियो) जैसे साफ तौर पर गलत वाक्य भी उतारते पाए गए। इन बच्चों से ज्यादातर वक्त अपने लिखे को पढ़ने के लिए नहीं कहा जाता था और अध्यापक कभी-कभार ही उनका काम देखता था। मसलन एक बच्चे को 'ला लेशे एस रिसा' (दूध अच्छा है) की जगह 'ला ले एस रिसा' उतारते हुए पाया गया। जब भी किया हुआ काम सुधारा जाता, जोर हमेशा सुव्यवस्था और स्वच्छता पर होता।

अध्यापिका (एक छात्र से) : वो लाल लाइन क्यों ? अक्षरों को पास-पास रखो ताकि अभ्यास पुस्तिका में सभी आ जाए।

अध्यापिका (एक और छात्र से) : उतारते हुए नीचे की तरफ बढ़ो। मैं कापी में ये छोटे-छोटे उभार नहीं देखना चाहती हूं (उसका इशारा उपयोग के कारण कापी के किनारों के मुड़ने की ओर है)। ये छोटे-छोटे उभार तो तुम्हारी लापरवाही के कारण हैं; मैं हमेशा उनमें क्लिप लगा देती हूं। अपनी मां से कहो कि कागज की जिल्द के ऊपर चढ़ाने के लिए प्लास्टिक की पन्नी खरीदे। इससे कापी सुंदर दिखती है।
छात्र (समवेत दोहराते हैं) : सुंदर।

अच्छे छात्र की धारणा में नियमों का पालन भी शामिल था। अध्यापक ये नियम सिखाने तथा उनका पालन सुनिश्चित करने में काफी समय लगाते थे। लेकिन ऐसे नियमों की और खासकर विद्यालय के नियम-कायदों की व्याख्या हमेशा नहीं की जाती थी। इस कारण ये मनमाने लगते ही नहीं थे बल्कि मनमाने ढंग से लागू भी किए जाते थे। कक्षा में जाने से पहले कतार बनाना, वस्त्र पहनना, कक्षा में आनेवाले का अभिवादन करना आदि के नियम या यह मांग कि बच्चे केवल अवकाशकाल में टायलेट जाएं, ऐसे नियमों के उदाहरण थे। लेकिन अध्यापकों के कुछ अपने भी नियम थे जिनको वे कुछ ज्यादा ही स्पष्ट करते रहते थे। पहली कक्षा में नियमों की शिक्षा बाकी समस्त शिक्षा पर समय और ध्यान, दोनों की दृष्टि से भारी पड़ती थी। छात्रों को सुस्थापित नियमों के पालन की बात याद दिलाने के लिए बार-बार अध्यापन में व्यवधान डालना, इसी बात को स्पष्ट करता है।

अध्यापिका : मूक पठन के नियम क्या हैं ?
छात्रगण : बातें न करना।
अध्यापिका : मोंतोया, हमेशा तुम अपनी सीट से दूर ही क्यों रहते हो ? तुम्हारे पास कुछ काम करने को है और तुम्हें इसे दस बजकर दस मिनट तक पूरा करना है।
अध्यापिका (दीवार से पीठ टिकाए बैठे एक छात्र से) : हे, इस तरह लुढ़को मत, सीधे बैठो !
अध्यापिका (एक और छात्र से) : चार्ली, यह पढ़ाई का वक्त है। यह बात साफ हो जानी चाहिए।
अध्यापिका : अब हर बच्चा ध्यान दे !
अध्यापिका (एक छात्र से) : एरिक कोरिया, श्यामपट की ओर देखना है हमें ! मैंने तुम्हें किताबें निकालने के लिए नहीं कहा था !
अध्यापिका : इस समय एक पाठ पढ़ रहे हैं हम। हमें अपना मुंह बंद रखना चाहिए।

गृहकार्य देना और उसे सुधारना रोजमर्रा का ऐसा काम था जो अंशतः अधिगम और अंशतः आत्मानुशासन से जुड़ा हुआ था। लगभग सभी अवलोकित कक्षाओं में यह रोजमर्रा के कार्यकलाप का एक प्रमुख भाग था और दिन का काफी शुरुआती वक्त खा जाता था। लेकिन गलती के सुधार में हमेशा वह सब नहीं होता था, इस शब्द से जिसका संकेत मिलता है। बाकी कक्षा पर निगाह रखते हुए भी अध्यापकों का ध्यान ज्यादातर यह देखने पर लगा रहता

था कि क्या गृहकार्य किया गया है और अगर किया गया है तो कितने सुंदर ढंग से किया गया है।

अध्यापिका (छात्रों से) : अपनी-अपनी कापियां निकालो ! मैं तुम्हारा सुलेख देखना चाहती हूं।
(बच्चे आज्ञा मानते हैं। अध्यापिका डेस्कों के बीच में घूम-घूम कर बच्चों के काम देखती और उस पर टिप्पणी करती है।)
अध्यापिका : गृहकार्य घर पर करने के लिए होता है। काहिल बच्चे अपनी-अपनी मां को बुलाकर लाएं... तुम्हारी मां शिकायतें खूब करती हैं। बस थोड़ा सा समय लगता है इसमें।... जो बच्चे गृहकार्य करके नहीं लाए उन्हें कल अवकाश नहीं मिलेगा... अर्नेस्तो, तुम्हारा काम किसने किया ? तुमने ये बड़ी संख्याएं तो नहीं लिखीं।
लड़का (जो अर्नेस्तो की बगल में बैठा है) : ये तो उसके भाई ने किया है।
अध्यापिक : तो तुम गायब रहे और गृहकार्य नहीं किया ! इसे कल फिर करके दिखाओ!

नियम-कायदों और अनुशासन से संबंधित कार्यों में जो समय लगता है (पाठ के शुरू होने से पहले 30 से 40 मिनट तक) उससे संकेत मिलता है कि छात्रों को पूरी तरह नियंत्रण में रखने के लिए अध्यापक जरूरी हो तो शिक्षण काल कम करने को भी तैयार रहते थे। इन अध्यापकों की राय में 'अच्छा' छात्र वह है जो सुसंस्कृत हो, उनकी सत्ता का ध्यान रखे और उसे स्वीकार करे, तथा दूसरे बच्चों के आगे उसकी हिमायत करे (मैडम को परेशान मत करो)।

उठने-बैठने के तरीकों और, खामोशी वगैरह पर ध्यान केंद्रित करने के इन सभी दृष्टांतों के कारणों की छानबीन में एक संभावित व्याख्या यह होती है कि अधिकांश बच्चे जिन घरों से आते हैं उन्हें अध्यापकगण 'असंतोषजनक' समझते हैं। दूसरे शब्दों में, यथार्थ में अध्यापकों का विश्वास यह था कि गरीब बच्चे स्वभाव से ही गंदे और अनुशासनहीन होते हैं। इसीलिए अध्यापकों की सोच यह लगती थी कि किसी भी शिक्षण से पहले इन दोषों का निराकरण आवश्यक है। लगता था ऐसे सुधार के लिए उपयुक्त अवसर बनाने में ही अध्यापक अपनी ज्यादातर ऊर्जा लगा रहे थे और इस तरह जो उनका प्रमुख सरोकार होना चाहिए था उसकी, यानी अधिगम संबंधी कठिनाइयों में छात्रों की सहायता करने की, उपेक्षा करते थे।

ठप्पा लगाना, अवमानना करना

कभी-कभी अध्यापकों की भूमिका पर जो प्रोमीथियस छाप गोपनीयता लादी जाती है, वह अपने घोर नकारात्मक रूप में तब व्यक्त होती है जब इसमें छात्रों में से 'विशिष्ट' या 'पसंदीदा' छात्रों के चयन का अधिकार शामिल हो जाता है। चिली की कक्षाओं के अवलोकन (अध्याय

7) से यह बात साफ हो गई कि सत्र के अंत तक अध्यापक कितने तरह से ऐसा चयनकार्य करने लगते हैं। कुछेक बच्चे अध्यापकों के इस तरह के व्यवहार के निशाने बनते हैं जिसमें अपमानजनक उपमाएं देने से लेकर सीधे-सीधे काहिली, बेईमानी और गैर-जिम्मेदारी के दोष लगाने जैसे कार्य शामिल हैं। चिली के नृजातीय अध्ययन में वर्णित दृष्टांतों से जैसा कि स्पष्ट है, अध्यापकों के ऐसे रवैए से प्रभावित अधिकांश बच्चों का आत्मविश्वास खत्म हो जाता है और काम में सफलता पाने की उनकी क्षमता नष्ट होती है। प्रेक्षण-वर्ष में ऐसे अधिकांश छात्र असफल रहे।

एक बच्चे में क्या-क्या कर सकने की योग्यता है, इसकी गलत या भ्रामक समझ पर आधारित छप्पाबाजी (लेबल चिपकाना) के परिणाम दूसरे देशों के नृजातीय अध्यायों में इतने स्पष्ट नहीं हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि दूसरा कोई भी देश सत्र के दौरान चिली जितने विकास कार्य नहीं चला रहा था। लेकिन विद्यालयों और कक्षाओं के जीवन का अवलोकन करने के बाद सभी अध्ययन दलों ने ऐसी रिपोर्टें जरूर दीं कि 'अपमानजनक' रवैए वहां भी जारी हैं। सबसे अधिक प्रचलित रवैयों में एक का वर्णन कोलंबिया वाले अध्ययन में किया गया है जिसे अध्यापकों की 'व्यंग्योक्ति' या 'बीच-बीच में बहरापन' कहा गया है। इसमें अध्यापक या तो छात्रों के हस्तक्षेप पर तीखी टिप्पणियां करते हैं या उनकी प्रतिक्रियाएं उलटी होती हैं। या कुछ अध्यापक पाठ के दौरान किसी छात्र के योगदान को अनसुना करने का रवैया अपनाते हैं।

कोलंबिया

अध्यापिका (आवाज में व्यंग्य है) : खूब ! गृहकार्य न करके लाने पर बधाई हो !

वेनेजुएला

अध्यापिका : लुई को बंदर बनना अच्छा लगता है। सो मैं उसे एक मुखौटा लाए देती हूं कि वह हरेक को बंदरघुड़की दे सके। किसी रोज मैं एक कठपुतली लाऊंगी और उसे नाचने को कहूंगी और चूंकि तुम लोग हर बात की नकल करना पसंद करते हो, तो तुम्हें वह सब करना होगा जो वह करेगी।

बोलीविया

अध्यापिका : खामोश ! एदविन, खामोश ! अब हम संख्या चार लिखते हैं... किसी छात्र के आत्मसम्मान को सीधे-सीधे चोट पहुंचाना भी ऐसे ही अपमानजनक रवैयों में आता था।

चिली

अध्यापिका (कक्षा में घूमती है तथा बच्चों को खिलौना-अक्षरों से शब्द बनाने के प्रयास करते देखती है। फिर वह अलबर्तो के पास से गुजरती है) : 'अलबर्तो परेरा कभी कुछ नहीं करता। बस अपनी कापियां, पेंसिलें, अपने रबड़ खोता रहता है...।'

कुछ कक्षाओं में, मसलन बोलीविया में कक्षा 2 में वातावरण लगातार छिद्रान्वेषण का बना रहता था। वैसे तो पहली कक्षा के बच्चों को आम तौर पर दयालु अध्यापिकाएं मिलती थीं जो उनकी कठिनाइयों और दुर्व्यवहार को झेलती थीं, मगर जब वे बच्चे दूसरी कक्षा में जाते तो स्थिति काफी-कुछ बदल जाती थी। तब उन्हें चीख-पुकार, धमकियों और दंड का माहौल मिलता था जिसके कारण बच्चे अधिकाधिक निष्क्रिय और चुप्पे बनते जाते थे।

छात्र : मैडम, मैं ?
अध्यापिका : चुप रहो... खामोश ! मैं बोलूंगी। एलियोदोरो, तुमने अपने कान नहीं धोए ?
अध्यापिका (एक समतल का बार-बार अर्थ बतलाकर) : समतल क्या होता है ?
(छात्र खामोश रहते हैं।)
अध्यापिका : तुम बताओ रीना, समतल क्या होता है ?
(रीना जवाब नहीं देती।)
अध्यापिका : तुम बताओ हंबर्तो, तुम तो हमेशा बोलने को बेचैन रहते हो ?
(हंबर्तो खामोश रहता है।)
अध्यापिका : पढ़ाई को छोड़ हर बात के लिए वक्त है तुम्हारे पास। यहां तो लगता है जैसे मैं दीवारों से, श्यामपट से बातें कर रही हूं।
(कक्षा खामोश रहती है तो अध्यापिका इस धारणा को फिर दोहराती है। फिर उसने जो कुछ अभी-अभी कहा है उसे बच्चे समवेत दोहराते हैं।)

इनमें से अनेक कक्षाओं में बच्चों को या तो 'निकम्मे' या 'प्रिय' करार दे दिया जाता था। वेनेजुएला में ऐसी ही प्रिय छात्रा पैत्रीशिया थी जिससे हमेशा अध्यापिका को कोई विशेष सेवा प्रदान करने के लिए कहा जाता था, जैसे उसे किताब देना या श्यामपट साफ करना। जब कभी मौका मिलता, पैत्रीशिया अध्यापिका को मक्खन लगाकर इस कृपा का उत्तर देती और इस तरह अपनी 'प्रिय' वाली स्थिति को और मजबूत बनाती।

(अध्यापिका श्यामपट पर तितली बनाती है। दो छात्र इसे भद्दी बतलाते हैं।)
कैमिलो : तितली, हुंह !
एनरिक : मैडम, आपकी बजाए मैं बना दूं ?
कैमिलो : मैं समझता था कि तितली सुग्गा होती है।
पैत्रीशिया : बहुत सुंदर बनी है मैडम !

अध्यापिका : धन्यवाद पैत्रीशिया !

कक्षा में विक्तोरिया से बहुत अलग किस्म का सुलूक पैत्रीशिया के साथ किया जाता था। वह खामोश लड़की थी जो शायद ही किसी से कुछ बोलती थी। जब कभी कक्षा में शोर मचता, हमेशा उसे जिम्मेदार ठहराया जाता और अगर संयोग से वह अध्यापिका की सही या गलत आशाओं पर खरी नहीं उतरती तो उसके दोष निकाले जाते थे।

अध्यापिका : किस की किताब है यह ? इसलिए पूछती हूं कि इस पर किसी का नाम नहीं है।
विक्तोरिया : मेरी है, मेरी।
अध्यापिका (व्यंग्य के लहजे में) : तो तुमने इस पर अपना नाम नहीं लिखा ! चाहती हो कि इसका अंदाजा हम लगाएं...।
अध्यापिका : और ये, यह किसकी है ?
एक और छात्र : मेरी है, मेरी।
(अध्यापिका कुछ कहे बिना किताब उसे दे देती है।)

मनमाना व्यवहार, छिद्रान्वेषण, अध्यापन-अधिगम संदर्भ में कुछ बच्चों के योगदान की निरंतर उपेक्षा जबकि दूसरों के योगदान को स्वीकारना; लगता है ये सभी असफलता की जमीन तैयार करते हैं। जाहिर है कि इससे इसकी पूरी प्रक्रिया की व्याख्या नहीं होती। लेकिन घर का वातावरण कितना सहायक या विद्यालय का वातावरण कितना उपेक्षापूर्ण है, इसके आधार पर जीवन के आरंभ में ही बच्चे में समस्या-निवारण संबंधी असमर्थता का विकास, असफल होने के लिए उस बच्चे को अभिशप्त बना देता है। बोलीविया के एक बच्चे बोरिस की मां ने कहा, 'मेरा खयाल है मेरा बच्चा विद्यालय में तकलीफें झेलता है।' इस बच्चे को यही महसूस होता था कि वह किसी काम का नहीं है। कारण यह था कि यह बात उससे उसकी अध्यापिका ने कही थी, यही बात दूसरे बच्चे कहते थे, और फिर वह भी सचमुच खुद को मूर्ख ('साय उन बरो') समझता था।

अध्यापन : 'अनुमानों की एक कला' के रूप में

अध्यापन निश्चित ही विद्यालय का प्रमुख सरोकार और हर कक्षा का केंद्रीय कार्यकलाप होता है। यह माना जाता है कि अध्यापन किसी अंतर्वस्तु (कानटेंट) का संप्रेषण करता है और बच्चे उसे सीख लेते हैं। कुछ ही अध्यापक हैं जो खुद को बच्चों के महज रखवाले मानते हैं, इसके विपरीत वे बच्चों को कुछ सीखने की प्रेरणा देने की जिम्मेदारी के प्रति सचेत होते हैं। लेकिन इस प्रारंभिक दायित्व को स्वीकार करने के बाद इस बारे में व्यापक मतभेद है कि यह दायित्व और आगे कहां तक होता है। तात्पर्य यह है कि अध्यापक अपने छात्रों के अधिगम के परिणाम के बारे में कितनी जिम्मेदारी महसूस करते हैं (अध्याय 7 देखें) ?

इस अर्थ में अगर अध्यापक की भूमिका की छानबीन करनी हो तो अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया का वास्तविक निष्पादन महत्वपूर्ण होता है।

संबद्ध देशों के नृजातीय अध्ययनों पर विचार करते हुए हमने अध्यापन को ऐसे रूपों में भी ढांचाबद्ध होते देखा है जो पाठ्यचर्या-सुधारों के नियमों से कमोबेश मेल खाते थे। कुछ अध्यापक अपने शिक्षा मंत्रालयों के पाठ्यविवरणों में दिए गए प्रारूपों का पालन सावधानी से करते थे। यहां तात्पर्य व्यवहारगत उद्देश्य, प्रेरणा, विकास और समापन जैसे अध्यापन के चरणों तथा प्रत्येक दृष्टांत में गृहकार्य देने और सुधारने से है।

इस ढांचे का उपयोग वेनेजुएला के अध्यापक करते थे और इसका पालन कोलंबिया के एक अध्यापक ने किया जो एस्क्यूला नोएवा प्रयोग में संलग्न था (अध्याय 3 देखें)। इस ढांचे का उपयोग चिली के अध्यापक भी करते थे, वैसे बोलीवियावाले कम करते थे। इस तरह अन्यत्र प्रचलित व्याख्यान और दोहराव को परंपरागत पद्धति के विपरीत जिसे हम अध्यापन के आयोजन का 'आधुनिक' रूप कह सकते हैं, वही यहां का प्रमुख ढांचा था। लेकिन अध्यापन के अवलोकित ढांचे का गोश्त-पोस्त सुसंगति के मामले में काफी-कुछ भिन्न था।

इस तरह अध्यापकों को सातत्य का अंग माना जा सकता था। इसमें एक तरफ तो वे थे जो विश्वास करते थे कि अध्यापक का जीवन बच्चे को जागरूक बनाने तथा उसकी स्वतंत्र और रचनात्मक सोच और कर्म की क्षमता को विकसित करने के लिए समर्पित होता है। दूसरे छोर पर वे अध्यापक थे जो तब संतोष का अनुभव करते थे जब पूरी कक्षा उन्हीं के मन की बात कहती थी, चाहे उसका अर्थ कितना ही गलत हो, और दुर्भाग्य से ऐसे अध्यापक बहुसंख्यक थे। अनेक कक्षाओं में अध्यापन का अवलोकन करके हमने उसकी एक सुप्रचलित शैली के दर्शन किए जिसे हम दोहराव (प्रश्नोत्तर क्रम) का यांत्रिक रूप कह सकते हैं। लगता था कि इसके साथ अधिगम की एक और गतिविधि जुड़ी हुई थी जिसे हमने 'अनुमान लगाना'[1] कहा है। अध्यापक और छात्र, दोनों ही अध्यापन को एकसमान ऐसा खेल समझते थे जिसमें 'अनुमान' को केंद्रीय महत्व प्राप्त था। दूसरे शब्दों में यह 'खोजी अधिगम' के सिद्धांतों के विकृत व्यवहार जैसा लगता था।

अध्यापिका : अपनी-अपनी किताबें अलग रखो ! ये बताओ, ध्वनि किसे कहते हैं ?
(अध्यापिका पहले जो इमला बोल रही थी उसकी बातें करने लगती है।)
अध्यापिका : खामोश ! ध्वनि किये कहते हैं ?
(छात्र खामोश रहते हैं।)
अध्यापिका : ध्वनि किसे कहते हैं ?
(छात्र आपस में बातें करते हैं, मगर उत्तर नहीं देते।)
अध्यापिका : शी ! मैं तुमसे पूछ रही हूं !
युआन : एक वस्तु से दूसरी वस्तु का कंपन।
अध्यापिका : देखते हैं ध्वनि क्या है, यह कौन बतलाएगा ?

(छात्र खामोश रहते हैं।)
अध्यापिका : देखना है, ध्वनि क्या है, यह कौन बतलाता है ?
पेद्रो : कंपन...
अध्यापिका (बात काट कर) : किसका ?
(पेद्रो उत्तर नहीं देता।)
राउल : दो वस्तुओं का कंपन।
(एक अन्य अवसर पर)
अध्यापिका : खैर, अब इस छोटे से चित्र को देखो।
लड़का : एक लड़की ?
अध्यापिका : तो यह तुम्हें क्या दिखाई देता है ?
छात्र (एक साथ) : एक लड़की।
अध्यापिका : एक लड़की, एक गुड़िया। और क्या ?
छात्र : एक तत्व !
अध्यापिका : इस लड़की का, इस गुडिया का गणित में क्या मतलब हुआ ?
छात्र (एक साथ) : एक तत्व।
अध्यापिका : क्या ?
छात्र (एक साथ) : एक तत्व।
अध्यापिका : एक तत्व ! एक क्या ?
छात्र (एक साथ) : एक इकाई।
(एक अन्य अवसर पर)
अध्यापिका : कल हमने किसी बहुत सुंदर चीज की बातें शुरू की थीं जिसे मैंने यहां खींचा था। (वह एक वृत्त बनाती है) इसे क्या कहते हैं ?
छात्र (एक साथ) : एक समुच्चय।
अध्यापिका (बिना सुधारे दोहराती है) : मैंने इसे क्या कहा था ?
कुछ छात्र : एक बंद वक्र आकृति।
(अध्यापिका चित्र पूरा कर चुकी है। अब उसमें वृत्त के अंदर चाय की प्यालियां दिखाई देती हैं।)
अध्यापिका : तो यह है क्या ?
एक छात्र : चाय की प्यालियां।
(अध्यापिका देखती है कि बच्चों ने इसे नहीं समझा है। वह कदम पीछे हटा लेती है।)
छात्र : चाय की प्यालियां।
अध्यापिका : जिन्हें मैंने घेरा है एक ?
छात्र : वक्र से।
अध्यापिका : किस तरह के वक्र से ?

छात्र : बंद।
अध्यापिका : यह किसका समुच्चय है ?
छात्र : चाय की प्यालियां का।

जैसा कि पहली प्राथमिक कक्षा में माना जाता है, अध्यापन का उद्देश्य यह है कि बच्चे पढ़ाई, लिखाई और गति का बुनियादी काम करना सीखें। अपने और अपनी कक्षा के बारे में बातें करते हुए इस अध्ययन के अध्यापकों ने वास्तव में अपनी प्रभाविता को इन्हीं शब्दों में मापा : 'मुझे आशा है कि साल के अंत तक मेरे बच्चे पढ़ना सीख लेंगे।' जो यह समझते थे कि उनके कुछ बच्चे असफल रहेंगे, उन्होंने यह संकेत दिया कि यह सब उनके प्रयासों के बावजूद और ऐसे कारणों से होगा जिनके लिए वे जिम्मेदार नहीं हैं।

दुनिया के बारे में तथा दूसरों के साथ अपने संबंधों के बारे में बच्चों की समझ का एक महत्वपूर्ण तत्व भाषा होती है। भाषा का विकास इन विद्यालयों में लगभग पूरी तरह एक यांत्रिक गतिविधि थी। पढ़ना शब्दांश पद्धति से सिखाया जाता था और पहली कक्षा के लगभग सभी वर्गों में इसका रूप एक जैसा था।

बोलीविया

अध्यापिका (श्यामपट पर लिखते हुए) : मा : मा-मे-मी-मो-मू, पा-पा : पा-पू, पी-पो-पे, दे-दो : दी-दो-दा-दू-दे।
अध्यापिका (शब्दों की ओर इशारा करके बच्चों से) : अब तुम सब दोहराओ !
(बच्चे सस्वर दोहराते हैं।)

वेनेजुएला

अध्यापिका : मा-मे-मी-मो।
योसेलो : मा-मे-मी-मो।
अध्यापिका : मा-मा।
योशेलो : मा-मा।
अध्यापिका : ए-मा।
योशेलो : एमा।
अध्यापिका : नहीं, वह 'अ' नहीं है जैसा कि यह है। (पुस्तक में एक अक्षर की ओर इशारा करती है।)
अध्यापिका : यह अक्षर कौन सा है ?
योशेलो : ओ।

अध्यापिका : मी मामा में एमा। (मेरी मां मुझसे प्रेम करती है।) इसे दोहराना है। जाकर सीट पर बैठो।

पढ़ने के दौरान रूप, विरामचिह्नों तथा ध्वनि-निर्वाह पर ज्यादा जोर देने के कारण बच्चों को पठन-बोध का लक्ष्य शायद ही प्राप्त होता हो। बच्चे तो अनुमान के द्वारा भी पढ़े हुए पाठों के बारे में जवाब नहीं दे पाते थे जिससे यह तो पता चले कि उन्होंने उनके अर्थ समझ लिए हैं।

कुछ बड़ी कक्षाओं में अध्यापन के उद्देश्य पहली कक्षा के उद्देश्य जितने सुस्पष्ट नहीं थे। इस अध्ययन के ज्यादातर अध्यापक अपने पाठ्य-विवरण को पूरा करना ही अपना लक्ष्य समझते थे; इससे मतलब नहीं होता था कि बच्चे कितनी बातें समझ या सीख रहे हैं। पाठ्य-विवरण सीधा-सीधा था : भाषा, विज्ञान, गणित, कुछ ऐतिहासिक तथ्य और साथ में हस्तकलाएं, शारीरिक व्यायाम और गीत-संगीत। 'ला कापिया' (सुलेख उतारना) और 'अल क्वेश्चनारियो' (प्रश्नक्रम) अध्यापक की प्रमुख व्यवहृत रणनीतियां थीं। इन अभ्यासों में किसी पुस्तक या श्यामपट से (अकसर अध्यापक-मार्गदर्शिका में या बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में मौजूद) कुछ सामग्री को उतारना पड़ता था। कभी-कभी ये सुलेख ऐसे प्रश्नों के रूप में होते थे जिनके जवाब बच्चे दें और फिर उन्हें घर पर याद करें। गणित के अध्यापन में व्याख्या और फिर वैयक्तिक और सामूहिक अभ्यास की सुप्रचलित तकनीक अपनाई जाती थी। इस तरह कुल मिलाकर अध्यापन की विधियां खासे रूढ़िवादी ढंग से उच्चारण की विधियों और रोजमर्रा के व्यावहारिक अभ्यासों का उपयोग करती थीं। बोलीवियाई दृष्टांत (अध्याय 6) तथा वेनेजुएला के रचनात्मक सामुदायिक विद्यालय (अध्याय 5) की तरह कभी-कभार कुछ अधिक सक्रिय और कल्पनाशील विधियों का व्यवहार भी देखा जा सकता था, जैसे सामूहिक परिचर्चा, नाटक-प्रस्तुति, कठपुतली संचालन आदि। लेकिन अधिकांश पाठ सामान्यतः कठोर वातावरण में पढ़ाए जाते थे और उपरोक्त उदाहरण महज अपवाद थे।

इन कक्षाओं में से अनेक में अध्यापन का जो घिसा-पिटा ढर्रा प्रचलित था उसी पर बातें करते रहने का कोई खास फायदा नहीं है; निर्धन देशों के निम्नवर्गीय सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में अध्यापन को इस नाम से पुकारना बहुत ही चलताऊ चीज है। लेकिन अध्यापन की इन तमाम शैलियों को 'अनुमान के खेल' की श्रेणी में रखकर हमने यह दिखाने का प्रयास किया है कि इस प्रकार का अध्यापन अर्थ संरचनाओं के विकास और बुद्धिमत्ता से भरपूर व्यावहारिक कार्यकलापों से किस हद तक दूर है। प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने तक इन बच्चों की शब्द-संपदा बहुत ही सीमित होती है, पढ़ने और लिखने की कुशलताएं न्यूनतम होती हैं और इसलिए वे शायद ही रचनात्मक लेखन में समर्थ हो पाते हैं। साथ ही वे अपने इर्द-गिर्द की दुनिया के रोजमर्रा के ज्ञान में विज्ञान की बुनियादी धारणाओं और तथ्यों का समावेश भी नहीं कर पाते हैं। सौभाग्यशाली बच्चों को घर पर मदद मिल जाती है और वे अपना सुधार कर सकते हैं जबकि आग्रही बच्चे अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अपने-आप कुछ सीख लेते हैं। (जैसाकि अध्याय 3 में बच्चों की शब्दकोश पलट कर अर्थ ढूंढने की

कोशिश में हम देखते हैं) लेकिन निरंकुश वातावरण में ऐसी अध्यापन-शैलियों और अपमानकारी रवैयों का सामना कर रहे अधिकांश बच्चों के मामले में अध्यापन के लाभ शायद ही कहीं नजर आएं।

लातीनी अमरीकी शिक्षा के मानवशास्त्रीय अध्ययन बहुत थोड़े हुए हैं।[2] लेकिन जिन थोड़े से अध्ययनों में कक्षा और विद्यालय के जीवन के प्रेक्षण शामिल रहे हैं, उनमें उल्लेखनीय ढंग से अध्यापन की वैसी ही विशेषताएं दिखाई देती हैं जैसी हमने अपने अध्ययन में देखी हैं। कोलंबिया के एरितामा समुदाय पर रीशेल-दोल्मातोफ और रीशेल-दोल्मातोफ (1973) ने अपना अध्ययन 25 साल पहले पेश किया था। उन्होंने पता लगाया था कि स्थानीय विद्यालयों की अध्यापन-शैली में शिक्षा की पुनरावृत्तिमूलक पद्धतियों (प्रश्नोत्तर क्रमों में व्यक्त ज्ञान) की भरमार थी; इनमें गलत विषयवस्तुओं की पुनरावृत्ति भी शामिल थी। इन लेखकों ने अध्यापकों में तरफदारी, पूर्वाग्रह, समुदाय के इंडियन लोगों की सामाजिक और सांस्कृतिक अवमानना तथा अच्छा पहनने और अच्छा व्यवहार करनेवाले बच्चों को सुस्पष्ट वरीयता देने जैसी प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत किया था :

> विद्यालय जानेवाले बच्चों पर उन अध्यापन-विधियों का दूरगामी प्रभाव होता है जिनसे उनका सामना होता है। पहली बात यह कि बच्चों को व्यवस्थित ढंग से अच्छा पहनने और अच्छा व्यवहार करने का प्रतिष्ठादायी महत्व समझाया जाता है तथा उन्हें किसी भी प्रकार के शारीरिक श्रम या सहयोग-वृत्ति से घृणा करना, उसका उपहास करना सिखाया जाता है। दूसरी बात, ज्ञान को कुछेक प्रश्नों और उत्तरों तक सीमित कर दिया जाता है जो पूर्वनिर्धारित होते हैं और जिनसे आगे और कुछ जोड़ने या सीखने को शायद ही कुछ होता है। व्यवहार का यही प्रतिमान, वयस्कावस्था में बना रहता है तथा व्यक्ति रोजमर्रा के और बंधे-बंधाए ढंग से अनेक बार दोहराए जा चुके प्रश्नों का उत्तर देता है, मगर असामान्य प्रश्नों के उत्तर देने से इनकार कर देता है क्योंकि इससे उसकी प्रतिष्ठा में कमी आ सकती है।
>
> (रीशेल-दोल्मातोफ और रीशेल-दोल्मातोफ, 1973)

अध्यापक और उनकी व्यावहारिक विचारधाराएं

जब हमने विभिन्न देशों के संदर्भों में अपने काम के अनुभवों पर मनन किया, कक्षाओं और विद्यालयों की घटनाओं के ब्योरों को पढ़ा तथा उनके अर्थ समझने का प्रयास किया तो हमें खासी हैरानी की बात का पता चला कि अध्यापक की व्याख्याएं बेहद महत्व की वस्तु हैं। प्रस्तुत अध्ययन तो इन व्याख्याओं पर केंद्रित नहीं था और न ही उनकी गहरी छानबीन का कोई इरादा था। फिर भी उनकी उपस्थिति और स्कूली बच्चों के सफलता-असफलता संबंधी अनुभवों में उनके संभावित योगदान की उपेक्षा करना हमारे लिए लगभग

असंभव हो गया था।

इसे आप अध्यापकों की सोच, व्याख्यात्मक ढांचा या विचारधाराएं, कुछ भी कहिए, अध्यापन संबंधी समसामयिक साहित्य में इनका व्यापक अध्ययन किया गया है। इन अध्ययनों में पड़ताल की गई है तो उन कार्यकारी परिभाषाओं की जिनकी रचना अध्यापक अपने सामने मौजूद स्थितियों के लिए करते हैं। हमारा तात्पर्य जारी परिघटनाओं (फेनोमेना) की व्याख्या करने तथा शिक्षकों के रूप में उनके लिए आवश्यक दूरगामी और तात्कालिक निर्णय लेने के लिए प्रयुक्त उन ढांचों से है जिनकी छानबीन अकसर नहीं की जाती।[3] सैद्धांतिक दृष्टिकोण से ऐसे कुछ अध्ययनों का औचित्य परिघटना वैज्ञानिक (फेनामेनोलाजिकल) समाजशास्त्र पर अधारित है, खासकर बर्गर और लुकमान (1966), शुल्ज (1967), तथा शुल्ज और लुकमान (1974) की कृतियों पर। ये 'भोगी गई दुनिया' के उन अनुभवों के ढांचे पर जोर देती हैं जिन अनुभवों को आम तौर पर स्वतःसिद्ध मान लिया जाता है लेकिन जो वास्तव में निर्णयकार्य के लिए परिप्रेक्ष्यों का काम करते हैं।

इन व्याख्यात्मक ढांचों के बोध के लिए हमें लगता है कि शार्प (1983) ने अल्थ्यूसर (1977) की 'व्यावहारिक विचारधाराओं' की धारणा का जो उपयोग किया है वह खास तौर पर प्रासंगिक है। 'सैद्धांतिक विचारधाराओं के विपरीत अल्थ्यूसर ने 'व्यावहारिक विचारधाराओं' की परिभाषा एक तरफ प्रत्ययों-प्रतिनिधानों-बिंबों के मोंताजों (समुच्चयों) तथा दूसरी तरफ व्यवहार-आचरण-रुझानों और संकेतों के मोंताजों (समुच्चयों) की जटिल संरचना 'के रूप में की है। इन प्रत्ययों (नोशंस) और व्यवहारों की समग्रता ही यथार्थ वस्तुओं तथा यथार्थ-वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं के प्रति कुछ रवैयों को अपनाने के व्यावहारिक मानक होती है। शास्त्रीय मार्क्सवादी सिद्धांत में इन यथार्थ वस्तुओं और स्थितियों से तात्पर्य एक उत्पादनपद्धति (जैसे पूंजीवाद) के संगत सामाजिक संबंधों और उत्पादक शक्तियों का वह ढांचा है जिसमें विचारधारा[4] मात्र वह रूप है जो अवधारणाओं, विचारों, मूल्यों और मानदंडों के स्तर पर यथार्थ स्थिति के अंतर्विरोधों पर पर्दे डालता है।

यहां 'व्यावहारिक विचारधारा' की धारणा का हमारा उपयोग अपने मूल मार्क्सवादी अर्थ से अधिक फलमूलक है। फिर भी यथार्थ के इस प्रतिनिधान (रिप्रेजेंटेशन) के प्रत्यय का वर्णन करने के लिए यह हमें उपयोगी प्रवर्ग लगती है जो उसकी समस्याओं की प्रकृति को धुंधला करता है। इसके उपयोग में हमारा सरोकार ज्यादातर इस बात से है कि किस विशिष्ट ढंग से कर्ता इस प्रतिनिधान का ग्रहण तथा इसका सर्जन दोनों करता है। फिर हमारा सरोकार इसके प्रायः कम चेतन चरित्र (हेबरमास 1971; लेकन 1970) से तथा इस तथ्य से भी है कि यह यथार्थ में समस्याओं को जारी रखनेवाली स्थितियों को सुदृढ़ बनाने में कर्ता (अर्थात अध्यापक) की जिम्मेदारी या भागीदारी पर पर्दा डालता है। दूसरे शब्दों में हमें लगता था कि निर्धनता की दशा छोटे बच्चों के सामने जो कठिनाइयां खड़ी करती है, उनका सामना होने पर अध्यापक, सायास या निरायास, थोड़े-बहुत अनालोचनात्मक ढंग से इन समस्याओं को समझने तथा अपने काम के तौर-तरीके तय करने के मकसद से समस्त

उपलब्ध व्याख्याओं को ही स्वीकार कर लेते हैं।

इन व्याख्याओं के उपयोग की और अधिक औचित्य शिक्षा की संबद्ध राजनीतिक-शैक्षिक प्रणालियों के संरचनागत दबाव प्रदान करते हैं (जैसे कम वेतनमान, काम की खराब दशाएं, खिझानेवाले कानून, काम को प्रभावित करनेवाले नियम-कायदे आदि। इनमें से कुछ का हवाला अध्ययन 1 में दिया गया है)। ये दबाव तरह-तरह से सार्वजनिक रूप से व्यक्त शैक्षिक उद्देश्यों और नीतियों के व्यवहार के बारे में अध्यापकों की कार्यक्षमता को कम करते हैं। प्रशिक्षण या अपने अधिक अनुभवी सहकर्मियों से प्राप्त सीमित शिक्षाशास्त्रीय क्षमताओं के बारे में अध्यापकों की चेतना भी ऐसा ही प्रभाव डालती है। इस तरह हमें ऐसा लगता है कि छात्रों की असफलता की उपलब्ध व्याख्याओं को स्वीकार कर लेना तथा इसके बारे में अपनी जिम्मेदारी को बाहरी कारणों (स्थितियों और लोगों) के सर मंढ़ने को उचित समझना अध्यापकों के लिए आसान बन जाता है।

देशवार अध्ययनों के विश्लेषण से लगभग सभी दृष्टांतों में हमने यह बात उभरते देखी कि अपने अध्यापन के बारे में रोजमर्रा के तकाजों और समस्याओं का सामना करने के लिए लोग घटनाओं पर जीवंत अनुभव का नाम चिपका देते हैं। ये व्याख्याएं ऐसी हैं जिन्हें अगर अलग-अलग देखें तो विश्वसनीय तथा निश्चित ही यथार्थ से जुड़ी हुई लगती हैं। लेकिन अध्यापकगण जिस शैक्षिक प्रक्रिया में संलग्न होते हैं, उसके संदर्भ में ये अधूरी और प्रायः विकृत होती हैं। इस प्रकार इन व्याख्याओं का प्रभाव यह होता है कि सामने आनेवाली कठिनाइयों की अधिक सटीक व्याख्याओं की तलाश बंद हो गई है।

संयुक्त राज्य अमरीका के तीन अलग-अलग प्रकार के विद्यालयों में शैक्षिक सुधारों का अध्ययन करते हुए पोप्केविट्ज आदि (1982) ने एक ऐसे भेद का उपयोग किया है जो किसी कार्यक्रम की सफलता या असफलता का महत्व समझने में सहायक है। वे अर्थ के एक 'ऊपरी' सतह की बातें करते हैं जो लोगों को किसी कार्यक्रम के परिणाम जांचने के सिलसिले में कुछ मानदंड प्रदान करती है, जैसे कोई परीक्षा उर्तीर्ण करना या विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करना। लेकिन अर्थ की 'निहित' सतह में वे मान्यताएं और कर्म के मार्गदर्शक सिद्धांत शामिल हैं जो किसी संस्था के सदस्यों को सुरक्षा की भावना प्रदान करते हैं। हमने जिन्हें 'व्यावहारिक विचारधारा' का नाम दिया है उनको हम ऐसे विश्वासों का संकलन समझते हैं जो सफलता या असफलता के कारणों के बारे में हैं। इनकी जड़ें अंशतः सामाजिक या अन्य शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों के बारे में अध्यापकों की व्याख्या में हैं तथा अंशतः ऐसे संदर्भ में अपनी निजी और पेशागत स्थिति जतलाने के बारे में अध्यापकों की आवश्यकता में हैं जो इस स्थिति को कुछ खास पुष्ट नहीं करता। जैसा कि पोप्केविट्ज आदि (1982) का सुझाव है, इन 'व्यावहारिक विचारधाराओं' का काम 'गतिविधियों, अंतःक्रियाओं को' तथा वे जिन 'अध्यापन-अधिगम अनुभवों' में निहित हैं उनको 'विश्वसनीय और वैध' दिखलाना है। हालांकि ऐसी व्यावहारिक विचारधाराओं को सहारा देनेवाले सिद्धांतों के निहितार्थ अध्यापकों के दिमाग में हमेशा स्पष्ट नहीं होते, फिर भी उनकी शब्दावली कमोवेश परिष्कृत ढंग से

सामाजिक मूल के सिद्धांतों में निहित अवधारणाओं के अनुरूप होती है : अपने अध्ययन में शामिल चारों देशों के अध्यापकों द्वारा इससे मिलती-जुलती अभिव्यक्तियों के प्रयोग का कारण यही है। ग्राम्शी के अर्थ में 'वर्चस्व' की धारणा (ग्राम्शी 1971; देखें बोग्स 1976) का प्रयोग करके हम यह कह सकते हैं कि असफलता के कारणों की ये अवधारणाएं उन प्रभुत्वशाली विचारधाराओं के अंग हैं जो प्रशिक्षण के समय, अध्यापक संघों के माध्यम से तथा बराबर के या बुजुर्ग सहकर्मियों से अध्यापकों को प्राप्त व्याख्यात्मक ढांचों के द्वारा भी अध्यापकों के मन में बिठाई जाती है।

इस अध्ययन में हमने अध्यापकों को जिन व्यावहारिक विचारधाराओं का प्रतिपादन करते हुए पाया है, उनके स्रोतों की प्रस्तुति के संदर्भ में, हमें लगता है कि हम इन्हें दो श्रेणियों में व्यवस्थित कर सकते हैं। एक तो वह श्रेणी है जिसमें किसी न किसी प्रकार का नियतिवाद (डिटर्मिनिज्म) पाया जाता है तथा दूसरी वह श्रेणी है जो शिक्षाशास्त्र के परंपरागत कहे जा सकनेवाले विचारों पर आधारित है।

नियतिवादी विचारधाराएं

सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के प्रभावों, सांस्कृतिक और भाषाई स्थितियों और व्यक्ति के रूप में बच्चों को प्रभावित करनेवाली विभिन्न प्रकार की व्याधि-संबंधी विचार असफलता की अनेक व्याख्याओं में निहित हैं।

इस अध्ययन में शामिल विद्यालयों में अपने नगरों या इलाकों के सबसे गरीब बच्चे ही जाते थे। अध्यापक हालांकि अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में अपने पढ़ाए हुए छात्रों से बहुत भिन्न नहीं थे, मगर वे खुद को अपनी शिक्षा और स्थिति के कारण उनसे श्रेष्ठ समझते थे। शायद इसी धारणा के चलते वे संरक्षकों जैसा व्यवहार करते थे या 'सामाजिक रूप से हीन' बच्चों के प्रति उदासीन रहते थे, बल्कि कुछ अध्यापक तो उनसे शत्रुता का व्यवहार भी करते थे। सरोकार की मात्रा अलग-अलग थी, मगर फिर भी अधिकांश अध्यापक खराब-अधिगम या बुरे व्यवहार को भाग्यवादी ढंग से पृष्ठभूमि की उपज बतलाते थे। पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनेक अर्थ लगाए जाते थे। इसका मतलब वह घोर निर्धनता भी हो सकती थी जिसमें अनेक परिवार जी रहे थे और जिससे, अध्यापकों के मूल्यांकन के अनुसार, सांस्कृतिक और भाषाई दोष भी जुड़े हुए थे। इससे पारिवारिक संबंध (जैसे पिता की अनुपस्थिति, शराबखोरी, दादा-दादी, नाना-नानी या संबंधियों द्वारा बच्चों का पालन-पोषण) का भी अर्थ लिया जा सकता था। कोई बच्चा कुछ सीखने में क्यों असफल रहा, इसकी लगभग हरेक व्याख्या में हमने निम्न प्रकार की अभिव्यक्तियां सुनीं :

बोलीविया

अध्यापिका : शैक्षिक असफलता से जो कुछ मैं समझती हूं उसमें मेरी राय में मुख्य, बच्चों का कुपोषण है। इसलिए कि जैसे ही हम कुछ लिखवाते हैं... कुछ तो फौरन समझ जाते हैं... वो जो अच्छा खाते-पीते हैं, मगर जो आधा पेट, कमजोर हैं, वे कुछ नहीं समझ पाते, चाहे हम दो, तीन या पांच बार समझा लें। कुछ बच्चे तो जब विद्यालय आते हैं तो... हम देखते हैं कि उनके पास एक पाई नहीं होती कि दोपहर में कुछ खरीद कर खा लें। हमें पता है कि ये कौन हैं...

चिली

अध्यापिका (एक पढ़ाई में कमजोर लड़की की ओर इशारा करके) : इसलिए कि घर पर कभी-कभी कपड़े धोने के लिए पाउडर भी नहीं होता... फिर भोजन की समस्याएं हैं जो बच्चों के सामने आएं तो असाध्य बन जाती हैं। यूं कि एक बार मैंने एक डाक्टर से बात की तो उसने कहा कि ये असाध्य हैं। उसने कहा : 'इस कच्ची उम्र में इस अर्थ में यह बहुत अहम है' उसने मुझसे बतलाया कि 'यह असाध्य है।' यूं कि उसने मुझसे कहा, 'किसी बच्चे के पास अगर यह चीज या वह चीज नहीं है तो नहीं है। जब वह बड़ा होता है तो हम उसके लिए कुछ भी करने की हालत में नहीं होते। मसलन अगर उसकी हड्डियों का ढांचा तैयार हो चुका है तो मैं उसकी हड्डियों के लिए कुछ नहीं दे सकती।' तो यह तो एक कमजोर बुनियाद पर मकान खड़ा करने जैसा हुआ।

कोई बच्चा क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता है, माता-पिता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को इसका भी निर्धारक समझा जाता है। मसलन बोलीवियाई अध्यापकों की राय में वह स्थिति ही सबसे महत्वपूर्ण थी जिसे वे 'द्विभाषिता' कहते थे। अगर मां-बाप स्पेनी नहीं बोल सकते तो बच्चा जो कुछ विद्यालय में सीखता है उसमें वे कुछ और मददगार नहीं हो सकते।

अध्यापिका : यह यकीनन एक बड़ी समस्या है क्योंकि हम चाहे जितना समझाएं, वे समझ नहीं पाते। क्यों ? इसलिए कि वे स्पेनी ठीक से नहीं जानते। विद्यालय में होते हैं तो जितना बोल सकते हैं, बोलते हैं, मगर जैसे ही घर पहुंचते हैं और माता-पिता को सिर्फ अयमारा बोलते सुनते हैं, सब कुछ खत्म।

माता-पिता अगर कम शिक्षित या अशिक्षित होते थे तो यह मान लिया जाता था कि सफलता पाने के बारे में उनके बच्चे लगभग पूरी तरह नाकाम रहेंगे। हमने एक अध्यापिका से पूछा कि उसके विचार में बच्चे विद्यालय में क्यों असफल हो रहे हैं :

> जब मैं अभिभावकों के शैक्षिक परिदृश्य को देखती हूं तो क्या देखती हूं कि जिन्हें अधिकतम (शिक्षा) प्राप्त है वे भी दूसरी या तीसरी प्राथमिक कक्षा से शायद ही आगे बढ़ सके हों; वे लगभग निरक्षर ही हैं। इसलिए कि एक समय उन्होंने कुछ पढ़ना सीखा, मगर जो कुछ सीखा, अभ्यास के अभाव में उसको लगभग भूल चुके हैं। एक मामले में तो मैंने देखा कि एकाध ऐसे भी हैं जो पंजीकरण पुस्तिका पर हस्ताक्षर भी नहीं कर पाते। लोग अपनी शिक्षा के बारे में झूठ बोलते हैं, जितनी शिक्षा उन्होंने पाई है, उससे ज्यादा बतलाते हैं। कुछ ही लोग हैं जो स्वीकार करते हैं कि 'हम तो यह है मादाम कि मैं कभी स्कूल नहीं गया।'

सिर्फ भाषाई पृष्ठभूमि नहीं बल्कि नस्ली मूल को भी असफलता का संभावित निर्धारक माना जाता था। मसलन इंडियन मूल से हर तरह की सामाजिक बुराइयां जोड़ी जाती थीं :

> पैत्रीशिया सांचेज का मामला... हे भगवान। वो लोग मापुशे (इंडियन) मूल के हैं। बच्चों के सामने पति अपनी पत्नी को पीटता है और सब एक ही बिस्तर में सोते हैं। क्या धर्मधक्का है। कैसे उनका काम चलता है, मुझे नहीं पता।

सामाजिक मूल, निर्धनता और अन्य सांस्कृतिक सीमाओं के अलावा, जिन बच्चों को बुद्धिहीन समझा जाता था, उनकी सफलता के अवसर और कम हो जाते थे। अनेक कक्षाओं में जैसे ही कोई बच्चा सीखने में थोड़ा सुस्ती दिखाता था, उसे विशेष ध्यान का पात्र और 'बाधाग्रस्त' मान लिया जाता था और इस तरह वह विद्यालय के वश से बाहर हो जाता था। कुछ अध्यापक इसे 'केंद्रीय दोष' समझते थे जैसाकि नीचे के दृष्टांत से स्पष्ट है :

> *अध्यापिका :* तो हमने बच्चों में जो खामियां देखी हैं, मसलन केंद्रीय दोष; वे इस व्यवस्था के लिए असाध्य हैं।
> *प्रश्नकर्ता :* केंद्रीय दोष होता क्या है ?
> *अध्यापिका :* दिमाग की, मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएं। हम सामान्य बच्चों के अध्यापक हैं और हमें विशेष शिक्षा के अध्यापकों वाला प्रशिक्षण नहीं मिला है। एक समस्या यह भी हो सकती है।

चिली में कायदा यह था कि अध्यापक समस्याग्रस्त बच्चों को इस आशा से निदान केंद्रों में भेज देते थे कि इन बच्चों को मानसिक रूप से कमजोर या पढ़ाई में अक्षमता जैसी गड़बड़ियों से ग्रस्त कहा जाएगा और इस प्रकार अध्यापक ऐसे मामलों से निपटने की जिम्मेदारी से बच जाएंगे।

शिक्षाशास्त्रीय परंपरावाद

बहुत से अध्यापक अपने छात्रों की अधिगम संबंधी कठिनाइयों को पारिवारिक पृष्ठभूमि के

सर या उन्हीं के शब्दों में 'मानसिक दोषों' के सर मढ़ते ही नहीं पाए गए बल्कि उनका यह भी विश्वास था कि इन कठिनइयों के बारे में वे कुछ भी नहीं कर सकते। जिसे हम शिक्षा का उपदेशमूलक दृष्टिकोण कह सकते हैं, उसमें अपनी आस्था के कारण वे अपने इस विश्वास को उचित भी समझते थे और यह दृष्टिकोण उनको अपने प्रशिक्षण विद्यालयों से परंपरा में या कभी-कभी शिक्षा के राजनीतिज्ञों की घोषणाओं से प्राप्त होता था। इस दृष्टिकोण में ऐसे वक्तव्य भी शामिल होते थे कि शिक्षा का उद्देश्य 'मानव व्यक्तित्व का अखंड विकास' है और इसकी जड़ें अनेक सामाजिक संस्थाओं में हैं जिनमें से विद्यालय केवल एक संस्था है। जिन शिक्षकों से हमारी मुलाकात हुई, उनमें से कुछ की व्यावहारिक व्याख्या में इन घोषणाओं का यह अर्थ लगाया जाता था कि अगर एक शैक्षिक निकाय असफल रहे तो दूसरे निकाय शायद ही कुछ खास काम कर सकें। कोलंबिया के एक पर्यवेक्षक ने तो अध्यापकों के एक दल से यह कहा कि 'शिक्षा तो एक तिपाई है; अगर एक पाया टूट जाए तो समझो पूरी तिपाई टूट गई।' इस तरह सभी अध्यापकों का पक्का विश्वास था कि शैक्षिक सफलता की किसी भी संभावना में परिवार का योगदान केंद्रीय महत्व रखता है और इसमें उसके सामाजिक-आर्थिक स्तर का विस्तार ही शामिल नहीं है बल्कि अध्यापकों और विद्यालय से सहयोग करने के प्रति अभिभावकों की तत्परता भी शामिल है। हमें यह भी लगता था कि व्यवहार में इस सहयोग के विचार की व्याख्या इस तरह की जाती थी कि जिसे पारिवारिक सहयोग का सही अर्थ समझा जा सकता है उससे अकसर उसका कुछ भी लेना-देना नहीं होता था। जैसाकि हमने अध्याय 7 में देखा, अच्छे अभिभावकों से अर्थ उन अभिभावकों से था जो विद्यालय आते हैं, अध्यापिका से बातें करते हैं और सबसे बड़ी बात यह कि विद्यालय को अनेक तरह से भौतिक योगदान देते हैं। किसी प्रश्न पर अध्यापिका जो कुछ कहे उसे बिना सोचे-समझे स्वीकार कर लेना भी अभिभावकों का योगदान समझा जाता था। जिसे सहयोग का अभाव समझा जाता था उसके खिलाफ लगातार हाय-तोबा मचती रहती थी और शिकायतें निम्न प्रकार से की जाती थीं : 'बच्चों को सिर्फ इसलिए विद्यालय भेजा जाता है कि घर पर माता-पिता को परेशान न करें;' 'माता-पिता आम तौर पर उदासीन रहते हैं;' वे सिर्फ अध्यापक को 'उसे ठीक करने का' हुक्म देते हैं; 'माता-पिता कभी बैठकों में आते भी नहीं;' 'अगर परिवार अस्तव्यस्त हो तो बच्चे भी वैसे ही होते जाते हैं।'

अपने छात्रों के खराब अधिगम या सीधे-सीधे उनकी असफलता का आकलन करते हुए अध्यापकों ने इस तरह के वक्तव्य दिए थे :

> मुझे लगता है कि अगर तामस को घर पर मदद मिलती तो वह परिपक्व होता और अगली कक्षा में पहुंच जाता। उसकी मां ने कभी उसकी मदद नहीं की।

> (जिमिना) उसकी मुसीबत उसका घर है। उसकी मां नर्स है और लड़कियों की देखभाल नहीं कर सकती है। लगता है कि उसे एक नीमपागल मददगार के हवाले छोड़ दिया गया है।

(मारियो) उसके माता-पिता अनपढ़ हैं। और उसकी मदद नहीं कर सकते; लेकिन मैंने सबसे बड़ी बहन से बात की है और उसकी मदद करने को कहा है... मां और बाप तो बहुत ही अक्खड़ हैं। उन्होंने उसे किंडर गार्टेन भी नहीं भेजा।

ऐसे ही उदाहरण वेनेजुएला के विद्यालयों में भी हमने देखे हालांकि यहां अध्यापकों के अपने दायित्व स्वीकारने के कारण ये कुछ कम चुभते थे :

मेरा विश्वास है कि शिक्षा का आरंभ घर पर होता है। अगर बच्चा पहले से विकसित कुछ आदतें लेकर आए तो विद्यालय में उसका तालमेल बेहतर बैठ सकता है। मैं अध्यापकों को ही नहीं, अभिभावकों को भी (दायित्व के) सोपान में रखना चाहूंगा। इसलिए कि बच्चा क्या प्राप्त करता है इसकी जिम्मेदारी उन्हीं पर होती है, इसलिए कि बच्चा उतनी ही सफलता पाएगा जितनी उसे अपने अध्यापकों और अभिभावकों से सहायता मिलेगी।

एक बैठक में एक कोलंबियाई अध्यापक को ऐसे लहजे में अभिभावकों को संबोधित करते हमने पाया जिसे आसानी से संरक्षक का लहजा कहा जा सकता है :

कुछ बच्चे तो रोजाना बुरा व्यवहार करते हैं और मैं अकेला हूं। तुम लोग मुझे तकलीफें देते हैं। कुछ तो बड़े ही बेवकूफ हैं। शिक्षा विद्यालय में नहीं दी जाती, घर से मिलती है। हम उन्हें मूर्ति जैसा नहीं देखना चाहते, उन्हें चाहिए कि बातें करें, भाग लें, संवाद करें... सभी बच्चे साफ-सुथरे भी नहीं आते हालांकि सभी गंदे भी नहीं जाते। आपको चाहिए कि देखें कि उनमें जुएं तो नहीं हैं। आपको, उनकी माताओं को चाहिए कि पहले दर्जेवालों को हफ्ते में कम से कम एक बार नहलाएं, कानों के पीछे तक मलें... अंडरवियर, मोजे धोएं... बदबू के मारे हम काम नहीं कर पाते।

बच्चों के अधिगम के बारे में अपनी सीमित शक्ति और जिम्मेदारियों के बारे में अध्यापकों की व्याख्याएं एक अन्य शिक्षाशास्त्रीय कारक से, यानी उनकी 'अभिप्रेरणा' की धारणा से प्रभावित लगती हैं। इसे अंशतः वे ऐसी चीज समझते थे जिसमें अधिगम (लर्निंग) को संभव बनाने की जादुई शक्ति है तथा अंशतः ऐसी वस्तु मानते थे जिसे बच्चे कमोवेश स्वैच्छिक ढंग से विकसित करते हैं, यानी तब जब उनकी अभावग्रस्त पृष्ठभूमि उनकी इस क्षमता को कुंठित न करे। आम तौर पर अध्यापक बच्चों की अभिप्रेरणा तथा वस्तुगत स्थितियों की व्यवस्था के संबंध को इसके लिए आवश्यक समझते थे ताकि जो कुछ उन्हें पढ़ाया जाता है उसे वे समझ सकें, लगता था कि अध्यापक अपने प्रयासों को तब तक सफल समझते थे जब तक छात्र कक्षा में पाठ पर ध्यान दे रहा हो, दोहराव वाले लंबे-लंबे सत्रों में भाग ले रहा हो तथा पूछे गए प्रश्नों के सटीक उत्तर दे रहा हो। अगर ऐसा नहीं होता तो विचलन की व्याख्या छात्र की बेध्यानी या सीखने के प्रति उसकी अनिच्छा के रूप में की जाती थी। फिर 'आंतरिक प्रेरणा' के इस अभाव को मंद बुद्धि या परिवार के असहयोग

की उपज कहा जाता था :

अध्यापिका (पेद्रो के बारे में) : मेरा खयाल है वह बिलकुल ठीक है। इसलिए कि जो बच्चे कुछ समझ नहीं पाते वे वही होते हैं जिनकी कुछ अन्य समस्याएं होती हैं।

छात्रों की असफलता की जो व्याख्याएं सामाजिक नियतिवाद के सिद्धांत या परंपरागत शिक्षाशास्त्रीय उपदेशों से उपजती हैं, उन्हें स्वीकार करके लगता था कि अध्यापक लोग व्यवस्थाजन्य बाधाओं से तथा अपनी पेशागत और काम की स्थितियों से उत्पन्न सच्ची बेचैनी को दूर करते थे। लगभग सारी अवलोकित स्थितियों में अध्यापकों ने इन बातों की शिकायत कीं (अध्याय 7 देखें)। मसलन स्थानीय अधिकारी या शिक्षा मंत्रालय अंतहीन कागजों को भरने का तकाजा करते थे जो अनेक अध्यापकों के क्रोध का कारण था :

लगता है हम पर लगातार निगरानी रखी जाती है; हम अपने छात्रों की अस्थि-संरचनाओं के बारे में कुछ जानकारी नहीं देते तो हमें फटकारा जाता है; हम तो इसके बारे में जानते भी नहीं। ज्यादा से ज्यादा हम यही कर सकते हैं कि बच्चे जिस आसन में बैठते हैं उसे ठीक करा दें... और हमारी शिकायत होती है कि अस्थि-संरचना के बारे में हमने जानकारी नहीं दी है : 'फलां-फलां ने यह नहीं भरा है...' या कोई अभिभावक यह नहीं बताता कि उसकी आमदनी कितनी है। मुझे इसकी भी एक शिकायत मिली थी।

भीड़ भरी कक्षाएं भी कुछ अध्यापकों की चिंता का कारण थीं जो इसे अध्यापन की कठिनाइयों के प्रमुख कारणों में एक कारण समझते थे। वे इस आधार पर नौकरशाही वाली व्यवस्था की आलोचना करते थे कि वे अधिगम की आदर्श दशाओं की सुस्थापित विश्वासों का हनन करते थे। मसलन यह कि किसी कक्षा में 15 की जगह 30 या 40 बच्चे हों, या यह कि लिंगीय वितरण में ऐसा असंतुलन हो ताकि जिस लिंग को पढ़ाना उनकी राय में अधिक कठिन होता है उसकी संख्या अधिक हो।

अध्यापिका : मेरी कक्षा में अनुशासन की समस्या भी है। इसलिए कि लड़के अधिक हैं : 27 लड़के हैं और 11 लड़कियां। इससे समस्या पैदा होती है। मुझे लड़के ज्यादा दिए गए। मैंने कहा कुछ तालमेल कर लीजिए, हर कक्षा में इनको बराबर-बराबर बांटा जा सकता है। इसलिए कि जब कक्षा में लड़के ज्यादा होते हैं तो वे तरह-तरह के खिलवाड़ करते हैं, ज्यादा अक्खड़ होते हैं, ज्यादा परेशान करते हैं, उनमें जिम्मेदारी और अनुशासन की भावना कम होती है। लड़कियां अधिक सुलझी हुई होती हैं। लड़के ज्यादा बचकाना होते हैं, वे ज्यादा खिलवाड़ करते हैं, परेशान करते हैं...

प्रश्नकर्ता : ऐसी हालत आई कैसे ? क्या ऐसा कोई रास्ता नहीं था कि आपकी कक्षा में इतने सारे लड़के न होते ?

अध्यापिका : नहीं, उन्हें पहले ही कक्षाओं में बांट दिया गया था। कोई संभावना नहीं

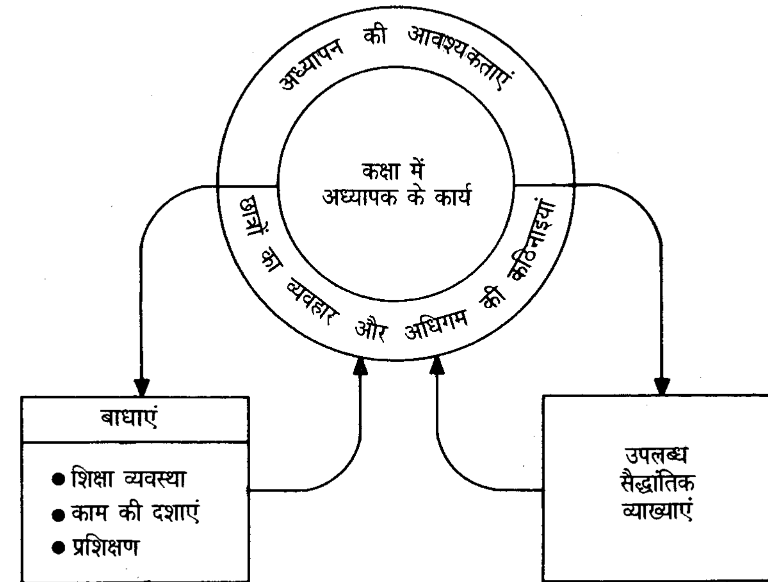
थी। यह एक व्यवस्था थी; कागजात पहले ही भरे जा चुके थे। यह ज्यादातर तो कागजात की समस्या थी। लेकिन दूसरे विद्यालयों में उन्हें बराबर-बराबर बांटा गया। सूची सिर्फ एक थी। फिर प्रधानाध्यापक ने हर कक्षा में एक लड़की और एक लड़के को रखा और वह भी जब निदान का कोई परीक्षण नहीं हुआ था, ताकि सभी बुरे छात्र एक ही कक्षा में न भर जाएं।

हमारे अध्ययन में शामिल ये अध्यापक आखिर छात्रों की असफलताओं के लिए ज्यादातर सामाजिक पृष्ठभूमि की सीमाओं को और परंपरागत रूप से स्वीकृत शैक्षिक मानदंडों की पूर्ति के अस्वीकार को क्यों जिम्मेदार ठहराते थे ? साठोत्तरी और सत्तरोत्तरी दशकों में लातीनी अमरीकी अध्यापकों का परिचय प्रशिक्षण तथा सेवाकालीन पाठ्यक्रमों के माध्यम से तथा कुछ दूसरे उपायों से ऐसे सामाजिक सिद्धांतों से हुआ जो सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि द्वारा व्यक्ति के विकास पर आरोपित सीमाओं को और तंग बनाते थे। शैक्षिक उपलब्धि के निर्धारकों से जुड़े उन अध्ययनों ने अंशतः यही काम किया जो पृष्ठभूमि संबंधी कारकों, विद्यालय के संसाधनों, और अधिगम के संबंधों पर विचार करते थे मगर यह देखने में असफल रहे कि छात्रों के परिणामों को प्रभावित करनेवाली कौन-कौन सी प्रक्रियाएं विद्यालय के अंदर जारी हैं। इसके अलावा अनेक प्रचलित मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों ने अध्यापकों का परिचय बुद्धि-परीक्षण (आई क्यू) और अधिगम की परेशानियों की दुनिया से भी कराया (इनमें पढ़ाई में सर्वग्राही अक्षमता भी शामिल थी)। उन्होंने अध्यापकों को यह भी बतलाया कि व्याधिग्रस्त मूलवाले अन्य कारक भी अधिगम (लर्निंग) को प्रभावित कर सकते हैं। इन सबके कारण अध्यापक अकसर पहले से ही यह विश्वास करने लगे कि 'समस्याग्रस्त बच्चे' तो 'मानसिक व्याधि' के उदाहरण हैं और इस तरह उनको शिक्षित करना असंभव है।

एक और दृष्टि से देखें तो अध्यापकों को ऐसे परंपरागत शैक्षिक दर्शनों से परिचित कराया गया जो शिक्षा को ऐसी अखंड प्रक्रिया के रूप में पेश करते थे जिसमें अध्यापकों और अभिभावकों का बराबर योगदान होता है। अगर इनमें से एक असफल रहे तो पूरी शिक्षा प्रक्रिया ध्वस्त हो जाती है (कोलंबिया के परिवेक्षक का पहले उद्धृत वक्तव्य देखें)। लेकिन अध्यापकों की राय में निर्धन छात्रों के सिलसिले में परिवार का पक्ष ही अकसर चूकनेवाला साझीदार होता है। इसलिए हमारे अध्ययन वाले अध्यापकों ने जाने-अनजाने इन तमाम प्रचलित सिद्धांतों की समझ को अपने कर्म के लिए व्याख्या के ढांचे के रूप में स्वीकार कर लिया है तो उनके पास करने को और कुछ रहता क्या है ? उनके पास शैक्षिक साधन थोड़े से हैं तथा ये भी ज्यादातर खराब हालत में हैं, जिन्हें वे कमोवेश यांत्रिक ढंग से काम में लाते रहते हैं। अगर उनकी शिक्षाव्यवस्था ने व्यवहारगत उद्देश्यों को स्वीकार किया होता तो वे अध्यापक-मार्गदर्शिकाओं को काम में लाते जो उन्हें बतातीं कि किसी पाठ के दौरान एक-एक पल-विशेष में क्या करना है तथा अधिगम के परिणाम को कैसे मापना है। ऐसी गतिविधियों का बच्चों की दुनिया से संबंध संभव था और नहीं भी, जैसाकि कोलंबिया के एस्क्यूला नोएवा की एक प्रायोगिक कक्षा में पढ़नेवाले एक लड़के के प्रश्न से स्पष्ट है।

यह लड़का अपनी कक्षा को उपलब्ध कराई गई ऐसी मार्गदर्शिका से काम ले रहा था जिसमें कार्यक्रम दिया गया था। इस लड़के ने (जो कोलंबिया के ऐसे ग्रामीण क्षेत्र का रहनेवाला था जहां सूखे का तीसरा साल चल रहा था) पूछा : 'इस किताब में ऐसा क्यों कहा गया है कि दुनिया का तीन-चौथाई हिस्सा पानी है ? यहां तो पानी बहुत ही कम है।'

हो सकता है, इन अध्यापकों को यह याद हो कि पाठ के आरंभ में अभिप्रेरणा होती है, उसका विकास होता है, फिर अभ्यास कराया जाता है और हो सकता है कि वे इसी ढर्रे से बंधे हुए हों, भले ही उनकी अंतर्वस्तु कुछ भी हो, या यह कि क्या ये रूप और प्रस्तुति को सुधारने की मिसालों से भी अधिक कुछ हैं, किसी पुस्तक के एक-दो पन्नों से आगे बढ़ने की या बच्चों को यह याद दिलाने के लिए हैं कि उन्हें घर पर गृहकार्य करना है और यह कार्य मात्र सुलेख उतारने से अधिक कुछ भी नहीं है। अगर सुस्थापित तरीकों पर चल कर अधिगम में प्रत्याशित सुधार नहीं लाया जा सकता तो अध्यापकों के लिए जरूरी नहीं कि वे बेचैनी महसूस करें या अपने व्यवहार पर शंका करें क्योंकि जो सिद्धांत उनके व्याख्यात्मक



चित्र 2 : अध्यापक के कक्षा-कार्यों को प्रभावित करनेवाली प्रक्रियाएं

परिप्रेक्ष्य के अंग बन चुके हैं, वे उन्हें अवलंब देते हैं या शिक्षा-प्रक्रिया में उनके योगदान की समझ को धुंधली बनाते हैं।

कुल मिलाकर बात यहां पहुंचती है कि अपने अवलोकन की सामग्रियों, अध्यापकों और छात्रों से अपने साक्षात्कारों तथा संबद्ध देशों के सामाजिक संदर्भ संबंधी अपने ज्ञान के आधार

पर हम इसकी कोई व्याख्या प्रस्तुत कर सके हैं कि लातीनी अमरीकी विद्यालयों में निर्धन बच्चों की असफलता के भारी परिमाण में अध्यापक किस प्रकार योगदान करते हैं। हमारी राय में यह व्याख्या न सिर्फ अध्यापन (कक्षा-कार्य) की गुणवत्ता पर बल्कि अध्यापकों के उस व्याख्यात्मक ढांचे (व्यावहारिक विचारधाराओं) पर भी केंद्रित होनी चाहिए जिसका प्रयोग वे समस्याग्रस्त (व्यवहार और अधिगम संबंधी कठिनाइयों से ग्रस्त) छात्रों के बारे में करते हैं। अध्यापकों द्वारा सफल और असफल छात्रों के बारे में कही गई बातों पर मनन करके तथा कक्षाओं में उनकी अंतःक्रियाओं का मूल्यांकन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। तब हमने महसूस किया कि इन व्याख्याओं या व्यावहारिक विचारधाराओं (उपलब्ध सैद्धांतिक व्याख्याओं) के तथा साथ ही उनके फलने-फूलने की दशाओं के अपने ही कुछ स्रोत हैं। ये हैं उनकी राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था तथा उनकी पेशागत और काम की दशाएं। अंतिम बात, जब हमने इन अध्यापन-कार्यों का वर्णन किया तो यह भी महसूस किया इनमें से अनेक दशाएं अधिगम के लिए अनुकूल नहीं हैं बल्कि उन अन्य दशाओं को मजबूत ही बनाएंगी जो किसी बच्चे की असफलता का कारण बनती हैं। चार देशों के अध्ययन से हमें जिस प्रक्रिया और उसके जिन तत्वों का पता चलता है उन्हें हमने ऊपर के चित्र में दिखाया है।

बीटो का दृष्टांत

इस ग्रंथ में हमने जो कुछ कहने की कोशिश की है, बीटो उसी की मिसाल है। चिली के एक प्राथमिक विद्यालय में पहली कक्षा के शुरुआती दिनों में ही उसने घटनाओं में अपनी दिलचस्पी और मेहनत की तत्परता का परिचय दिया था। जब दिन और हफ्ते गुजरे तो लगा कि वह कक्षा के जीवन से अधिकाधिक विमुख होता जा रहा है। उसकी अध्यापिका ने इस परिवर्तन की व्याख्या इस प्रकार की :

> शुरू में मुझे लगा कि यह केवल व्यवहार की समस्या है। अब मैं सोचती हूं कि यह और भी कुछ है। उसका बाप मुझसे मिलने सिर्फ एक बार आया और मां सहयोग नहीं करती, जो कुछ मैं कहूं वह नहीं करती। सचमुच मेरी अक्ल हैरान है। मेरे पास मनोविज्ञान की कई किताबें हैं और मैं उसको कहीं रखने के लिए समस्याग्रस्त बच्चों के बारे में पढ़ती रही हूं। अगर वह किसी निचली कक्षा में होता (इस कक्षा में 38 बच्चे हैं) तो कहीं बेहतर करता। मेरा खयाल है उसकी मां पागल है क्योंकि वह बेहद मूडी है। एक बार मुझ पर बरस पड़ी। विद्यालय में एक परामर्शदाता होनी चाहिए जिसके पास ऐसी समस्याओं से निपटने के लिए पर्याप्त समय हो। बीटो अब तनहा रहता है, अब कोई उससे खेलता भी नहीं। वह मुश्किल से बातें करता है और हर समय डरा हुआ लगता है। मेरी राय में उसके साथ कहीं कोई गड़बड़ी है। कल मैं जोर देकर उसकी मां से कहूंगी कि निदान केंद्र से बीटो की रिपोर्ट लाए।

ऊपर दिए गए बीटो की स्थिति के मूल्यांकन पर विचार करते समय हमें उसकी कक्षा के वातावरण की विशेषताओं पर भी गौर करना होगा। बीटो की कक्षा के वातावरण को हम निष्क्रियता का वातावरण कह सकते हैं। बच्चे बैठकर सवाल सुनते और जवाब देते हैं। उनको सटीक निर्देश दिए जाते हैं मगर ज्यादातर ये अर्थहीन होते हैं। वास्तविक दुनिया की तमाम जानकारी कापियों में भरी जाती है। यही वह कक्षा है जिसे एक प्रेक्षक ने ऐसी जगह कहा था जहां अध्यापिका का कहा ही एकमात्र वास्तविकता होती है : 'गोया कि इस कक्षा में दुनिया समेट ली गई हो।'

> (अध्यापिका बच्चों को निर्देश देती है कि बारिश का चित्र कैसे बनाएं।)
> *अध्यापिका* : मैंने कहा न कि बारिश को इतना सीधे-सीधे न दिखाओ ! बारिश कैसे दिखाएं, इतना सीधे-सीधे न हो, मैं तुम्हें पहले ही बता चुकी हूं।
> *अध्यापिका* (एक छात्र से) : देखें। बारिश इतनी सीधे-सीधे नहीं होनी चाहिए। इसे ठीक से दिखाओ !

बीटो की कक्षा में बच्चे रोज थोड़ी देर कुछ पढ़ते थे। यह पढ़ाई ज्यादातर श्यामपट पर दर्ज कुछ शब्दों की होती थी और उन्हें वे फिर समवेत आवाज में जोरों से पढ़ते थे। साल के मध्य तक लगभग आधे बच्चे कुछ भी पढ़ पाने में असमर्थ थे। बीटो की कक्षा में लिखने को महत्व दिया जाता था और सुलेख उतारना इसका महत्वपूर्ण अंग था। लेकिन 'ला प्रूएबा दे कास्तेलानो' (स्पेनी का टेस्ट) को छोड़ बच्चों की प्रगति परखी तक नहीं जाती थी। इस टेस्ट (परीक्षा) की बात कई दिन पहले बता दी जाती थी और उससे पहले तनाव और भय का वातावरण पैदा करने का ध्यान रखा जाता था। लेकिन जब अंततः टेस्ट (परीक्षा) लिया गया तो अध्यापिका ने सवाल पूरे करने में बच्चों की मदद करके उसका मकसद ही खत्म कर दिया। इसका कारण यह था कि अंततः इसके परिणामों से ही उसके अध्यापन की गुणवत्ता आंकी जाती।

साल के शुरू में ही बीटो की अध्यापिका से कह दिया गया था कि उसकी कक्षा अच्छी नहीं थी, उसके पास निर्धन परिवारों के सामान्य से अधिक बच्चे थे और संभवतः उनकी उपलब्धियां कम हो सकती हैं। वह भी इसी मान्यता से संचालित लगती थी कि ये पूर्वकथन सटीक हैं। व्यवहार में इसका नतीजा यह हुआ कि कक्षा में सामने की कतार में बैठनेवाले पसंदीदा बच्चों पर ज्यादा ध्यान दिया गया था। वह इन्हीं बच्चों से अधिक बातें करती और उन्हीं को ज्यादा समझाती थी। बाकी के साथ वह आमतौर पर निरंकुशता का और व्यंग्यपूर्ण व्यवहार करती थी। उसने कक्षा में ऐलान किया कि बीटो 'कुछ नहीं करता और अपनी किताबें, पेंसिलें और रबड़ खोता रहता है।' एक छात्र के रूप में बीटो के भविष्य का पूर्वानुमान लगाना कुछ मुश्किल नहीं था; वास्तविक सवाल तो यह था कि वह कितना आगे तक बढ़ सकेगा ?

अन्य साक्ष्य

शैक्षिक सफलता और असफलता संबंधी हाल के अनेक अध्ययनों ने उसके विभिन्न कारणों पर या तो अध्यापक की दृष्टि से या विद्यालय की प्रभाविता की दृष्टि से या छात्रों की दृष्टि से विचार किया है। उनकी यह विवेचना आत्मछवि तथा सफलता और असफलता के दायित्व-निर्धारण संबंधी सिद्धांतों पर आधारित रहती है। प्रस्तुत अध्ययन निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आनेवाले बच्चों के शैक्षिक परिणामों पर अध्यापकों के रवैयों और व्यवहार के प्रभाव पर केंद्रित है। आरंभ में सफलता की मार्केबंदी या दायित्व-निर्धारण संबंधी सिद्धांतों का खंडन या मंडन करने का संकल्प न होते हुए भी अपने अवलोकन के कारण हम इस कथन की पुष्टि करने के लिए बाध्य हो गए कि बच्चे क्या कर सकते हैं और क्या नहीं कर सकते हैं, यह बात वे ज्यादातर दूसरों से सीखते हैं, और यह कि जिस प्रकार वे इस धारणा का अभ्यंतरीकरण करते हैं (अर्थात प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से प्राप्त सूचना को जो अर्थ देता है) वह उनके अधिगम संबंधी प्रयासों की सफलता पर अच्छा-खासा प्रभाव डालता है। इस अध्ययन में शामिल अनेक बच्चों को शैक्षिक जीवन के आरंभ में ही फिसड्डी घोषित कर दिया गया था और इसके कारण प्रायः उनके कार्य संपादन की क्षमता से असंबद्ध होते थे। पहली कक्षा में ही और अगर वे इतने भाग्यशाली हुए कि आगे की कक्षा में जा सके तो दूसरी या तीसरी कक्षाओं में भी उनका इतिहास असफलता का इतिहास होता था। हम कालक्रम की दृष्टि से इस पूरी प्रक्रिया का अन्वेषण नहीं कर सके (जो वैसे वांछित था)। मगर हमारा विचार था कि परिणाम की सूचना देनेवाले पर्याप्त तत्व मौजूद हैं। जैसाकि काइफर (1977) ने कहा है, अगर असफलता के अनुभवों का इतिहास ही बच्चों पर गंभीर प्रभाव डालता है तो हम लोगों का अवलोकन सचमुच चिंता के विषय हैं :

> आम तौर पर यह माना जाता है कि रागात्मक गुण एकाएक नहीं बल्कि क्रमशः विकसित होते हैं। इसलिए संभव है कि एक बार की सफलता या असफलता बच्चे पर कोई निर्णायक प्रभाव न डाले। कक्षा में अनेक प्रकार की उपलब्धियों की मांग की जाती है और कोई बच्चा कुछ एक में, अनेक में या लगभग सभी में निगुण हो सकता है। उत्कृष्टता के अवसर भी अनेक होते हैं। किसी एक सफलता या असफलता से अधिक महत्व तो सफलता या असफलता के प्रतिमान का होता है। जिस तरह कोई घर एक दिन में नहीं बनता उसी तरह रागात्मक गुणों का विकास भी एक दिन में नहीं होता। बच्चा जब पहली बार देखता है कि उसके अधिकांश हमजोली उससे बेहतर या बदतर हैं या यह कि किसी विशेष कार्य को वह सफलता से पूरा नहीं कर सका है तो यह कम अहम होता है, अपेक्षाकृत उस स्थिति के जब अनुभव अनेकों गुना बढ़ चुके होते हैं। जब छात्र खुद के लिए निर्धारित मानदंडों या प्रत्याशाओं पर खरा उतरने में लगातार सफल या असफल होता है तभी जाकर वह अपनी उपलब्धियों के अनुरूप रागात्मक दृष्टियां विकसित करता है (काइफर 1977/295)।

अपनी क्षमताओं में बच्चे के विश्वास के कम होने की इस प्रक्रिया के संदर्भ में अध्यापक और कभी-कभी अभिभावक असफलता की जिम्मेदारी बच्चे पर तो डालते ही हैं, खुद बच्चा भी मानने लगता है कि इसके लिए जिम्मेदार वही है।[5] ऐसा ही एक दृष्टांत (बोलीविया के एक विद्यालय के) बोरिस का था जिसने अपनी मां से कहा था, 'इसलिए ऐसा हुआ कि मैं गधा हूं।' तोरो और दे रोजा (1981) ने कोलंबिया के 280 प्राथमिक छात्रों, उनके अध्यापकों और अध्यापकों के बीच असफलता के निर्धारण के प्रतिमानों के संबंध में एक सर्वेक्षण किया है। उन्होंने पाया कि सर्वेक्षणाधीन लगभग 80 प्रतिशत बच्चे और उनके माता-पिता यह मानते थे कि असफलता की मुख्य जिम्मेदारी छात्रों की होती है। उधर अधिकांश अध्यापक खुद को इस जिम्मेदारी से मुक्त रखकर इसे बच्चों और अभिभावकों में बांट देते थे।

प्रस्तुत अध्ययन में असफलता के अनुभवों के जो अंतर्निहित कारण सामने आए उनमें कम से कम एक का संबंध उन नियतिवादी विश्वासों, रुझानों और संगत व्यवहारों से था जो अध्यापक अपने सहकर्मियों से प्राप्त करते हैं। इन्हीं को हमने उनकी 'व्यावहारिक विचारधाराएं' कहा है। अध्यापकों द्वारा असफलता को दूसरों पर मढ़ने की प्रक्रियाएं शैक्षिक अनुभवों पर निर्धनता, कुपोषण तथा एक 'विजातीय' संस्कृति और भाषाई समूह की सदस्यता के नकारात्मक प्रभावों से जुड़ी उनके विचारों से प्रभावित होती हैं। इतना ही नहीं, वे उन चीजों से भी प्रभावित होती हैं जिन्हें हमने उनका बिना-परखा शिक्षाशास्त्रीय विचार कहा है। इस बारे में ब्राजील के मध्य और निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले विद्यालयों पर रोबेल (1981) का नृजातीय अध्ययन भी हमारे अध्ययन के निष्कर्षों की पुष्टि करता है। विभिन्न 'सिद्धांत' अपने संस्थागत संदर्भों के आधार पर किस प्रकार अलग-अलग ढंग से रूपांतरित होते हैं, रोबेल ने इसी का अध्ययन किया है। उनका कथन है कि 'आधुनिक' शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांत जैसे आम तौर पर वैयक्तिक भेदों की धारणाओं, बुद्धि-परीक्षण तथा सहभागी और प्रश्नमूलक अधिगम से जुड़े सिद्धांत, निजी विद्यालयों की व्यवस्था में सुग्राह्य होते हैं जहां अध्यापक और अभिभावक एकसमान खुले ढंग से उन पर विचारविमर्श करते हैं। मगर निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों के काम आनेवाली राजकीय व्यवस्था में अध्यापकों, अभिभावकों और बच्चों पर ऐन इन्हीं शिक्षाशास्त्रों को निरंकुश ढंग से लादा जाता है। और इससे मतलब नहीं होता कि उनके अर्थ की व्याख्या किस प्रकार की जाती है।

इसलिए आश्चर्य नहीं कि प्रधानाध्यापक और अध्यापक लोग आधुनिक शिक्षाशास्त्रीय शब्दावली (कथनोपकथन, रचनात्मक चिंतन, संपूर्ण व्यक्तित्व की शिक्षा) का प्रयोग ऐसे अर्थ में करते हैं जिसे रोबेल ने 'विपर्यस्त' आयामों से ग्रस्त कहा है। मसलन 'निदान संबंधी उद्देश्यों' का अर्थ ऐसा होता है कि किसी पर असामान्य होने का कलंक लगाया जाता है और 'मनोवैज्ञानिक आयामों' पर विचार करने का मतलब आम तौर पर छात्रों से संबंधित ऐसी सूचनाओं का प्रयोग करना होता है जो आमने-सामने के संपर्क, अभिभावकों, दूसरे अध्यापकों, विद्यालय में प्राप्त अंकों आदि से प्राप्त होती हैं और जिनके सहारे बच्चों को

हीन श्रेणी में रखा जाता है। फिर इन फैसलों की व्याख्या के लिए अध्यापक घर पर स्नेह के अभाव, माता-पिता द्वारा उपेक्षा, तथा घर पर समाजीकरण की असंतोषजनक प्रक्रियाओं जैसे तत्वों का सहारा लेते हैं। रोबेल (1981) के अध्ययन का निम्नलिखित साक्षात्कार हमारे अपने अध्ययन के किसी भी अध्यापक से लिया गया साक्षात्कार हो सकता था :

> मैंने तीन प्रकार के राजकीय विद्यालयों में काम किया है। मैंने एक घोर निर्धन विद्यालय कैंपोग्रेद में काम किया। मैंने सभी आयु और सभी कक्षाओं के बच्चों के बीच काम किया। बेहद थकाऊ काम था और उनके स्तर, आपको पता है, सीमित बुद्धि के कारण उनकी क्या कठिनाइयां थीं, ठीक इसीलिए कि उनका समाजीकरण ही ऐसे हुआ था। वे 'फवेलों' (झोंपड़ों) में रहते थे, और उनके माता-पिता की जहालत, स्नेह का अभाव तो जरा देखिए... और अब मैं यहां, गाविया के विद्यालय में हूं... लेकिन बेहद टेढ़े हैं ये। तीन साल से उसी कक्षा में पढ़ रहे हैं। 12 या 13 साल की उम्र के हैं। कुछ तो मनोविदलित हैं और कुछ की बुद्धि सीमित है। वे कतई आगे नहीं जा सकते, कतई साक्षर नहीं बन सकते।

हमारा कथन यह है कि जब अध्यापक अपने अध्यापकीय व्यवहार से असंबद्ध कारणों से यह मान लेते हैं कि कुछ छात्र पढ़ ही नहीं सकते तो ऐसे व्यवहार की प्रभाविता को परखने या नए सिरे से परखने का आधार ही काफी कमजोर हो जाता है। जिन देशों का अध्ययन हमने किया है, उनमें प्रारंभिक या सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान प्राप्त परंपरागत 'ज्ञान' के सहारे अध्यापन की परंपरागत शैलियों को बदलने में कठिनाई का यही कारण हो सकता है। ये कार्यक्रम शायद ही अध्यापकों को यह सामर्थ्य देते हों कि वे अपने कर्म की तथा उसे बदलने में बाधक निहित विश्वासों की आलोचनात्मक समीक्षा कर सकें।

टिप्पणियां

1. 'अध्यापक एक अनुमान-कला' के रूप में—इस वाक्यांश को कोलंबिया और चिली के उन अध्यापकों ने गढ़ा था जिन्होंने बच्चों को अध्यापक के मनोरथ का अनुमान लगाने का निरंतर प्रयास करते हुए देखा था.
2. अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र के लिए कार्लोस काल्वो (1979) ने मेक्सिको, इक्वादोर, पेरू और ब्राजील की शिक्षा संबंधी उपलब्ध मानवशास्त्रीय साहित्य की समीक्षा की है. उनका निष्कर्ष था कि शैक्षिक समस्याओं के अध्ययन के लिए मानवशास्त्रीय पद्धतियों का व्यापक उपयोग अवश्य हुआ है, मगर सचमुच मानवशास्त्रीय प्रकृति वाले अध्ययन थोड़े ही हैं तथा ऐसे अध्ययन तो और भी कम हैं जो मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्यापन और विद्यालय शिक्षा के प्रभावों की छानबीन करते हैं. और भी हाल में मेक्सिको में एल्सी राकवेल और उनके सहयोगियों का अध्ययन मेक्सिको के प्राथमिक विद्यालयों से संबद्ध अध्ययनों पर केंद्रित रहा है (मसलन राकवेल 1982; राकवेल और गाल्वेज 1982 इत्यादि देखें).

3. ये अध्ययन विभिन्न सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों में किए गए हैं. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के ढांचे में किए गए कार्य की समीक्षा के लिए क्लार्क और यिंगर (1981) देखें. कक्षागत स्थितियों की परिभाषा पर अध्यापकों के दृष्टिकोणों को केंद्र बनाकर स्तोबिंस (1975) ने जमैका और कनाडा के अध्यापकों संबंधी अध्ययन में यह दिखाने का प्रयास किया है. अध्यापक के काम के दौरान कैसे विचार और व्यवहार होते हैं और कैसे वे इनके प्रति अचेत होते हैं. वुड्स (1983) ने ब्रिटेन में प्रतीकात्मक अंतःक्रिया के ढांचे में 'अध्यापकों के परिप्रेक्ष्यों' संबंधी अध्ययनों की समीक्षा की है. एल्बाज (1983) ने उसका अध्यन किया है जिसे वे अध्यापक का व्यावहारिक ज्ञान कहती हैं। इससे उनका तात्पर्य 'खुद के, अध्यापक के परिवेश के, विषयवस्तु, पाठ्यचर्या का विकास और अनुदेश के ज्ञान' (पृ. 14) से है. इसमें सिर्फ बौद्धिक विकास नहीं बल्कि प्रत्यक्ष, भावना, मूल्य, उद्देश्य और प्रतिबद्धता (पृ. 117) भी आते हैं.
4. मार्क्सवाद से प्रेरित सिद्धांतों में विचारधारा सबसे अधिक बहस का विषय रही है. इसकी व्याख्याओं में एक तरफ बड़े भोंड़े किस्म का नियतिवाद शामिल है जिसका मतलब यह है कि विचारधाराकरण (आइडियालोजाइजेशन) की प्रक्रिया में कर्ता की भागीदारी मामूली होती है या नहीं होती. कुछ और भी सुबोध ढंग से ऐसी ही नियतिवादी दृष्टि का प्रतिपादन लुई आल्थ्यूसर (1977) ने किया है. वे विचारधारा को यथार्थ का मिथ्या चित्रण मानने से इनकार करते हैं क्योंकि उसका मूल ऐन उन्हीं अंतर्विरोधों से ग्रस्त यथार्थ में है जिन पर व्यवहार में काबू पाना आवश्यक है ताकि विचारधारा में मौजूद विकृतियों को दूर किया जा सके. मगर वे यह नहीं मानते कि कभी विचारधारा का अंत होगा. कारण कि इसमें यह भी शामिल है कि मानवप्राणी किस प्रकार 'आपस के संबंधों तथा अपने अस्तित्व की दशाओं में जीवनयापन करते हैं.' इसमें एक यथार्थ संबंध तथा एक परिकल्पित, 'जिए गए' संबंध की मान्यता निहित है. लेकिन अपनी विचारधारा के निर्माण में जनता का योगदान नहीं होता; वह इसे मात्र प्राप्त करती है. यह लोगों को साथ लाने तथा सामाजिक एकजुटता स्थापित करने के लिए 'सीमेंट' का काम करती है. जिसे हम नव-आलोचनात्मक मार्क्सवाद कह सकते हैं. उसके प्रतिनिधि जुर्गेन हेबरमास (1971) का कथन है कि समकालीन पश्चिमी पूंजीवाद एक ऐसी स्थिति का सूचक है जिसका विश्लेषण ऐन उसी ढंग से नहीं किया जा सकता जिस ढंग से मार्क्स ने 19वीं सदी में किया था. उनका कहना है कि अब मात्र वर्गीय संबंध पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति के संबल नहीं हैं. वर्गीय शत्रुताएं समाप्त नहीं हुई हैं बल्कि प्रच्छन्न हो गई हैं, और उनके विचार में संघर्ष का केंद्र अब उपसांस्कृतिक (नस्ली और नृजातीय) समूहों के बीच में आ गया है. इसी प्रकार हेबरमास का कथन यह भी है कि कर्ता (या बेहतर ढंग से कहें तो सामूहिक कर्ता) की संलग्नता विचारधारा को जारी रखने के लिए महत्वपूर्ण होती है. यह कर्ता जितनी अच्छी तरह यह समझते कि उसके व्यवहार के स्रोत कौन-कौन से हैं तथा समाज की दशाओं से उसका क्या संबंध है, उस सीमा तक इन दशाओं पर काबू पाने का आधार तैयार होता है. दूसरे शब्दों में, जैसा कि थांप्सन (1983 : 95) का कथन है : 'सामाजिक कर्तागण बौद्धिक संवाद की प्रति-तथ्यात्मक दशाओं में आवश्यकताओं की सामूहिक व्याख्या के माध्यम से विचारधारा की भ्रांतियों को दूर करने के प्रयास कर सकते हैं.' इसी प्रकार ग्राम्शी की विचारधारा की ऐतिहासिक धारणा क्रांतिकारी परिवर्तन की एक प्रगतिशील और आवश्यक दशा के रूप में जन-चेतना की भूमिका को रेखांकित करती है. (क्रांतिकारी परिवर्तन को वैचारिक वर्चस्व के संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है). 'यह 'चेतना का द्वंद्ववाद' है जिसकी जड़ें रोजमर्रा की जिंदगी के परिघटना विज्ञान में हैं' (तुलना करें बाग्स 1976 : 123 से), मगर यह संरचनात्मक रूपांतरणों से स्वतंत्र नहीं है.
5. सफलता-असफलता के अनुभवों के प्रभावों की छानबीन गुथरी (1983), दिल्लन (1975) तथा एमिस और एजिस (1978) ने भी की है.

संदर्भ

आल्थ्यूसर, एल (1977) : *फार मार्क्स,* लंदन : न्यू लेफ्ट बुक्स.

एमिस, सी. और एमिस, आर. (1978) : द थ्रिल आफ विक्टरी एंड द एगोनी आफ डिफीट : चिल्ड्रेंस सेल्फ एंड इंटर-पर्सनल इवेल्युएशन इन कंपिटीटिव एंड नान-कंपिटीटिव लर्निंग इनवायरनमेंट्स, *जर्नल आफ रिसर्च एंड डेवलपमेंट इन एजुकेशन,* 12 (1), पृ. 79-87.

एल्बाज, एफ (1983) : *टीचर थिंकिंग : ए स्टडी आफ प्रैक्टिकल नालेज,* लंदन; क्रूम हेम लि.

काइफर, ई (1977) : दि इंपैक्ट आफ सक्सेस एंड फेलियर आन द लर्नर, *इवैल्यूएशन इन एजुकेशन : इंटरनेशनल प्रोग्रेस,* 1 (4), पृ. 183-359.

काल्वो, सी (1979) : दे एप्लिकेशन आफ एंथ्रोपोलोजिकल मेथड्स टु एजुकेशनल रिसर्च इन मेक्सिको, इक्वादोर, पेरू एंड ब्राजील, समाजविज्ञान संभाग, अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र, ओटावा, कनाडा में प्रस्तुत अप्रकाशित रपट.

क्लार्क, सी एम और यिंगर (1981) : रिसर्च आन टीचर्स पेडागाजिकल थाट्स, जजमेंट्स, डिसिजंस एंड बिहैवियर, *रिव्यू आफ एजुकेशनल रिसर्च,* 51 (4), पृ. 455-98.

गुथरी, जे.टी. (1983) : चिल्ड्रेंस रीजंस फार सक्सेस एंड फेलियर, *द रीडिंग टीचर,* जनवरी, पृ. 478-80.

ग्राम्शी, ए (1971) : *सेलेक्शंस फ्राम द प्रिजन नोट बुक्स,* संपादक : क्यू. होरे और जी. नोवेल स्थिम, लंदन : लारेंस एंड विशार्ट लि.

तोरो, जे.बी. और दे रोजा, आई. (1981) : पापितो यो पोक्वं तेंग क्वे रेपेतीर एल एन्यो ? लोस पैत्रोनेस दे एत्रिव्यूशियों दे ला रेपीतेंसिया, शिक्षा विभाग के लिए तैयार रिपोर्ट, बगोता, कोलंबिया.

थाम्सन, जे.बी. (1983) : *क्रिटिकल हरमेन्यूटिक्सः ए स्टडी इन द थाट आप पाल रिकोयूर एंड जुर्गेन हेबरमास,* कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

दिल्लन, एस.वी. (1975) : स्कूल्स विदाउट फेलियर एंड एलिनेशन, *द जर्नल आफ स्कूल हेल्थ,* 45 (6), पृ. 324-26

पोप्कोविट्ज, टी.एस; ताबाचनिक, बी आर; वेह्लगे, जी (1982) : *द मिथ आफ एजुकेशनल रिफार्मः ए स्टडी आफ स्कूल रिस्पांस टु ए प्रोग्राम आफ चेंज,* मेडिसन : यूनिवर्सिटी आफ विस्कांसिन प्रेस.

बर्गर, पी.एल. और लकमान, टी. (1966) : *द सोशल कंस्ट्रक्शन आफ रियालिटी,* हेमड्सवर्थ : पेंग्विन बुक्स.

बोग्स, सी (1966) : *ग्राम्शीज मार्क्सिज्म,* लंदन : प्लूटो प्रेस लि.

रीशेल-दोल्मातोफ, जी. और रीशेल-दोल्मातोफ ए. (1973) : ला एंसेन्यांजा फार्मल एत एरितामा; जी कतानो (सं) : *एजुकेशियों या सोसाइदेद एन, कोलंबिया,* बगोता : राष्ट्रीय शिक्षाशास्त्र विश्वविद्यालय में संकलित.

राकवेल, ई (1982) : दे हेलास बारदास या ते वरेदोस : उना हिस्तारिया कोतिदियाना एन ला एस्क्यूला, *शैक्षिक अनुसंधान त्रैमासिक* (स्पेनी), अंक 3, मेक्सिको सिटी : देपार्तमेंतो दे इनवेस्तिगेशियों एजुकेतिवा देल सेंतरो दे इनवेस्तिगेशियों या एस्तुदियोस एवांजादोस देल इंस्तित्यूतो पोलीतेकनीको नेशनल.

राकवेल, ई. और गाल्वेज, जी. (1982) : ला एंसेन्यांजा दे लास सिएंसियास नेचुरतेस एन क्वाजो ग्रुपोस दे प्राइमारिया, *शैक्षिक अनुसंधान त्रैमासिक* (स्पेनी), अंक 1, मेक्सिको सिटी : देपातांमेतो दे इनवेस्तिगेशियों एजुकेतिवा देल सेंतरो दे इनवेस्तिगेशियों या एस्तुदियोस एवांजादोस देल इंस्तित्यूतो पोलीतेकनीको नेशनल.

रोबेल, वी (1989) : सेरेमोजियाइस ए मितोस : उन एस्तुदो दे रेलाकोस एस्कोला-क्लायंतेला, इंस्तित्यतो यूनिवर्सितारियो दे पेस्क्वीसस दोरियो दे जनेरो, ब्राजील.

लेकन, जे (1970) : द इंसिस्टेंस आफ द लेटर इन द अनकांशस, एहमन, जे. (सं.) : *न्यू स्ट्रक्चरलिज्म,* न्यूयार्क : डबलडे एंड कंपनी में संकलित.

वुड्स. पी. (1983) : *सोशियालोजी एंड द स्कूल : ऐन इंटरऐक्शनिस्ट व्यूपाइंट,* लंदन : रुटलेज एंड केगन पाल लिमिटेड.

शार्प, आर (1981) : मार्क्सिज्म, द कंसेप्ट आफ आइडियोलाजी, एंड इट्स इंप्लिकेशंस फार फील्ड वर्क, टी एस पोप्केवित्ज (सं.) : *द स्टडी आफ स्कूलिंग : फील्ड बेस्ड मेथोडालाजी इन एजुकेशनल रिसर्च एंड इवैल्यूएशन,* न्यूयार्क : प्रेगर पब्लिशर्स ई. में संकलित.

शुल्ज, ए. (1967) : कलेक्टेड पेपर्स-1 : *द प्राब्लम आफ सोशल रियलिटी,* संपादक : एम नेटसन, हेग : मार्तिनस निझाफ पब्लिशर्स बी टी.

शुल्ज, ए. और लकमान, टी (1974) : *द स्ट्रक्चर्स आफ द लाइफ वर्ल्ड,* लंदन : विलियम हाइनेमान लि.

स्टेबिंस, आर.ए. (1975) : *द टीचर्य एंड द मीनिंग,* लीडन (जर्मनी) : ई.जे. ब्रिल, जी.एम.बी.एच. बुखडेल एंड झूकरेल

हेबरमास, जे. (1971) : आन सिस्मेटिकली डिस्टर्टेड कम्युनिकेशन, *इनक्वायरी,* 13, पृ. 205-18 और 360-75.

9. निष्कर्ष और सिफारिशें

प्रस्तुत अनुसंधान रपट की तरह की रपटों की यह भी एक मूल विशेषता है कि अध्ययन के परिणाम प्रस्तुत करने के लिए ही नहीं बल्कि भावी दिशा सुझाने के लिए भी निष्कर्ष सामने रखे जाते हैं। पिछले अध्यायों में ये दोनों ही पक्ष एक प्रकार से प्रस्तुत किए जा चुके हैं। फिर भी हम यहां अनुसंधान और व्यावहारिक लाभ के लिए कुछेक समापन टिप्पणियों और सिफारिशों को दर्ज करने की कोशिश करेंगे। देशवार अध्ययनों के प्रत्येक अनुसंधानकर्ता ने कुछ समापन टिप्पणियां लिखी हैं। पहले हम इन्हीं को प्रस्तुत करेंगे।

कोलंबिया के अध्ययन में विश्लेषण का केंद्र अध्यापक-छात्र संबंध था। इस बारे में यह विद्यालय शिक्षा से जुड़े अर्थों की विविधता और अस्पष्टता पर भी केंद्रित था। लेखकों का निष्कर्ष यह था कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद विद्यालय ऐसे भौतिक और मानवीय क्षेत्र थे जहां बच्चे खेतों में काम करने या बगोता की सड़कों पर भीख मांगने जैसे जीवन की गंभीरता को पीछे छोड़कर मात्र बच्चे बनते हैं। कोलंबियाई अनुसंधानकर्ताओं ने यह भी पाया था कि अभिभावकों के नजदीक विद्यालय ऐसे स्थान हैं जो बच्चों को जीवनोपयोगी बुनियादी कुशलताएं सिखाने तथा उनका भविष्य संवारने के लिए हैं। एस्क्यूला नोएवा कार्यक्रम जैसे प्रवर्त्तनों के प्रति उनके सुस्पष्ट भय का यही कारण था जिन्हें वे अपनी आवश्कताओं के लिए अप्रासंगिक समझते हैं। शिक्षा को दिए गए दूसरे अर्थ वे थे जो आधिकारिक रूप से व्यक्त किए गए हैं, जैसे सरकारी दस्तावेजों में जन-शिक्षा के दर्शन में। लेकिन अध्यापक इसके अपने अर्थ लगाते हैं। एक तरफ वे इसे बच्चों को सफाई-पसंदी और सुव्यवस्था सिखाने का साधन मानते हैं तो दूसरी ओर इसे साक्षरता का साधन समझते हैं जिसमें साल के अंत में एक परीक्षा उत्तीर्ण करना जरूरी होता है। इन विविध व्याख्याओं को देखते हुए कोलंबियाई अन्वेषकों को ऐसा नहीं लगता था कि वे सफलता या असफलता का कोई सटीक अर्थ निकलवा सकेंगे और इस तरह परिणाम को प्रभावित करनेवाले कारकों का कोई संकेत पा सकेंगे। वे अपने अध्ययन को पहले से तय किसी ढांचे में जबरन खपाना नहीं चाहते थे। उन्हें लगा कि करने का काम यह है कि अपनी तमाम विसंगतियों और रोजमर्रा के काम के साथ कक्षागत जीवन का वर्णन करें और उस पर रोशनी डालें। इसलिए उनकी विवेचना असफलता की 'व्याख्या' पर नहीं बल्कि प्रेषित घटनाओं का औचित्य या अधिकांश कक्षाओं में मौजूद नीरस वातावरण को जन्म देनेवाले अध्यापकीय औचित्य ढूंढ़ने की कोशिश पर केंद्रित थी। असफलता के निर्धारण से इस परिवेश का कितना गहरा संबंध था ? स्पष्ट

रूप से कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि इस वातावरण में कुछ बच्चे जो कुछ पढ़ते हैं उसे कभी समझ नहीं सकेंगे, कहानी लिखने के लिए अपनी कल्पना शक्ति का इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे, या यह नहीं जान पाएंगे कि जो कुछ वे किताबों में पढ़ते हैं, वह उनके अपने अनुभव से इतना भिन्न क्यों है। अगर बच्चे विद्यालय न जाते तो क्या कुछ बेहतर-हाल होते? शायद नहीं। कम से कम वे एक-दूसरे के साथ खेलना, 17 साल की जगह 7 साल का होना तो सीखते हैं।

राज्य की दृष्टि से विद्यालय शिक्षा के लिए जो कुछ कर सकता है उसका बहुत कम अंश ही कर पाता है। क्या यह वास्तव में 'जीवन के अधिकार तथा अन्य मानवाधिकारों के आधार पर संतुलित वैयक्तिक और सामाजिक विकास में योगदान देता है?' क्या यह 'प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं और आकांक्षाओं तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप कौशल के विकास और पेशागत उन्नति को बढ़ावा देता है?' क्या यह शिक्षा द्वारा 'ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र के सिद्धांतों और पद्धतियों के विश्लेषण और आलोचनात्मक बनने की वैज्ञानिक योग्यता विकसित करता है?' (शिक्षा मंत्रालय, कोलंबिया, उपनियम संख्या 1419 (1978) देखें)। अन्वेषकों का खयाल था कि कक्षा में घटने वाली गंदी घटनाएं शायद ही इन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक थीं। इसका एक ही सार्थक निष्कर्ष है : कि पाठक, अध्यापक, अभिभावक, राजनीतिज्ञ और छात्र सर जोड़कर हेबरमास के शब्दों में किसी 'सार्वजनिक क्षेत्र' में यह विचार करें कि ये कक्षाएं बच्चों को किस प्रकार प्रभावित करती हैं तथा कैसे इनमें वे विभिन्न अर्थ निहित हैं जो सभी संबद्ध व्यक्तियों द्वारा शिक्षा और विद्यालय को दिए जाते हैं।

चिली के अध्ययन का सरोकार विशेष रूप से विद्यालय जीवन के एक पहलू से था; उस प्रक्रिया से जिसमें बच्चा अपनी सामर्थ्य की भावना और सफलता की आकांक्षा से वंचित होता है। इस शोध दल ने एक पूरे सत्र भर कक्षाओं में बच्चों के अनुभवों का अवलोकन किया और बिना कुछ अधिक प्रयास के यह देखा कि इस प्रक्रिया का आरंभ कैसे होता है, अध्यापन के कौन से अनुभव इसे बल पहुंचाते हैं, और इस प्रक्रिया में अध्यापक-अभिभावक संबंध का क्या योगदान है। कहने में कुछ अधिक मुश्किल और एक तरह से हवा में छोड़ दी गई बात यह थी कि अध्यापक के पिछले जीवन और प्रशिक्षण, नौकरशाही व्यवस्थाओं के प्रतिबंध, राजनीतिक वातावरण तथा जीवन-संघर्ष किस हद तक उनके व्याख्यात्मक ढांचों और उनके कर्म को प्रभावित करते हैं। चिली में मनन से उपजी व्याख्याओं तथा इन विद्यालयों में बच्चों की सफलता के अवसर बढ़ानेवाली क्रियाओं का संयोग भविष्य के लिए आवश्यक है।

वेनेजुएलावालों ने अपना अध्ययन शिक्षा मंत्रालय के एक शोध दल के सदस्यों के रूप में किया। उन्हें अपने निष्कर्षों को थोड़ा नम्र बनाना पड़ा क्योंकि अगर इस प्रकार की रिपोर्ट में अध्यापकों या प्रशासकों के काम का गुणात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाता तो उनमें से कोई भी चैन महसूस नहीं करता। इसलिए उन्होंने अपने परिणाम सामने रखते समय

ऐसी अनेक क्रियाओं और घटनाओं पर ध्यान केंद्रित किया जो अनेक कक्षाओं के अवलोकन के दौरान स्वाभाविक रूप से सामने आई थीं। उन्होंने अध्यापन की निरंकुश और सहभागमूलक शैलियों के सातत्य की सूचना दी; इनमें एक तरफ रचनात्मक कही जा सकनेवाली शैली थी तो दूसरी तरफ अध्यापन के ऐसे रूपों के सक्रिय सिद्धांत थे जो शुद्ध यांत्रिक संबंधों के सूचक थे। फिर भी उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया कि अवलोकित अध्यापक कौन से थे, उनको प्रशिक्षण कैसे दिया गया, उनके जीवन-अनुभव क्या थे, सामाजिक प्रश्नों तथा कक्षा की गतिविधियों को प्रभावित करनेवाली अन्य बातों पर उनके विचार क्या थे। उन्होंने हमें एक विद्यालय दिखाया जो उनके अनुसार एक आदर्श सामुदायिक विद्यालय था। सबसे प्रभावी ढंग का अध्यापन कैसा था? यहां भी निष्कर्ष निकालने का काम उन अध्यापकों और जनता पर छोड़ दिया गया जो उनकी रिपोर्ट को पढ़ेंगे।

बोलीवियाई अध्ययन के बच्चे अनेक दुनिया के वासी थे। वे नगरवासी थे और गंदी बस्तियों वाले भी। वे विद्यालय में एक भाषा और घर पर दूसरी भाषा बोलते थे। अवकाश में खेलते थे तथा घर जाकर खाना पकाते, बसों में चढ़कर कुछ बेचते या बाजार में मां की मदद करते थे। अध्यापकों को इन बच्चों को पढ़ाना आसान नहीं लगता था। अपने छात्रों की पेचीदा पृष्ठभूमि से निपटने की समस्या का समाधान उन्होंने यह निकाला था कि उन पर एकरसता लादी जाए, बार-बार कुछ दोहराया जाए और मनमानी सजाएं दी जाएं। बच्चों को मूर्ख होने का दोषी ठहराया जाता था और अगर वे अपनी कठिनाइयों से निपटने के लिए अपरंपरागत ढंग अपनाते तो भी उन पर इलजाम लगाया जाता था। एक मां का आकलन था कि 'मेरा बच्चा विद्यालय में दुखी रहता है।' बोलीवियाई शोधकर्ताओं ने इसी वाक्य से अपने निष्कर्षों की प्रस्तुति आरंभ की है। लेकिन बोलीविया का अध्ययन आशाजनक है, इसलिए कि इसमें यह दिखाया गया है कि कोई अध्यापक जरा सा भी भिन्न हो तो वह क्या कर सकता है और इस तरह यह संकेत भी दिया गया है कि परिवर्तन की संभावनाएं कहां-कहां विद्यमान हैं। निष्कर्ष रूप में बोलीवियाई अध्ययन ने इस आवश्यकता का संकेत दिया है कि अध्यापकों के बीच काम करके उनके कार्य संबंधी वृत्तांतों के द्वारा, उन्हें अपने कर्म के प्रति सजग बनाया जाना चाहिए।

कुल मिलाकर हमने इस अध्ययन से क्या पाया? ऐसा प्रतीत होता है कि लातीनी अमरीका की प्राथमिक कक्षाओं पर जो पर्दा पड़ा हुआ था वह थोड़ा सा उठा है। हमने लातीनी अमरीका के चार अलग-अलग देशों के 16 विद्यालयों का अध्ययन किया। अध्ययनाधीन वर्ग निम्न प्राथमिक कक्षाओं (कक्षा 1 से कक्षा 5) के (और संख्या में कुल 57) थे जिसे हम एक अच्छा-खासा नमूना (सैंपल) कह सकते हैं। हर देश में प्रेक्षण की गहनता, समय और अवधि में अंतर था लेकिन हर देश में तथा विद्यालयों के बीच इनका उद्देश्य एक ही था। कक्षा में घटनेवाली घटनाओं के वर्णन का, सफलता और असफलता को जन्म देनेवाली और हमारी दृष्टि में महत्वपूर्ण घटनाओं की समझ पर ध्यान हमने केंद्रित किया, तथा शिक्षा, विद्यालय-शिक्षा, सफलता और असफलता को शिक्षा-प्रक्रिया के विभिन्न अंगों (अभिभावकों, अध्यापकों, छात्रों

तथा कुछ दृष्टांतों में समुदाय के सदस्यों) द्वारा दिए गए अर्थ तक पहुंचने का प्रयास किया। इसके परिणामों में उल्लेखनीय समानता थी जिसके कारण अध्याय 8 में प्रस्तुत वर्णनमूलक प्रवर्गों के आधार पर सामान्यीकरण संभव हुआ। इन नृजातीय अध्ययनों से जो बातें सामने आईं, उनके आधार पर शैक्षिक असफलता की परिघटना (फेनोमेना) की थोड़ी बहुत व्याख्या करना तथा इस परिघटना को समस्या के प्रति प्रचलित सैद्धांतिक दृष्टिकोणों से जोड़ना संभव हुआ, जैसे बच्चों पर ठप्पे या बिल्ले लगाना तथा सफलता के दायित्व-निर्धारण के सिद्धांतों से तथा अध्यापकों की सोच से जुड़े सिद्धांतों से इनको जोड़ना संभव हुआ।

हमने अपना ध्यान अध्यापकों पर तथा अध्यापन की स्थितियों और बच्चों की आवश्यकताओं के बारे में उनकी व्याख्याओं पर केंद्रित किया। उन्हें जिन विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों का परिचय प्राप्त हुआ था और जो 'समस्याग्रस्त बच्चे' संबंधी उनकी व्याख्या को एक खास रंग देते नजर आते थे, उनसे अध्यापकों के चिंतन पर जो प्रभाव पड़ सकते थे, हमें उनका भी पता चला (जैसे 'उपलब्धि के सामाजिक-आर्थिक निर्धारक' तथा 'शिक्षाशास्त्रीय परंपरावाद' के दृष्टिकोण)। हमारा सरोकार आम तौर पर इस बात से था कि अपनी अध्यापन शैली को छात्रों की अधिगम संबंधी कठिनाइयों के संभावित कारण के रूप में देखने के प्रति वे कितनी चुप्पी बरतते हैं। इस तरह हमें लगता था कि अपने छात्रों की समस्याओं के स्वरूप के बारे में अध्यापकों की व्याख्याओं को असटीक आकलन कहने का भी कुछ आधार था। हमने इन 'व्यावहारिक विचारधाराओं' को छात्रों की समस्याओं के स्रोतों तथा अपने कक्षागत अध्यापन और अन्य संबंधित अंतःक्रियाओं (मसलन अभिभावकों के साथ अंतःक्रियाओं) की गुणवत्ता के बारे में विकृत विश्वासों की उपज कहा है।

हमारे विचार में इन निष्कर्षों की शक्ति इस तथ्य में निहित है कि हर संदर्भ में कम से कम एक अध्यापिका ऐसी थी जो औरों से भिन्न थी। इसलिए कि उसे आसानी से उन वर्णनमूलक प्रवर्गों में से किसी एक में भी रखा नहीं जा सकता था जो दूसरे अध्यापकों पर सटीक बैठते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लिए हमने सेन्योरा रोजा का चयन किया, मगर ऐसी दूसरी अध्यापिकाएं भी थीं। सेन्योरा रोजा की अध्यापन-शैली देखने में दूसरी कक्षाओं जैसी ही थी हालांकि वे जिन भौतिक स्थितियों में पढ़ा रही थीं वे अन्य देशों में मौजूद स्थितियों से और बुरी थीं। वे अधिकांश अध्यापकों द्वारा प्रयुक्त पुनरोच्चार विधि और शिक्षा सामग्रियों के द्वारा ही अध्यापन करती थीं मगर, जैसा कि हमने अध्याय 6 में देखा है, उनकी कक्षाएं भिन्न भी थीं। वे अपने पाठों के दौरान बच्चों को भाग लेने तथा पाठ में प्रश्नों, टिप्पणियों और अनुभवों के योगदान के लिए सचमुच आमंत्रित करती थीं और उनके योगदान को स्वीकार भी करती थीं। बच्चों की बोध और निजी अनुभव की पृष्ठभूमि का अन्वेषण करके सेन्योरा रोजा ने पाठों की विषय वस्तु को अर्थपूर्ण बनाने का प्रयास किया था। अनेक दूसरे अध्यापकों की तरह वे दयालु और स्नेही नजर आती थीं मगर वे दृढ़ भी थीं और अध्यापन संबंधी अंतःक्रियाओं को एक दिशा में ले जाती थीं। जैसा कि उन्होंने हमें बताया और जैसा कि हमने देखा भी, सेन्योरा रोजा इस बात में विश्वास नहीं रखती थीं कि बच्चों को 'सुसाध्य'

और 'असाध्य' छात्रों में बांटा जा सकता है। कम से कम साक्षरता की बुनियादी कुशलता को सीखने के लिए सभी छात्रों को उनकी सहायता चाहिए थी हालांकि कुछ छात्र दूसरों से धीमी गति से सीखते थे। जैसा कि उन्होंने बताया, पुरस्कार पानेवाले छात्रों के लिए उनके मन में कुछ ज्यादा स्नेह नहीं था क्योंकि आम तौर पर उन्हें बुद्धि और स्मरणशक्ति की दृष्टि से बेहतर शुरुआत का लाभ मिला होता था। इसी तरह वे पुरस्कार न पानेवाले बच्चों को लाजमी तौर पर कम बुद्धिमान नहीं समझती थीं, हो सकता है कि बच्चा रट्टे की पद्धति से लाभ न उठा सकता हो या संभव है 'वह जिस प्रकार तमाम बातों को समझता है उसे हम न समझ पा रहे हों।' कठिनाईग्रस्त बच्चों के बारे में सेन्योरा रोजा की व्याख्या में यह चेतना शामिल थी कि निर्धनता कुछ सीमाएं पैदा करती है, मगर इन स्थितियों को वे निर्णायक नहीं मानती थीं। उनका विश्वास था कि हम बच्चों से स्नेह करके तथा उनकी अधिगम संबंधी आवश्यकताओं और व्यक्तित्व के गुणों पर विचार करके असफलता को दूर रख सकते हैं। बच्चों के प्रति उनका सम्मान उनके माता-पिता को भी प्राप्त था, माता-पिता की भूमिका में भी तथा मानव होने के नाते भी। इस बारे में उनका रुख प्रस्तुत अध्ययन के अनेक अध्यापकों के रुख से भिन्न था। सेन्योरा रोजा जिस प्रकार से पढ़ाती थीं उससे तथा छात्रों और उनके माता-पिता से उनके व्यवहार में उनके ये विश्वास साफ दिखाई दते थे। उस वर्ष न केवल उनके सभी छात्र सफल रहे बल्कि यह भी देखा गया कि अगले साल एक नई अध्यापिका के समक्ष भी उनके व्यवहार के प्रतिमान वैसे ही सकारात्मक बने रहे तथा कक्षा की गतिविधियों में वे उसी प्रकार योगदान देते रहे जिस प्रकार सेन्योरा रोजा की कक्षा में देते थे।

सेन्योरा रोजा की प्रभाविता का आकलन और दूसरे अध्यापकों से उनकी तुलना करते हुए यह मानने का कोई कारण नहीं कि किसी सुविधासंपन्न पृष्ठभूमि के कारण वे अलग थीं। बोलीविया के दूसरे अध्यापकों की तरह वे भी एक जैसे अभावग्रस्त और एक जैसे नियम कायदों वाली विद्यालय-व्यवस्था में ही काम कर रही थीं। उनका विद्यालय गरीब था और बच्चे भी। जो ज्यादातर अयमारा मूल के थे, गरीब थे फिर भी उन्होंने अपने अध्यापकीय अनुभव के आरंभिक वर्षों को सुखद और उपयोगी बताया। वे यह भी जानती थीं कि ऐसे प्रधानाध्यापक के अंतर्गत वे काम कर रही थीं जो अपने काम से असाधारण सीमा तक प्रतिबद्ध था तथा विद्यालय, बच्चों और अध्यापकों का खयाल रखता था; इस मामले में वे शायद दूसरो से ज्यादा खुशनसीब थीं। कुछ और कारक भी थे जिन्हें भिन्न समझा जा सकता था तथा जिनका संबंध संभवतः उनके अध्यापन की गुणवत्ता से था। वे अपने छात्रों के अभिभावकों में ही दिलचस्पी नहीं लेती थीं बल्कि विद्यालय के अन्य अध्यापकों की तरह स्वेच्छा से समय देकर अभिभावकों को साक्षरता की कुशलता सिखाती थीं और उनमें विद्यालय की संस्कृति और आवश्यकताओं की समझ पैदा करती थीं। जहां तक उनका खुद का सवाल था, साफ तौर पर वे अपने ज्ञान के भंडार को बढ़ाने तथा सेवाकालीन पाठ्यक्रमों में नाम लिखाने में विश्वास करती थीं। अध्ययनाधीन दूसरे देशों के अनेक अध्यापक भी पाठ्यक्रमों में नाम लिखाने या विश्वविद्यालय की उपाधियां पाने के लिए भारी कुरबानियां कर रहे थे लेकिन अधिकांश दृष्टांतों में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि इन सबका मकसद अपनी तरक्की की संभावनाएं बढ़ाना है।

सेन्योरा रोजा का दृष्टांत हमें अपने निष्कर्ष की रूपरेखा तथा नीतिनिर्माताओं, अध्यापकों तथा निर्धनताग्रस्त परिवेशों में अध्यापन-कर्म के लिए संभावित सिफारिशें प्रस्तुत करने में सहायता देता है :

- स्वेच्छा से बेपनाह शक्ति और कक्षा की घटनाओं पर नियंत्रण पाने की स्थिति में होने के कारण इस अध्ययन के अध्यापक उसके परिणामों (अर्थात अपने छात्रों की सफलता या असफलता) के लिए काफी कुछ जिम्मेदार भी थे।
- फिर भी ऐसी जिम्मेदारी के प्रति अध्यापकों की समझ आम तौर पर कमजोर थी। जिन बच्चों को वे पढ़ाते थे, उन पर अभाव के (सामाजिक या मनोवैज्ञानिक) प्रभावों के बारे में उनके विचार पूर्वनिर्धारित थे और इसी अभाव को वे मुख्यतः असफलता के लिए दोषी मानते थे। असफलता के लिए दायित्व-निर्धारण करते हुए वे उसमें निरक्षर या असहयोगी अभिभावक को भी शामिल करते थे।
- अध्यापन के अनेक संदर्भों की नीरसता तथा अध्यापकों के साथ किए जानेवाले 'आधिकारिक' अवमाननाकारी सुलूक ने बहुतों को इन स्थितियों की काट के प्रयास के प्रति हताश बना रखा था। इस तरह वे अपने अध्यापन की गुणवत्ता की उपेक्षा को उचित समझने लगे थे।
- अवलोकित अध्यापन की सामान्य विशेषताओं के फलस्वरूप हम कह सकते हैं कि इन संदर्भों में अधिकांश नवागंतुकों को अध्यापन की जो शैली सिखाई जाती थीं वे, नर्म लहजे में कहें, तो, निराशाजनक थीं। इस तरह विद्यालयों में 'नए खून' के कारण परिवर्तन उत्पन्न होने की संभावनाएं वास्तव में धूमिल थीं।

कुल मिलाकर हमें लगता है कि शैक्षिक असफलता की समस्या मात्र छात्रों की गतिविधियों का परिणाम नहीं है हालांकि इस व्याख्या को भी नकारा नहीं जा सकता (वैसे छात्र भी ऐसा ही समझते थे)। लेकिन प्रेक्षित दृष्टांतों में असफलता के लिए अध्यापकों और शिक्षा की स्थितियों को भी जिम्मेदार ठहराया जा सकता था। असफलता एक ऐसी धारणा थी, हमारे सूचनादाताओं के लिए जिसके अनेक अर्थ थे। इसका अर्थ एक ओर सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक बुनियादी कुशलताएं न सीखना तो दूसरी ओर उन्हें यांत्रिक ढंग से सीखना था। असफलता ऐसी धारणा है जिसका अर्थ बच्चों के लिए दुख की, नाकारा होने की तथा जीवन के प्रति उत्साह से वंचित होने की अनुभूति थी। बोलीविया में उनके माता-पिता के लिए इसका अर्थ यह था कि उस संस्कृति में प्रवेश करने का प्रयास व्यर्थ है जिसे वे कभी अपना महसूस नहीं कर सकेंगे। हमें लगता है कि शैक्षिक असफलता अंशतः परिस्थितियों की देन है, मगर ज्यादातर यह विद्यालयों की गतिविधियों से उपजती है। शायद यही कारण

है कि एक एंदियन दंतकथा में ऐसे विद्यालयों की बात कही गई है जो इंका बच्चों को डराते हैं (रेस्कानियरे 1973 देखें)।

तो जिस तरह के विद्यालयों का वर्णन किया गया है उनमें और कक्षाओं में असफलता के बारे में हम क्या कर सकते हैं? हमारी सिफारिशें ज्यादातर अध्यापकों पर तथा उनके संबंध में नीतिनिर्माताओं के लिए विचारणीय विषयों पर केंद्रित हैं। इनमें पूरे लातीनी अमरीकी क्षेत्र के अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए सामाग्री जुटा सकने में भावी अनुसंधान की भूमिका का ध्यान भी रखा गया है :

- हमें (निर्धनताग्रस्त परिवेश के निम्न शैक्षिक स्तर के) इन अध्यापकों के बारे में 'बहुसंख्यक' और 'सेन्योरा रोजा' की तरह के अध्यापकों के बारे में, उनकी चिंतनशैली, व्यावहारिक दर्शन और विचारधाराओं (संदर्भानुसार) तथा उनके निर्माण के तरीकों के बारे में और अधिक जानकारी पानी होगी।
- यह आवश्यक है कि हम 'सेन्योरा रोजा' जैसे अध्यापकों से उनकी सामग्री के नमूने, उनकी अंतःक्रियाओं के उद्धरण, तथा उनकी तकनीकों की जानकारी जमा करें ताकि अध्यापक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की पाठ्यपुस्तकों के लिए दृष्टांत मिल सकें।
- अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थाओं में क्या होता है तथा उनके व्याख्यान कक्षों और गलियारों की कैसी व्याख्याएं सिखाई जाती हैं, हमें इसका अन्वेषण करना होगा।
- हमें ऐसी सेवाकालीन कार्यशालाओं का आयोजन करना होगा जहां पाठ्यचर्या सामग्री और अध्यापन शैली की छानबीन हो। इसके लिए इन शैलियों के दृष्टांत देनेवाली तथा अध्यापकों को अपने कार्य पर मनन करने की प्रेरणा देनेवाली सामग्री का उपयोग आवश्यक है। अध्यापन की परस्पर विपरीत शैलियों तथा यथार्थ दृष्टांतों में इन शैलियों के प्रभाव संबंधी ज्ञान को भी अध्यापकों के सामने रखना होगा।
- कार्यशालाओं में हमें अध्यापकों को अपने अर्थों और अपनी 'व्यावहारिक विचारधाराओं की छानबीन करने के अवसर देने होंगे तथा इन्हें अपने कर्म की छानबीन से और समाज तथा शिक्षाव्यवस्था में मौजूद बाध्यताओं के बारे में अपनी समझ से जोड़ने के अवसर भी प्रदान करने होंगे।
- हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि अध्यापन में सुधार के लिए जो कुछ उपलब्ध है, उसकी विश्वसनीय और व्यावहारिक सूचना अध्यापकों को सुलभ हो; कुछ नए नुस्खों के रूप में नहीं बल्कि क्या पढ़ाना और कैसे पढ़ाना है, इसकी वैकल्पिक प्रस्थापनाओं के रूप में। यह इसलिए आवश्यक है कि समाज के अधिक सुविधासंपन्न वर्गों को जो कौशल और ज्ञान सुलभ हैं, उनसे हम इन बच्चों को भी दक्षता की सीमा तक लैस कर सकें।

कोई यह बात कह सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन ऐसी कोई सूचना नहीं देता जो तीसरी दुनिया के निम्न आर्थिक-सामाजिक वर्गों के बीच जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में पहले

से मौजूद रूढ़ विचारों का भाग न हो। मगर हम यह अवश्य कहेंगे कि यह अध्ययन उससे अधिक भी कुछ है। हमें प्रभावित बच्चों के नाम पता चले तथा हम अध्यापकों और उनके ऐसे शैक्षिक दर्शन के आमने-सामने आए जिनका इन दर्शनों की छानबीन के प्रयास करनेवाली सामान्य प्रश्नावलियों या अभिवृत्ति-मापकों में शायद ही कभी इस प्रकार से वर्णन हुआ हो। हमने यह पता लगाया कि संबंधों के विशेष जाल आपस में किस तरह गुंथे होते हैं; अभिभावक अध्यापकों से, अध्यापक छात्रों से तथा छात्र एक-दूसरे से किस प्रकार की अंतःक्रियाएं करते हैं। कुछ दृष्टांतों में हमने यह भी जाना कि सड़क पर खोमचा लगाने वाले विद्यालय के बारे में क्या विचार रखते हैं तथा अध्यापकों के उत्साह पर अधिकारियों के सनकी तकाजे क्या प्रभाव डालते हैं। तीसरी और पहली, दोनों दुनियाओं में जो अध्यापक विवेचित संदर्भों से मिलते-जुलते संदर्भों में कार्यरत हैं, हम चाहेंगे कि वे इस विवरण को पढ़ें (जो कुछ हम सामने लाए हैं उसके प्रति क्रुद्ध होकर नहीं बल्कि निलंबित निर्णय रवैये के साथ)। हम चाहेंगे कि वे अपने रोजमर्रा के अनुभवों की दुनिया की छानबीन करें जिस पर हो सकता है उन्होंने अभी तक मनन न किया हो और वे यह काम बाहर के सीमाएं लादनेवाले सामाजिक-राजनीतिक ढांचे की रोशनी में करें। हम चाहेंगे कि वे यह तय करें कि गरीब बच्चों के शैक्षिक परिणामों के प्रति उनके दायित्व की सीमाएं वास्तव में कहां स्थित हैं। संभव है वे इन सीमाओं को थोड़ा सा और फैला पाएं जिससे उन बच्चों को भी उस दुनिया में एक अवसर मिले जिसका निर्माण ज्यादातर उनके खिलाफ हो रहा है।

संदर्भ

रेस्कानियरे, ए. ओ. (1973) : अल मीतो दे ला एस्क्यूला, ओसियो, जे. एम. (सं.) : *आइदियोलाजिया मेसाइनिका देल मुंदो एंदीना,* लीमा. (पेरू) : इग्नासियों प्रेदो पास्तर का संस्करण.

परिशिष्ट एक

नृजातिशास्त्रीय शोध

एससेली दे तेजानो

नृजातिशास्त्रीय शोध का नाजुक चरण तब आता है जब यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रकार्य के दौरान जमा की गई ढेरों सूचनाओं में से एक अर्थ निकालना आवश्यक है। लेकिन उससे पहले, जब विस्तारित और बोधगम्य तरीके से आरंभिक अस्त-व्यस्त ब्योरे लिखे जाते हैं तब भी यह एहसास पैदा होता है कि किसी न किसी प्रकार की विवेचना की आवश्यकता है तथा विवेचक शोधकर्ताओं की भूमिका पर हमको खरा उतरना होगा।

प्रस्तुत परिशिष्ट का संबंध इससे है कि कोलंबियाई शोधदल ने किस प्रकार यह समझा कि नृजातीय शोध करने का अर्थ क्या है और स्वयं विवेचना की प्रक्रिया का स्वरूप क्या है। नृजातीय शोध में जो कुछ आवश्यक था, उसकी जागरूकता पाने के लिए हमें दर्शनशास्त्र का सहारा लेना और खासकर ज्ञान और उसकी प्राप्ति की विधियों से संबंधित मुद्दों पर विचार करना आवश्यक लगा। प्रस्तुत अध्ययन और क्षेत्र में अपने अनुभवों की रोशनी में पहले हमने ज्ञान के प्रति प्रेक्षक-शोधकर्ता की मान्यताओं की चर्चा की और इस पर भी कि ये विवेचना को किस-किस प्रकार से प्रभावित कर सकती हैं। हमने प्रेक्षण-प्रक्रिया के स्वरूप पर तथा विवेचना के चरण में दूसरों तक पहुंचाए जानेवाले ज्ञान को निपटाने के तरीकों पर विचार किया। अंत में हमने तय किया कि हमारा उद्देश्य उन स्थितियों की पुनर्रचना करना है जिनका हम अध्ययन कर रहे हैं, अर्थात कोलंबिया के चार प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापन की प्रक्रिया की पुनर्रचना करना।

प्रेक्षण

जब हमने अपना शोधकार्य आरंभ किया तभी से हमने विद्यालय के संबंधों तथा विद्यालय और समुदाय के संबंधों पर ध्यान केंद्रित करते हुए इस बारे में एक आरंभिक, थोड़ी-बहुत अस्पष्ट धारणा बना ली थी कि हमारे प्रेक्षण का विषय क्या होगा। हमने एक व्यापक परिप्रेक्ष्य

में तथा अनावश्यक पूर्वमान्यताओं के बिना ही इन संबंधों के प्रेक्षण का निश्चय किया।

हम अनावश्यक पूर्वमान्यताओं से क्या समझते हैं, शायद इसे स्पष्ट करना भी आवश्यक हो। जाहिर है, शोध के आरंभ से ही हमें पता था कि हमारा कार्य कुछेक मान्यताओं पर आधारित होगा। फिर भी हमारा सरोकार एक ऐसे बंधे-बधाए ढांचे से बचना था जो यथार्थ की हमारी समझ को ऐसे सैद्धांतिक ढांचे में बांधे जिसमें उसी यथार्थ की एक व्याख्या पहले से मौजूद हो। हमें लगता था कि जो पूर्वमान्यताएं किसी भी शोधकार्य का अनिवार्य अंग हैं, वे इस मामले में प्रचलित सैद्धांतिक प्रतिमानों से व्युत्पन्न नहीं होनी चाहिए। इसकी बजाए ये हमारी सामाजिक प्राणी की स्थिति से, हमारी इस स्थिति की चेतना से तथा अन्वेषणाधीन परिघटनाओं के इर्द-गिर्द मौजूद ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दशाओं से व्युत्पन्न होनी चाहिए।

इसके चलते हमने अपनी अन्वेषण पद्धतियों को स्वयं शोध के विषय पर अर्थात विद्यालय तथा उससे संबद्ध समुदाय के दैनिक जीवन में मौजूद स्थितियों के प्रेक्षण पर केंद्रित किया। जो व्यापक प्रश्न इस अध्ययन के आरंभिक औचित्य के अंग थे, उन्हें हमने मात्र दिशा-निर्देशक प्रश्न माना। जो सामग्री हम जमा करना चाहते थे, समझ से पूर्व उनकी गहरी व्याख्या करने से हम बचना चाहते थे।

इस तरह हमने एक ओर प्रेक्षण-प्रक्रिया की दशाओं और उद्देश्यों पर मनन किया तथा दूसरी ओर यह तय किया कि जिन बातों का प्रेक्षण किया जाएगा उसमें क्या-क्या प्रासंगिक या अप्रासंगिक है। हमें पता था कि एक नृजातिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रागानुभविक ढंग से इसका फैसला नहीं किया जा सकता (सी आई ई ए- आई पी एन 1980; राकवेल 1980 से तुलना करें)। संक्षेप में हमारा विचार यह था कि अगर हम अपना काम किसी प्रेक्षणाधीन वस्तु की सैद्धांतिक विवेचना से आरंभ करें तो उसे समझना वास्तव में संभव नहीं होगा। इसी प्रकार हम प्रेक्षण की प्रक्रिया को पहले से महत्वपूर्ण समझी गई बातों की अतिसरल खोज नहीं बना सकें।

गुणात्मक प्रकृतिवाले शोध की दृष्टि से हम मानते थे कि प्रेक्षण-प्रक्रिया पूरी परिघटना का प्रलेखन करनेवाली प्रक्रिया है। इसलिए लगता था कि हमें हर बात का ध्यान रखना होगा; वैसे हमें पता था कि एक नजर फेंक कर समग्र का प्रत्यक्ष करना असंभव होगा। हमें यह भी पता था कि हर बात को देखने के मकसद से काम शुरू करनेवाला शोधकर्ता यह पाता या पाती है कि वस्तु से उसका आरंभिक संबंध 'अमूर्त' होगा—ऐसा संबंध जो मामूली और सतही होता है। ऐसा इसलिए है कि शोध की वस्तु से पहला साक्षात्कार सामान्य बुद्धि से विशेषित होता है तथा उसमें उसके बाहरी गुण ही शामिल होते हैं।[1]

फिर भी चयन के अविश्लेषित मानदंडों से मार्गदर्शित होने से बचने के लिए हमने तय किया कि अपने सरोकार के दायरे में अधिक से अधिक बातों का प्रेक्षण करना होगा :

> प्रेक्षण की सामान्य प्रक्रिया चयनमूलक होती है; व्यक्ति हमेशा अचेत रूप से यथार्थ के बारे में सामाजिक या सैद्धांतिक, कुछ पिछले प्रवर्गों के आधार पर कुछ बातों का

चयन करता है। विद्यालयों पर विचार करने के लिए व्यक्ति किस बात की खोज करता है। विद्यालय क्या है ? सामान्य प्रवृत्ति यह है कि जो कुछ अप्रासंगिक है उसे त्याग दिया जाए। यही कारण है कि हर बात का प्रेक्षण असंभव होते हुए भी महत्वपूर्ण होता है। नृजातीय प्रेक्षण किसी ऐसे चरण (मोमेंट) से आरंभ नहीं होता जिसमें हर वस्तु व्यक्ति को ऐसे 'दिखाई' नहीं देती कि उसके कुछ तत्व प्रेक्षण के लिए चुन लिए जाए और निरूपित किए जाएं मगर ठीक उलटे ढंग से। आरंभ में अचेत चयन-प्रक्रिया के कारण बहुत कम बातों का प्रेक्षण हो पाता है और इसलिए स्वयं को कुछ और के प्रेक्षण के लिए प्रशिक्षित करना आवश्यक होता है। इसके लिए उन ब्यौरों को महत्व देना आवश्यक है जो अभी भी किसी विवेचन-योजना के अंग नहीं लगते हैं और उन संकेतों को ग्रहण करना पड़ता है जो संदर्भ के अंदर नजर आते हैं तथा नए अर्थपूर्ण तत्वों और संबंधों की ओर इशारा करते हैं (राकवेल 1980)।

जैसा कि इस उद्धरण से स्पष्ट है, प्रवर्ग विवेचना के आरंभबिंदु होते हैं मगर उनका निर्माण प्रेक्षण-प्रक्रिया में पहले से मौजूद एक तथ्य होता है। दूसरे शब्दों में, प्रेक्षण में प्रेक्षक प्रेक्षित वस्तु से ऐसा कोई तत्व चुन लेता है जो उस वस्तु की बाहरी सतह पर उसे दीखती है और परिभाषा की वस्तु बन जाती है। चयन की यह प्रक्रिया किसी भी प्रकार से किसी सिद्धांत या प्रतिमान की ओर संकेत नहीं करती बल्कि यथार्थ से शोधकर्ता के संबंधों के स्वरूप और कोटि की ओर इशारे करती है। नृजातीय प्रेक्षण तथा अमूर्त से मूर्त की ओर बढ़ने की इस पूरी प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति पूर्वनिरूपित मानदंडों के बिना अतःवस्तुओं के चयन में रत रहता है और इस प्रकार प्रेक्षक के दृष्टिकोण के महत्व की ओर संकेत करता है। इसलिए इस बारे में हमने तय किया कि शोधकर्ता शोध के उद्देश्यों की पूर्ति में तभी ज्यादा समर्थ होंगे जब वे अपनी चयन-प्रक्रियाओं के बारे में सचेत हों। इससे पहले वे उन बातों का प्रेक्षण कर सकेंगे जो तात्कालिक और सतही हों और फिर अन्वेषण की अधिक सारगर्भित और ठोस वस्तुओं की ओर बढ़ सकेंगे।

शोध की वस्तु तथा उसके ठोस गुण को समझने के विभिन्न चरण उसके सारतत्व को समझने के चरण होते हैं। फिर उस वस्तु के ब्यौरों की चेतना वस्तु के मूलभूत गुणों की चेतना पैदा करती है। ब्यौरों को अकसर वस्तु की यादृच्छिक दशाएं समझा जाता है और उसे पूर्णत्व में समझने से जुड़े हुए नहीं माना जाता। फिर भी किसी वस्तु को जानना पर्याप्त नहीं होता; उसकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है अर्थात अनेक कोणों से देखना-समझना पड़ता है। इस मकसद से, भले ही ब्यौरों को असंबद्ध और उलझन का कारण माना जाए, वे अहम होते हैं। विवेचन-प्रक्रिया के आंतरिक अंतर्विरोधों पर रोशनी डालने के क्रम में ये विशेष महत्वपूर्ण तत्व हमें वस्तु के सारतत्व तथा उसके यथार्थ कार्यकलाप की समझ की ओर ले जाते हैं।

क्षेत्रकार्य का विश्लेषण

क्षेत्रकार्य पूरा होने के बाद विवेचना की औपचारिक आवश्यकता और बलवती हो उठी। इसमें यथार्थ को उस रूप में समझना भी शामिल था जिस रूप में प्रेक्षित स्थिति के अंदर तथा शोधकर्ता की स्थिति और अपने काम के उद्देश्य को भूले बिना भी हमने उसका अनुभव किया। हमारे कुछ ऐसे सामान्य उद्देश्य अवश्य थे जो प्रारंभिक शोध-प्रश्नों में समाहित थे लेकिन अध्ययनाधीन वस्तु की गहनतर समझ की ओर बढ़ने के क्रम में हमें उनको नए सिरे से निरूपित करना पड़ा।

क्षेत्र-सामग्री के विश्लेषण के दो चरण होते हैं : वर्णन और विवेचन।

वर्णन

गीर्ज (1973) ने नृजातिशास्त्र को यथार्थ के अंदर मौजूद विभिन्न स्थितियों के गहन वर्णन ('मोटा माल') की संभावना कहा है। उनका विचार 'वर्णन' के शब्दकोशवाले अर्थ से मिलता-जुलता है : 'विशेषताओं का उल्लेख करके शब्दों में प्रस्तुत करने का कार्य' या 'शब्द प्रतिनिधान या चित्रण।' इन परिभाषाओं का प्रयोग करते हुए हमने पाया कि वर्णन की 'भाषा' का प्रश्न महत्वपूर्ण होगा।

भाषा का प्रश्न हल करने के लिए हमें यह सोचना पड़ा कि किसी नृजातीय अन्वेषण के 'परिणामों' को 'वैज्ञानिक समुदाय' के आगे ही नहीं बल्कि अन्वेषित सामाजिक घटनाओं के भागीदारों के सामने भी प्रस्तुत करना चाहिए। इस तरह हमें महसूस हुआ कि नृजातिशास्त्री एक प्रकार से ऐसा अनुवादक होता है जो दोनों दिशाओं में कार्य करता है : वह सामाजिक घटनाओं के भागीदारों की भाषा का अनुवाद वैज्ञानिक समुदाय की भाषाई संहिता में करता है और साथ ही अपना वर्णन मूल भागीदारों के विचारार्थ भी प्रस्तुत करता है।

वर्णन के विश्लेषण का संबंध सिर्फ भाषाई संरचना से नहीं बल्कि पाठक तक यथार्थ को पूरी तरह या अंशतः पहुंचाने के संकल्प से भी है। वर्णन प्रक्रिया के इस अनुवाद वाले कार्य को समझने के लिए हमें 'क्या समझना है' में एक अंतर करना होगा।[2] किसी साहित्यिक कृति का अनुवाद करते हुए अनुवादक उसे नए सिरे से लिखता है। इसी तरह नृजातिशास्त्री जब यथार्थ के अवलोकित अंश का वर्णन करता या करती है तो उसे भी वह लिखता या लिखती है। लेकिन अनुवादक और नृजातिशास्त्री की पुनर्लेखन की विधियां अलग-अलग होती हैं। अनुवादक अनुवाद की जानेवाली रचना में पहले से एक व्यवस्था स्थापित पाता है जबकि नृजातिशास्त्री का सरोकार अपेक्षाकृत अव्यवस्थित यथार्थ से होता है जिसमें वह एक अर्थ का समावेश करता या करती है। फिर भी अनुवादक और नृजातिशास्त्री, दोनों को 'क्या समझना है' और 'कैसे समझना है' के बीच लगातार एक से दूसरे छोर तक भटकना पड़ता है। संभव है कि विभिन्न भाषाओं के कुछ शब्दों के समान अर्थ हों, फिर भी उनके

बोध के ढंग अलग-अलग हो सकते हैं। निश्चित ही इसका संबंध इस बात से होता है कि सांस्कृतिक संरचनाएं किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न हैं या किस प्रकार अपने ऐतिहासिक विकास पर निर्भर होती हैं। यही वह स्थान है जहां अनुवादक और नृजातिशास्त्री की भूमिकाएं आपस में मिल जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि दोनों को नई भाषा में मूल भाषा की ध्वनियां लानी पड़ती हैं।

बेंजामिन ने अनुवाद की तुलना साहित्य-सृजन से की है। उनकी अनुवाद की धारणा यह है कि अनुवाद-कार्य में व्यक्ति उसकी गहराई को नहीं बदलता, जिसे मुहावरों का जंगल कहा जा सकता है, इसकी बजाए वह उसे बाहर से या बेहतर कहें तो सामने से देखता है। ऐसा करते हुए अनुवादक इस जंगल में प्रवेश किए बिना ही नई भाषा में एक विदेशी भाषा में लिखी गई रचना की ध्वनियों का समावेश करता है।

जब हम नृजातिशास्त्रियों के रूप में प्रेक्षित यथार्थ के वर्णन का प्रयास करते हैं तो खुद को थोड़े-बहुत अव्यवस्थित ढेरो तथ्यों से दो-चार पाते हैं जिनका वर्णन हम असंबद्ध तथ्यात्मक कथनों का शिकार हुए बिना गहराई से नहीं कर सकते। इस कारण हमें यथार्थ को 'बाहर से' और 'सामने से' देखना होगा। दूसरे शब्दों में, हमें मूल की 'प्रतिध्वनि' निकालने के लिए खुद को कुछ दूरी पर रखना होगा। इस प्रकार हमने इस अध्ययन में नृजातिशास्त्रियों के रूप में अपने काम का आरंभ प्रेषित समग्र यथार्थ या उसके एक अंश के कुछ प्रातिनिधिक तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए किया। हमारा उद्देश्य उन शैक्षिक प्रक्रियाओं का सुंदर वर्णन प्रस्तुत करना था लेकिन उनके मूल लक्षणों का संकेत किए बगैर।

इस वर्णन के क्रम में हमने कक्षा के बारे में मूल भागीदारों द्वारा तत्वों में स्थापित व्यवस्था या उनके सोपानिक निर्णयों का पूरा सम्मान किया। हमारा तात्पर्य अध्यापकों और छात्रों से है। तत्वों की इस व्यवस्था या सोपानिक स्थान-निर्धारक को ये भागीदार हमेशा मुखर रूप से व्यक्त नहीं करते, मगर हम उनकी क्रियाओं के एक आवर्ती घटक के रूप में इनका पता लगाने में कामयाब रहे (अध्याय 5 देखें)। इस खोज के बगैर हम प्रेक्षित तथ्यों के मात्र संगठन से आगे बढ़कर कुछ प्रागानुभविक प्रवर्गों की रचना आसानी से नहीं कर पाते। दूसरे शब्दों में, हमारे लिए आवश्यक था कि अपने इन सिद्धांतों से तथा कक्षा के मूर्त गुण से भी परे हटकर भागीदारों की उसे देखने-परखने की उन विधियों का अमूर्तीकरण करें जो उनकी क्रियाओं से जाहिर होती हैं। इस प्रकार हमने कक्षा के यथार्थ को 'देखना' और 'पढ़ना' शुरू किया।

संभव है एक अध्यापक अनेक पुनरावृत्तिक चरणों में कुछ पढ़ाए और संभव है इन चरणों का संबंध शिक्षाशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में मौजूद इन बातों से हो कि व्याख्यान कैसे देने चाहिए। मगर जैसा हमने किया, वैसे इन बातों का पता लगाना अध्यापक के सारतत्व के बारे में कुछ खास जानकारी नहीं देता। मूल अध्यापन-प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझने का एकमात्र उपाय उसे अध्यापक के प्रशिक्षण में प्रतिबिंबित होते देखना है।

इस दृष्टांत में मूल अध्यापन-प्रक्रिया उन सभी घटनाओं से मिलकर बनती थी जो कक्षा में अर्थात एक अध्यापक/अध्यापिका और कुछ छात्र/छात्राओं के बीच घटित होती थीं। ये घटक शिक्षा-प्रक्रिया के अहम अंगों के रूप में सामने आए। हमने कक्षा को एक अनुवादेय रचना के रूप में पढ़ने के लिए इन घटकों को एकजुट किया। जिस रचना का हम पुनर्लेखन कर रहे थे उसे यह सरंचना देकर हमने यह भी देखा कि नृजातिशास्त्रियों के रूप में किस प्रकार हम मात्र अनुवादकों से भिन्न थे। अनुवादक जिस साहित्यिक रचना पर अपना काम करता है उसके अंदर अपनी स्वयं की एकता होती है, वहीं हम जिस यथार्थ का वर्णन नृजातिशास्त्रियों के रूप में कर रहे थे, उसकी एक सुगम्य इकाई के रूप में रचना हमें विशेष, अलग-अलग, संगठित घटनाओं से करनी पड़ी। इसका मतलब यह था कि हम भागीदारों के अपने शब्दों और कर्मों की ओर फिर पलटें तथा हमने जिन स्थितियों का प्रेक्षण किया था उसको सैद्धांतिक विवेचन का विषय बनाए बगैर उसकी सोपानिक प्रकृति को समझने का प्रयास करें।

विवेचना

अपना वर्णन-कार्य पूरा करने के बाद हमारे सामने विकल्प यह था कि या तो जो कुछ हम पा चुके हैं उसी से संतुष्ट रहें या फिर अपने क्षेत्रकार्य में हमने जिस परिघटना का अनुभव किया था उसे फिर पलटकर देखें। दूसरे विकल्प को आजमाने का मतलब था यथार्थ में एक बार फिर, अलग ढंग से प्रवेश करना। मूल वर्णन तो पहले ही विद्यालय, अध्यापकों और छात्रों के यथार्थ-जगत में प्रवेश के समान था। अब हमें इसमें फिर प्रवेश करना था, और इस बार अर्थ की मूलभूत संरचनाएं तलाश करने के लिए प्रवेश करना था। इस फैसले के द्वारा हमने व्याख्या का श्रमसाध्य कार्य आरंभ किया जो हमें यथार्थ की एक सैद्धांतिक पुनर्रचना में समर्थ बनाए।

विवेचना का मतलब है संबंधों की तलाश करना, अर्थात किसी स्थिति विशेष के परिघटनात्मक-सत्य से उसके परमार्थ-सत्य के सामने आने की संभावना पैदा करके उसकी संरचना का पता लगाना। अब हम 'लगता है' की भाषा छोड़कर 'है' की भाषा अपना रहे थे। अब यहां 'लगता है' वाली बात नहीं होगी बल्कि 'है' की बात होगी हालांकि यह भी जरूरी है कि इस 'है' को ठोस ऐतिहासिक दशाओं से निर्धारित समझा जाए। कोलंबियाई शिक्षा संस्थाओं के इस वास्तविक 'सत' को, जो हमारी विवेचना की गवेषणात्मक प्रक्रियाओं का उद्देश्य था, हम मात्र अध्यापकों, बच्चों और प्रशासकों के प्रेक्षित व्यवहार के रूप में या सरकारी दस्तावेजों में दर्ज लक्ष्यों के रूप में नहीं समझ सकते थे। नृजातिशास्त्रियों के रूप में हमने जो व्याख्यात्मक प्रयास किए उससे यह सत एक प्रदत्त सैद्धांतिक युक्तिसंगत और वास्तविक वस्तु की युक्तिसंगति के बीच वाले प्रेक्षित अंतर्विरोधों के रूप में सामने आना चाहिए।

वर्णन के चरण में हमने जो पाठ तैयार किए थे उन्हीं को अलग करने की संभावना

के साथ व्याख्या की प्रक्रिया शुरू हुई। जिस वस्तु को हमने 'मूल की प्रतिध्वनि' कहा था उसी से हम गोया कि खुद को अलग करने और फिर उसी में डूब जाने और दूरी बनाकर उस वर्णन को संशय की दृष्टि से पढ़ने की जरूरत महसूस कर रहे थे। इस संशयवाद के सहारे हमने पाठ के अंदर आवर्ती घटनाओं की और फिर उनमें ऐसे एक संबंध-सूत्र की तलाश की जो हमें कक्षा को एक अर्थ प्रदान करने और फिर उसके 'बिंब' की पुनर्रचना करने में समर्थ बनाए।[3]

हमने जो आवर्ती घटनाएं देखीं उन्हें हमने ऐसे संकेत या कूट भाषा माना जिसकी व्याख्या आवश्यक थी। इस कारण हमने समालोचनात्मक धारणाओं की सहायता से उसके तत्वों को अलग करने और निरूपित करने का प्रयास किया। लेकिन हमने अन्य सिद्धांतों से धारणाएं उधार नहीं लीं जैसाकि संभव है कि संगीत या दर्शन की पुस्तकों के संदर्भ में मार्क्सवादी या फ्रायडवादी प्रवर्गों का प्रयोग करनेवाले दर्शन के मामले में दिखाई पड़े। इसकी बजाए हमने ऐसी धारणाओं की खोज की जो पाठ से खुद उभरती नजर आएं। हमें आशा थी कि इस तरह ये धारणाएं अध्ययनाधीन वस्तु के सादृश्य मात्र न होकर उनके वास्तविक प्रगटीकरण हों। प्रस्तुत कृति में हमने उन्हें 'सार्थक क्षणों' (सिग्निफिकेंट मोमेंट्स) और उनके संकेतों को 'प्रमुख प्रसंग' (की इंसिडेंट्स) कहा है।

इन संकेतों और उनकी मध्यस्थ (मेडिएटिंग) धारणाओं को पुनर्व्यवस्थित करके हमने अध्ययनाधीन यथार्थ का एक प्रतिनिधान प्राप्त किया। हमने कोशिश एक ऐसा बिंब रचने की की जो प्रारंभ में वर्णित वस्तु से 'मोहभंग' या संशय की प्रक्रिया के द्वारा उसके सामाजिक संबंधों की मूल प्रकृति को सामने लाए। यह मोहभंग तभी संभव हुआ जब हमने अवधारणात्मक मनन के द्वारा विशेष का द्वंद्ववादी ढंग से समग्र से संबंध स्थापित किया। यह हमारे तात्कालिक अनुभव की उपज नहीं था बल्कि विवेचन के द्वारा वस्तु की एक छवि बनाने के प्रयास की देन था। इस तरह हमारी राय में विवेचन एक निश्चित (डिटरमिनेंट) अर्थ को यथार्थ से मंडित करने (उसमें एक अर्थ भरने) का नहीं बल्कि ऐतिहासिक वास्तविकता में उसके अर्थ की तलाश करने तथा सामाजिक संबंध के उन रूपों का पता लगाने का नाम था जो शोध के दौरान अध्ययनाधीन वस्तु के आभासों में छिपे हुए थे।

सैद्धांतिक संरचना

हमारा विश्वास है कि शोध का अंतिम उद्देश्य ऐसे ज्ञान की रचना है जो सिद्धांत के विकास में प्रयुक्त हो। मगर शोध का स्वरूप जब शैक्षिक हो तो व्यक्ति एक प्रकार के देकार्तीय संदेह में ग्रस्त हो जाता है : क्या कोई शैक्षिक सिद्धांत है भी? ऐसा कोई सिद्धांत अगर नहीं है तो शैक्षिक अनुसंधान का मकसद क्या ? इसके परिणामों का क्या होगा ? इस अध्याय का यह अंतिम भाग इन्हीं प्रश्नों से संबंधित है जिन्हें हमने अपने क्षेत्रकार्य के दौरान देखा।

हम आरंभ एक बहुत सरल प्रस्थापना से करते हैं कि एक सामाजिक कर्म के रूप में

शिक्षा का सचमुच एक अर्थ है। इतिहास में इसके कार्यकलापों के कारण लोगों ने इसके उद्देश्यों, इसकी अनेक प्रकार की क्रियाओं, इसकी अंतर्वस्तु तथा इसके भागीदारों के आपसी संबंधों पर बहुत अधिक मनन किया है। हमारा विश्वास है कि इस मनन का शिक्षा के बारे में एक सैद्धांतिक संरचना के निर्माण में योगदान रहा है—ज्यादातर इसलिए कि किसी भी अन्य शास्त्र की तरह यहां भी ये मनन मननकर्ताओं के अनुभव की उपज रहे हैं।

ऐतिहासिक क्रम में मानव के प्रयासों और राजनीतिक सक्रियता का फल होने के कारण शिक्षा संबंधी मनन अनेक दृष्टिकोणों से प्रेरित रहे हैं। आज इसी कारण हम शिक्षा की प्रत्यक्षवादी या मार्क्सवादी धारणाओं के आदर्शवाद की या शिक्षा संबंधी अध्ययन के मनोवैज्ञानिक, आर्थिक या समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों की बात करते हैं। इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि शैक्षिक अनुसंधान में इन सिद्धांतों के निरंतर नवीनीकरण में योगदान देने की क्षमता भी होती है।

किसी शैक्षिक विचार में एक सैद्धांतिक औचित्य निहित होता है और यही बात शैक्षिक परिवेशों में चल रहे शिक्षाकर्म के बारे में सही है। तो सवाल यह पता लगाने का होता है कि शैक्षिक सिद्धांत के औचित्य तथा शिक्षाकर्म में मौजूद औचित्य के बीच किस हद तक सुसंगति है। इस बारे में अनुसंधान की भी एक भूमिका होती है, हालांकि वह भूमिका सैद्धांतिक से व्यावहारिक या व्यावहारिक से सैद्धांतिक औचित्य का तालमेल बिठाने की नहीं होती। अनुसंधान का अंतिम उद्देश्य अंतर्विरोधों का समाधान करना नहीं, उन पर रोशनी डालना है (एदोर्नो 1975 देखें)। एक नृजातीय दृष्टिकोण से यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि यथार्थ संबंधी हमारी विवेचना प्रक्रियाओं का परिणाम परंपरागत अर्थ में परिणाम प्रस्तुत करना नहीं है, यानी ऐसे परिणाम जिन्हें हम विद्यालयों और अध्यापकों संबंधी किसी सैद्धांतिक ढांचे में भानमती के ईंट-रोड़ों की तरह जोड़ सकें। इसकी बजाए हमारा उद्देश्य विद्यालय, उसमें हो रही घटनाओं तथा एक सामाजिक समष्टि से विद्यालय के संबंध के बारे में सिद्धांत के विकास की दिशा में बढ़ना है। इसलिए जो 'यथार्थ स्थितियां' विज्ञान की आरंभ बिंदु होती हैं उन्हें हमने मात्र ऐसे तथ्य नहीं समझा जिनका सत्यापन किया जाना है और जिनका प्रायिकता के नियमों के अनुसार भविष्यकथन में उपयोग किया जाना है। प्रत्येक तथ्य मात्र प्रकृति पर नहीं बल्कि प्रकृति पर मानव के नियंत्रण पर भी निर्भर होता है। वस्तुएं, विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष, पूछे गए प्रश्न तथा उत्तरों के अर्थ, ये सभी मानव-क्रिया तथा मानव की शक्ति की सीमा को सामने लाते हैं (होर्खाइमर 1972 देखें)।

इस कारण इस प्रकार की गवेषणा में सैद्धांतिक पुनर्रचना की प्रक्रिया मात्र अन्वेषक के मनन का परिणाम नहीं बल्कि मनन से कुछ अधिक सामूहिक कार्य का परिणाम होनी चाहिए। ऐसा इसलिए है कि मनन एक जिया गया अनुभव, एक द्वंद्ववादी सामाजिक कर्म होता है जो शिक्षा-प्रक्रिया के भागीदारों की इस चेतना को बढ़ाता है कि शिक्षा जिस सामाजिक समग्रता में जन्म लेती और विकास करती है उसकी अभिव्यक्ति भी होती है। इस दृष्टि से देखें तो विद्यालय के यथार्थ के एक गुणात्मक अन्वेषण के दायरे में नृजातिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य उसकी विवेचनाओं की ही नहीं, उसके रूपांतरण की संभावनाएं भी पैदा कर सकता है।

टिप्पणियां

1. दर्शन-साहित्य में 'अमूर्त' और 'मूर्त' की धारणाओं को अनेक अर्थ दिए गए हैं। यहां हमारा सरोकार इनमें से केवल एक अर्थ से है : एकपक्षीय और बहुपक्षीय से. अमूर्त से मूर्त की ओर बढ़ने की प्रक्रिया के विश्लेषण में हम उसे अमूर्त मानते हैं जो एकपक्षीय, अपूर्ण और 'दरिद्र' हो तथा मूर्त वह है जो बहुपक्षीय, पूर्ण और 'समृद्ध' हो। अमूर्तगुण समग्रता का मात्र एक पहलू दिखाई पड़ता है, यह विविधता की एकता है. इस प्रकार ये धारणाएं वे प्रवर्ग हैं जो सार्वभौम रूप से समस्त प्रकृति, समाज और विचार-जगत को समेटते हैं. (एलेक्सजिएव 1964 से तुलना करें.).
2. 'अनुवाद' के समाजशास्त्रीय प्रकार्य की आगे आनेवाली विवेचना काफी हद तक फ्रेंकफुर्ट संप्रदाय के सामजशास्त्री वाल्टर बेंजामिन (1970) के विचारों पर आधारित है.
3. एदोर्नो (1975) का अनुकरण करते हुए हमने 'बिंब' की धारणा को उन वास्तवीकृत प्रतिनिधानों के रूप में समझा है 'जो मात्र प्रदत्त नहीं होते बल्कि मानव प्राणियों द्वारा रचित होते हैं'.

संदर्भ

एदोर्नो, टी (1975) : *दायलेक्ता निगेतीवा,* बार्सिलोना (स्पेन) : जाउरस संस्करण.

एलेक्सेजिएवु एम (1964) : *दायलेक्ता दे ला फार्मा देल पेंसामिएंतो,* ब्यूनस आयर्स, (अर्जेंतीना), प्लेतिना संस्करण.

गीर्त्ज, सी (1973) : *द इंटरप्रेटेशन आफ कल्चर,* न्यूयार्कः बेसिक बुक्त ई. बेंजामिन, डब्ल्यू (1970) : ला तारिया देल त्रादुक्तोर, बार्सिलोना, एंजिलस. नोवुस, एदितोरियल सूर में संकलित.

राकवेल, ई (1980) : *ला रिलेशियों एंतरे एतनोग्राफिया या त्योरिया दे ला इनवेस्तिगेशियों एजुकेतिवा,* मेक्सिको : सेंतरो दे इनवेस्तिगेशियों या एस्तुदियोस एवांजादोस देल ईस्तीत्यूतो पालितेकनीको नेशनल.

सी आई ई ए- आई पी एन (सेंतरो दे इनवेस्तिगेशियों या एस्तुदियोस एवां-जादोस देल ईस्तीत्यूतो पालितेकनीको नेशनल) : *एनालिसिस दे देतोस एतनोग्राफिकोस,* मेक्सिको : सी आई ई ए- आई पी एन.

होर्खाइमर, एम (1972) : *क्रिटिकल थ्योरी,* न्यूयार्क : द सीबरी प्रेस ई.

परिशिष्ट दो

अनुसंधान का ढांचा और प्रशिक्षण कार्यक्रम

अनुसंधान का ढांचा

बगोता की बैठक (मई 1981) में जब लातीनी अमरीका एक नृजातिशास्त्रीय अध्ययन करने पर विचार हो रहा था तो अनुसंधान के एक ढांचे पर भी विचार और सिद्धांत रूप में उसे अनुमोदित किया गया। बाद में प्रत्येक देशवार दल ने अपनी विशेष परिस्थितियों तथा परियोजना संबंधी दृष्टियों के आधार पर इसमें कुछ परिवर्तन किए। फिर भी कुल मिलाकर प्रमुख प्रश्न ही इसका मार्गदर्शन करते रहे कि कौन सा कार्य हर जगह करना है। यह प्रस्ताव अध्यापकों और कक्षा संबंधी एक अध्ययन के सुझाव को लागू करने की दृष्टि से लातीनी अमरीका को एक उपयुक्त क्षेत्र मानता है।

लातीनी अमरीका एक ऐसा क्षेत्र है जो भारी सामाजिक और आर्थिक असमानताओं से ग्रस्त है और ये जनता की शैक्षिक उपलब्धि में भी प्रतिबिंबित होती हैं। यहां प्राथमिक कक्षाओं में अनुत्तीर्णता के भारी प्रतिशत और शैक्षिक प्रावधानों और परिणामों में गंभीर ग्रामीण-नगरीय असंतुलन जैसी स्थायी समस्याएं मौजूद हैं। प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण होगा तथा माध्यमिक शिक्षा आर्थिक विकास के लिए आवश्यक श्रमबल पैदा करेगी—इस तरह के आशावाद से भरे एक दशक के बाद जो उपलब्धियां रहीं, वे कुछ मामलों में प्रभावशाली होते हुए भी आशा से कम थीं। गहरे बैठे हुए सामाजिक-आर्थिक तत्व इन खराब नतीजों के कारण हैं और लातीनी अमरीका में हुए अनुसंधानों के एक खासे बड़े भाग ने इन अंतर्निहित कारकों का पता लगाया है। इसलिए वास्तविक सुधार के लिए इनमें से अधिकांश देशों की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में मूलगामी ढांचागत परिवर्तन आवश्यक है। दुर्भाग्य से पिछले दशक का अनुभव दिखाता है कि अनेक स्थानों पर उल्लेखनीय परिवर्तन आएगा भी तो बहुत धीरे-धीरे आएगा और इस बीच विद्यालय जैसी संस्थाएं मौजूदा असमानताओं को और पुख्ता बनाएंगी। इस तरह हम या तो ऐसे दुष्चक्र में फंस जाएं जो स्थितियों को यथावत रखता है या फिर ऐसी जगह पर इस दुष्चक्र को तोड़ने का प्रयास करें जहां परिवर्तन संभव लगे। शिक्षा ऐसा क्षेत्र है जिसमें उपलब्धियों के न्यूनतम स्तर तथा उन्हें पाने के लिए समान अवसरों जैसे विचारों पर अभी भी जबानी जमा-खर्च किया जाता है। अगर हम यह समझते हैं कि विद्यालयों के परिणाम सामाजिक-आर्थिक और विद्यालय संबंधी, दोनों प्रकार

के कारकों से प्रभावित होते हैं तो यह कहना संभव है कि शिक्षा-प्रक्रिया के ऐसे परिवर्तन जो सामाजिक निर्धारकों को भी ध्यान में रखें, निर्धनता के नकारात्मक प्रभावों को कम करनेवाले परिणाम पैदा कर सकते हैं और शिक्षा के इन न्यूनतम स्तरों की उपलब्धि में वृद्धि कर सकते हैं। इस तरह यह पता लगाना महत्वपूर्ण है कि ऐसे परिवर्तन कौन-कौन से हो सकते हैं।

शिक्षा की प्रक्रिया में एक अणुविश्व (माइक्रोकाज्म) के रूप में ऐसी अध्यापक-छात्र अंतःक्रियाओं पर हम ध्यान केंद्रित कर सकते हैं जो तरह-तरह के विद्यालयगत और सामाजिक प्रभावों को प्रतिबिंबित करें। हम विभिन्न परिवेशों को तथा कक्षा में होनेवाली घटनाओं को देख सकते हैं। अध्यापकगण अपने शब्दों, कार्यों और संकेतों के द्वारा किस प्रकार छात्रों के परिणाम को प्रभावित करते हैं तथा किस प्रकार छात्रों की विशेषताओं पर प्रतिक्रिया करते हैं ? पिछले पंद्रह-एक वर्षों में लातीनी अमरीका में अध्यापकों की योग्ताओं का स्तर ऊपर उठा है। अनेक देशों ने आधुनिक पाठ्यचर्याओं, अध्यापन में सहायक सामग्रियों, सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समावेश किया है तथा ऐसे अन्य प्रशासनिक परिवर्तन किए हैं जिनको अध्यापकों की कारगुजारी को प्रभावित करनेवाला कहा जा सकता है। अगर ऐसा है तो ये परिवर्तन कक्षा में किस प्रकार व्यक्त होते हैं? विद्यालयों की घटनाओं का दीर्घकालीन गहन प्रेक्षण करनेवाले अध्ययन थोड़े ही हुए हैं। बहुत से महत्वपूर्ण प्रश्न अभी भी अनुत्तरित हैं। कक्षा की कौन सी घटनाएं पहली कक्षा में अनुत्तीर्णता की भारी दर को प्रभावित करती हैं ? अनेक नीतिगत दस्तावेजों में 'सामुदायिक विकास के अभिकर्ता' कहे जाने के बावजूद क्या अध्यापक कक्षा में पढ़ाने से भी अधिक कुछ करते हैं? ऐसा क्यों है कि धीमी गति से सीखनेवाले, अनुत्तीर्ण होनेवाले और शिक्षात्याग करनेवाले छात्रों को प्रायः अध्यापकों के विरोध का सामान करना पड़ता है ?

लातीनी अमरीका की निर्धन ग्रामीण और नगरीय बस्तियों में जो कुछ होता है अगर उसकी छानबीन हम करें तो अध्यापकों या विद्यालयों से संबंधित ऐसे अनेक कारक गिनवा सकते हैं जो समाज-व्यवस्था की कगार पर जन्मे बच्चों की सफलता की संभावनाओं को या तो बढ़ाते या घटाते हैं। संदर्भ-विशिष्ट होते हुए भी ऐसा अध्ययन अन्यत्र ऐसी ही स्थितियों में हो रही घटनाओं की परिकल्पित व्याख्याओं में सहायक हो सकता है।

इस प्रकार लातीनी अमरीका की शिक्षा प्रणालियों के लिए राज्य द्वारा घोषित उद्देश्यों तथा वहां की बस्तियों की सांस्कृतिक आवश्यकताओं के रोशनी में वहां के विद्यालयों में अध्यापन की स्थिति की छानीबीन करना और यह देखना उपयोगी होगा कि अध्यापक कैसी भूमिकाएं निभाता/निभाती है और उसकी कारगुजारी, बच्चों से उसकी अंतःक्रिया और उसके वातावरण की कौन सी दशाएं बेहतर या बदतर नतीजे पैदा करती हैं। हमारा लक्ष्य समूह निर्धन जनता होगी जो शिक्षा की सुविधाओं से आज सबसे कम लाभान्वित हो रही है।

अनुसंधान का प्रस्ताव

इन सोचों के आधार पर हमारा प्रस्ताव है कि लातीनी अमरीका के प्राथमिक विद्यालयों की आरंभिक कक्षाओं में छात्रों के अधिगम पर अध्यापकों के प्रभाव के बारे में एक व्यापक अनुसंधान-योजना चलाई जाए। इस अध्ययन के अनेक चरण होंगे और प्रत्येक चरण अपने-आप में पूर्ण मगर पिछले चरण पर निर्भर होगा। इस योजना का उद्देश्य ऐसी नीतिगत सिफारिशें प्रस्तुत करना होगा जो प्रणाली में अध्यापक-प्रशिक्षण की और प्रशासनिक व्यवस्थाओं से संबंधित फैसलों को प्रभावित कर सकें। हमने निम्न चरणों का विचार किया है।

- एक खोजी अध्ययन जिसका उद्देश्य अध्यापन की प्रक्रिया तथा छात्रों के अधिगम पर एक अध्यापक के प्रभाव को प्रभावित करनेवाले कारकों की छानबीन करे (पुस्तक में केवल एक की चर्चा की गई है)।
- एक ऐसे अनुसंधान का प्रारूप जो पहले अध्ययन के निष्कर्षों का परीक्षण करने के लिए अनेक लातीनी अमरीकी देशों में चलाई जाए।
- पहले दो चरणों के परिणामों से संबंधित परिवर्तन लाने के लिए अध्यापक प्रशिक्षण संबंधी प्रयोगों की रूपरेखा।

प्रस्तुत अनुसंधान-योजना शिक्षा को सामाजिक-आर्थिक संदर्भ का अंग और उसकी विशेषताओं पर निर्भर समझती है तथा यह मानती है कि विद्यालयों की घटनाओं तथा बच्चों पर शिक्षा-प्रक्रिया के प्रभावों को समझने के लिए अंतःक्रिया के चित्र 2 में दर्शाए गए प्रतिमान पर विचार किया जाना चाहिए।

इस प्रकार यह जांचने के लिए कि बच्चे पढ़ते या लिखते क्यों नहीं, हमें अध्यापक के व्यवहार पर ही नहीं, इस पर भी ध्यान देना होगा कि यह व्यवहार किस प्रकार शिक्षा-व्यवस्था, समाज व्यवस्था, अभिभावकों के जीवन-मूल्यों और आशाओं, विद्यालय की दशाओं और बच्चों की विशेषताओं से प्रभावित होता है। इन संबंधों का तथा खासकर सामाजिक-आर्थिक कारकों और अधिगम के संबंध का सर्वेक्षण करनेवाले अनेक अनुसंधान सामने आए हैं। मगर शिक्षा-प्रक्रिया तथा विद्यालयों और समुदायों में उसके ठोस क्रिया-कलापों का विचार करनेवाले अनुसंधान कुछ ज्यादा नहीं हैं।

अध्ययन का पहला चरण

इस चरण में अध्ययन का उद्देश्य लातीनी अमरीका के कुछेक प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापन की स्थिति की छानबीन करके यह पता लगाना है कि शिक्षा-व्यवस्था की अपेक्षाओं की कसौटी पर छात्रों के असफल या सफल होने में अध्यापक कैसे और क्यों योगदान करते हैं।

और विशिष्ट शब्दों में कहें तो इस अनुसंधान का उद्देश्य निम्न विषयों पर कुछ प्रश्नों के उत्तर देना है।

- **कक्षा के अंदर अध्यापक :** अध्यापन-प्रक्रिया और कक्षागत कार्यकलापों के कौन से तत्व छात्रों के अधिगम को प्रभावित करते हैं?
- **शिक्षा व्यवस्था :** व्यवस्था की विशेषताएं, अध्यापकों की योग्यताएं, सेवाकालीन प्रशिक्षण के प्रावधान, अध्यापक-छात्र अनुपात, आधुनिकीकरण के प्रयास, उपलब्ध संसाधन और अध्यापन में सहायक सामग्रियां, शैक्षिक नीतियों तथा राष्ट्रीय नीतियों से उनके संबंध, प्रशासन की व्यवस्थाएं आदि क्या-क्या हैं? विद्यालयों की घटनाओं और अध्यापन की प्रक्रियाओं से इन कारकों का क्या संबंध है?
- **समुदाय :** विद्यालय के इर्द-गिर्द मौजूद उस समुदाय की विशेषताएं क्या हैं जहां से बच्चे आते हैं? उसके कार्यकलाप और विकास के स्तर क्या हैं? अभिभावकों, धार्मिक और सामुदायिक अगुओं के शिक्षा संबंधी वास्तविक विश्वास और मूल्य क्या हैं? मुख्यतः वे कौन सी भाषा बोलते हैं? समुदाय के शिक्षा संबंधी मूल्यों और विश्वासों तथा नीति-निर्माताओं और अध्यापकों द्वारा अनुमोदित आधुनिकीकरण के सिद्धांत के बीच क्या संबंध है? ये सभी कारक अध्यापन की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
- **सामाजिक संबंधों के प्रतिमान :** अध्यापकगण कौन हैं और समुदाय के अन्य सदस्यों से उनका क्या संबंध है? अध्यापकों या प्रशासकों के बारे में समुदाय के सदस्यों की भूमिकाएं और अपेक्षाएं क्या हैं? इसी तरह अभिभावकों और समुदाय के अन्य सदस्यों की भूमिका के बारे में अध्यापकों की क्या अपेक्षाएं हैं? ये संबंध विद्यालय और उसकी गतिविधियों, अध्यापन की शैली और अधिगम को किस प्रकार प्रभावित करते है?

हमारा प्रस्ताव है कि यह अध्ययन 'गुणात्मक' पद्धति से किया जाए। यह विद्यालय की स्थिति, उसकी चहारदीवारी में चल रही प्रक्रियाओं, बाहर के समुदाय से उसके संबंधों तथा शिक्षा-प्रक्रिया से जुड़े तमाम अंदरूनी और बाहरी व्यक्तियों के विचारों को समझने पर जोर देगी। हम इस परिप्रेक्ष्य में नृजातिशास्त्रीय प्रेक्षण की पद्धतियों का उपयोग करेंगे। शोधकर्ता कुछ समय तक विद्यालय और उसके समुदाय का जीवन जिएंगे, क्षेत्रकार्य के विस्तृत विवरण लिखेंगे और मुख्य घटनाओं का वर्णन करेंगे। क्षेत्रकार्य के ब्योरों की विवेचना में विभिन्न स्रोतों से प्राप्य सूचनाएं आवश्यक होंगी, जैसे अध्यापकों, अभिभावकों तथा समुदाय के अग्रणी सदस्यों तथा आवश्यकता पड़े तो अन्य लोगों से लिए गए साक्षात्कारों से। विद्यालयों के दस्तावेजों, शिक्षाधिकारियों, सरकारी दस्तावेजों, अध्यापकों को भेजे गए परिपत्रों और पत्र-पत्रिकाओं से काफी-कुछ सूचनाएं हमें लेनी होंगी। अंतिम बात, हमें सामाजिक और राजनीतिक ढांचे पर ध्यान देना होगा और उससे संबंधित समस्त प्रासंगिक सूचनाओं का प्रयोग करना होगा।

सफलता या असफलता के कारण इस अध्ययन के ध्यान केंद्र होंगे। अपनी कक्षा में सफलता और असफलता के पैमानों पर बच्चों की स्थितियां क्या हैं, इसका पता लगाने के लिए विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का उपयोग करना होगा। लेकिन अंतिम विश्लेषण में सफलता या असफलता का निर्धारण इससे होगा कि विद्यालय या शिक्षा व्यवस्था में अगली कक्षा में प्रोन्नति की दशाएं किस-किस प्रकार तय की जाती हैं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम

प्रशिक्षण कार्यक्रम में आस्टिन, टेक्सास के अध्यापक शिक्षा अनुसंधान और विकास केंद्र में तथा सेंट एंतोनियो के अंतर्सांस्कृतिक विकास अनुसंधान संगठन में चार सप्ताह का एक पाठ्यक्रम शामिल था। डा. सूसन हेक द्वारा टेक्सास में आयोजित प्रशिक्षण ने मानवशास्त्रीय सिद्धांत और व्यवहार, दोनों पर जोर दिया; दूसरे का संबंध मुख्यतः द्विभाषिक (हिस्पानी) कक्षाओं में जारी अनुसंधान से था। प्रशिक्षण के बुनियादी घटक चार थे—मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य का दर्शन, नृजातिशास्त्री तकनीकें, चल रही नृजातिशास्त्रीय परियोजनाओं से संबद्धता तथा नृजातिशास्त्र में प्रबंध और प्रारूप के प्रश्न। आस्टिन में भागीदार हिस्पानी परिवारों के साथ भी ठहरे, विश्वविद्यालय के लातीनी अमरीकी अध्ययन केंद्र की गतिविधियों में शरीक हुए तथा अनेक द्विभाषिक शिक्षा कार्यक्रमों का परिचय प्राप्त किया।

मेक्सिको में तीन सप्ताह के प्रशिक्षण का आयोजन राष्ट्रीय पालीतकनीक संस्थान के अनुसंधान और उन्नत अध्ययन केंद्र में शैक्षिक अन्वेषण विभाग में किया गया। विभाग की मानवशास्त्री एल्सी राकवेल इसकी संयोजिका थीं। मेक्सिको के प्रशिक्षण में लातीनी अमरीकी सामाजिक-आर्थिक संदर्भ में विद्यालय-शिक्षा से जुड़ी अनुसंधान-तकनीकों और सिद्धांतों, दोनों पर जोर दिया गया।

मेक्सिको के प्रशिक्षण कार्यक्रम के तीन-दिवसीय समापन समारोह में प्रशिक्षण पानेवालों और श्रीमती राकवेल के अलावा डा. हेक और इस परियोजना की सलाहकार संयोजिका बीट्रिस एवॉलास भी शामिल हुईं। इसका उद्देश्य प्रशिक्षण कार्यक्रम की समीक्षा करना तथा प्रत्येक राष्ट्रीय उद्देश्य की रूपरेखा और समय-तालिका की काफी व्यापक योजना बनाना था।

प्रशिक्षण कार्यक्रम सामान्यतः इस अर्थ में सफल रहा कि इसमें नृजातिशास्त्रीय शोध में रुचि रखनेवाले मगर उसके लिए पर्याप्त तैयारी से वंचित व्यक्तियों को व्यवस्थित ढंग से उसकी जानकारी दी गई। जाहिरा तौर पर इसमें नृजातिशास्त्र को समाज विज्ञान और परिघटना विज्ञान के व्यापकतर संदर्भ में ही स्थापित नहीं किया गया बल्कि कक्षाओं के प्रेक्षण, ब्योरे लिखने, साक्षात्कार लेने और गुणात्मक तथ्यों के विश्लेषण के बारे में विस्तृत अनुभव भी प्रदान किया। भागीदारों को क्षेत्रकार्य से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री भी प्रायः स्पेनी अनुवाद में दी गई।